अरब और भारत के सम्बन्ध

अर्थात

संयुक्त प्रांत की हिंदुस्तानी एकेडेमी की अवधानता में

प्रयाग में ता. २२ और २३ मार्च सन् १९२९ को

मौलाना सय्यद सुलैमान नदवी द्‌वारा

दिये गये व्याख्यानों का

हिंदी अनुवाद।

⁕ **अनुवादक** ⁕

बाबू रामचन्द्र वर्मा

⁕ **प्रकाशक** ⁕

मुलनिवासी ई-बुक्स, मुंबई

अरब और भारत के सम्बन्ध

अर्थात

संयुक्त प्रांत की हिंदुस्तानी एकेडेमी की अवधानता में

प्रयाग में ता. २२ और २३ मार्च सन् १९२९ को

मौलाना सय्यद सुलैमान नदवी द्वारा

दिये गये व्याख्यानों का

हिंदी अनुवाद।

अनुवादक : **बाबू रामचन्द्र वर्मा**

प्रकाशक : **मुलनिवासी ई-बुक्स मुंबई - ४०००५१**

लेवल ७, द कॅपिटल, बांद्रा कुर्ला कॉम्प्लेक्स,

बांद्रा ईस्ट, मुंबई - ४०००५१

सहयोग मूल्य : **रूपये** 1200/-

ग्रंथकार की भूमिका ।

बहुत दिनों से मेरा यह विचार था कि अरब और भारत के सम्बन्धों पर किसी व्याख्यान या पुस्तक के रूप में एक क्रमबद्ध वर्णन अपने देश के निवासियों के समक्ष उपस्थित करूँ। इससे एक तो ज्ञानसम्बन्धी बहुत सी बातों का संग्रह होता ही, दूसरे इसमें मेरा यह भी उद्देश्य था कि देश के हिन्दू और मुसलमान दोनों संयोजक अंगों को मैं उस स्वर्ण युग का स्मरण कराऊँ जब कि वे दोनों एकता के भिन्न भिन्न सम्बन्धों और शृंखलाओं से जकड़े हुए थे। मैं प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकेडेमी का अनुगृहीत हूँ कि उसने मेरी इस बहुत दिनों की इच्छा पूरी करने का अवसर उत्पन्न किया । मुझे आशा है कि जिस उदारतापूर्ण विचार से ये सब बिखरी हुई बातें बीसियों पुस्तकों से चुन चुनकर और हजारों पृष्ठों को पढ़कर इन थोड़े से पृष्ठों में एकत्र की गई हैं, उसी उदारतापूर्ण विचार से आज ये सब बातें सुनी और कल पढ़ी जायँगी ।

हमारा विश्वास है कि इस समय देश में जो आपस में द्वेष तथा विरोध की परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, उसका सबसे बड़ा उत्तर- दायित्व हमारे यहाँ के स्कूलो और कालेजों में पढ़ाया जानेवाला इतिहास है। इसलिये आज हमारे राष्ट्रीय इतिहास-लेखकों का कर्त्तव्य सब से बड़ा और महत्त्वपूर्ण है ।

एकेडेमी ने तो मुझसे केवल तीन व्याख्यान देनेके लिये कहा था, परन्तु मैंने इस विचारणीय विषय के सारे क्षेत्र और सब कोनों को घेरने के लिये पाँच व्याख्यान तैयार किए, जिसमें यह विषय किसी दृष्टि से अधूरा न रह जाय ।

इस पुस्तक की समस्त घटनाएँ और सामग्री अरबी की विश्वसनीय और प्रामाणिक पुस्तकों से प्राप्त की गई है। कहीं कहीं किसी अँगरेजी या फ़ारसी प्रन्थ का भी उल्लेख आ गया है।

२० अप्रैल १६२६ ई०

सय्यद सुलैमान नदवी,

शिवली मज़िल,

श्राज़मगढ़ ।

विषय सूची

सम्बन्ध का आरम्भ

व्यापारिक सम्बन्ध

धार्मिक सम्बन्ध

भारत में मुसलमान

विजयो से पहले

गुजरात और सिंध का दुनिया में सब से पहला नक्शा

जिसको इ०न हौकल बगदादी ने सन् १४३ हि० (सन् १४३ ई०) में तय्यार किया

(अवध लाइब्रेरी की प्रति से इलियट ने नकल किया)

सम्बन्ध का आरम्भ और भारत के अरब यात्री

अरब और भारतवर्ष दोनों देश संसार की दो विशाल तथा महान् जातियों के धार्मिक तीर्थ और उपासना-मन्दिर हैं; और दोनों अपने अपने स्थान पर अपनी अपनी जातियों के लिये परम पुनीत तथा पवित्र हैं। भारतवर्ष के मूल निवासी कौन हैं इस सम्बन्ध में अनेक भिन्न भिन्न मत हैं। आर्य जाति का मन्तव्य या दावा तो आपने सुना ही होगा । परन्तु क्या अरबनिवासियों का पुराना दावा या मन्तव्य भी आपने सुना है? अभी कुछ ही हजार वर्ष हुए होगें कि आर्य जाति मध्य एशिया से चलकर पंजाब में आई थी और फिर आगे बढ़कर गंगा और यमुना के बीच के प्रदेश या दोआबे में फैल गई। परन्तु अरब के निवासियों का कथन यह है कि भारतवर्ष के साथ उनका सम्बन्ध केवल कुछ हजार वर्षों का ही नहीं है, बल्कि मानव जाति की उत्पत्ति के आरम्भ से ही यह देश उनका पैतृक जन्मस्थान है।

हदीसों और कुरान की टीकाओ आदि में जहाँ हजरत आदम की कथा है, वहाँ भिन्न भिन्न प्रवादों के आधार पर यह उल्लेख मिलता है कि जब हज़रत आदम आकाश की जन्नत या स्वर्ग से निकाले गए, तब वे इसी देश की जन्नत या स्वर्ग में, जिसका नाम “हिन्दोस्तान जन्नतनिशान" या स्वर्गतुल्य भारत है, उतारे गए थे। सरन्दीप (स्वर्णद्वीप या लंका) में उन्होने पहला चरण रखा, जिसका चिह्न वहाँ के पर्वत पर अब तक वर्त्तमान है। इब्ने जरीर, इब्ने अबी हातिम और हाकिम[१] का कहना है कि भारतवर्ष के जिस प्रदेश में हजरत आद्म उतरे थे, उसका नाम दजनाय है। क्या यह कहा जा सकता है कि यह दजनाय भारतवर्ष का दुखिना या दक्खिन है जो भारतवर्ष के दक्षिणी भाग का प्रसिद्ध नाम है ? अरब देश मे अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्य तथा मसाले इसी दक्षिणी भारत से जाते थे, और फिर अरबनिवासियो के द्वारा वे समस्त ससार मे फैलते थे; इस लिये उनका कथन है कि ये सब द्रव्य उन उपहारों के स्मृतिचिह्न है जो हजरत आदम अपने साथ जन्नत से लाए थे । इन उपहारो मे से छुहारो के अतिरिक्त दो फल अर्थात् नीबू और केले

भारतवर्ष मे ही वर्त्तमान हैं। एक और प्रवाद यह है कि अमरूद भी जन्नत का मेवा था जो भारतवर्ष मे पाया जाता है।

१ तफसीर दुरै मन्सूर सुयूती, पहला खण्ड, पृ० ५५। मित्र देश मे 'यह और इसके उपरान्त के और अनेक प्रवाद प्रचलित है। साथ ही "सुबहतुल मरजान फी तारीख" हिन्दोस्तान का पहला खण्ड भी देखना चाहिए।

एक और प्रवाद यह भी है कि जन्नत या स्वर्ग में से चार नदियाँ निकली है- नील, फुरात, जैहून और सैहून । नील तो मिस्र देश की नदी है जिससे वहाँ की खेती का सारा काम होता है। इसी प्रकार इराक प्रदेश की उर्वरता तथा हरियाली के लिये फुरात नदी का जो महत्त्व है, वह सब लोग जानते ही हैं। जैहून तुर्किस्तान की नदी है; और तुर्किस्तान के लिये इसका वही स्थान है जो नील और फुरात का मिस्र और इराक में है। सैहून के सम्बन्ध मे कहा गया है कि यह भारतवर्ष की नदी का नाम है। क्या जन्नत की इस चौथी नदी को गंगा समझा जाय? कुछ लोगों ने इसको सिन्धु नद ठहराया है।

मीर आजाद बिलग्रामी ने "सुबहतुल् मरजान फी आसारे हिन्दो- स्वान" मे भारतवर्ष के महत्त्व के वर्णन में कई पृष्ठ भेंट किए हैं। उसमें यहाँ तक कहा गया है कि जब हजरत आदम सब से पहले भारतवर्ष में ही उतरे और यहीं उन पर वही आई (अर्थात् उनके पास ईश्वरी आदेश आया), तो यह समझना चाहिये कि यह वह देश है जिसमें सब से पहले ईश्वर का सन्देश आया था। यह भी माना जाता है कि मुहम्मद साहब की ज्योति हजरत आदम के भाल में अमानत के तौर पर रखी थी ।

इससे यह प्रमाणित होता है कि हजरत मुहम्मद साहब का आरम्भिक अवतार या प्रकाश इसी देश में हुआ था। इसी लिये आपने कहा है- "मुझे भारतवर्ष की ओर से ईश्वरीय सुगन्धि आती है।" यद्यपि हदीस की विद्या के महत्व का ध्यान रखते हुए ये सब प्रवाद बहुत ही निम्न कोटि के हैं, पर भिर भी इनसे यह बात प्रमाणित होती है कि साधारणतः जो यह समझा जाता है कि भारतवर्ष के साथ मुसलमानों का सम्बन्ध महमूद गजनवी की

विजयो के क्रम में हुआ और वे उसके उपरान्त यहाँ आकर बसे, वह कहाँ तक मिथ्या या भ्रमपूर्ण है। बल्कि वास्तविक बात तो यह है कि वे इस देश को अपना विजित देश नहीं समझते, बल्कि अपनी पुरुषानुक्रमिक तथा पैतृक जन्मभूमि समझते हैं; और जो लोग ऐसा नहीं समझते, उन्हें ऐसा समझना चाहिए। अस्तु; ये तो इतिहास काल से पूर्व की बातें हैं। यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो पता चलेगा कि मुसलमान लोग महमूद से सैकड़ों वर्ष पहले भारतवर्ष में आ चुके थे और जगह जगह पर उनके उपनिवेश स्थापित थे ।

इस्लाम के उपरान्त अरबों और मुसलमानों में कुलीनता के विचार से सब से बड़ा स्थान सादात अर्थात् सैयदों का है। वर्त्तमान सैयद- वंशों का बहुत बड़ा भाग हज़रत इमाम हुसैन के सुपुत्र हजरत इमाम जैनुल्आबिदीन के वंशजों में से है। हज़रत जैनुल्आबिदीन की माता अरब नहीं थीं। ईरानियों का दावा है कि वे ईरानी थीं और राजवंश की थीं। परन्तु कुछ इतिहास लेखको ने उन्हें सिन्ध की बतलाया है।[१] यदि यह अन्तिम कथन सत्य हो, तो यह मानने मे क्या आपत्ति हो सकती है कि अरब तथा इस्लाम के सत्र से श्रेष्ठ और पवित्र वंश उत्पन्न करने मे भारतवर्ष का भी अंश है ? और फिर यह कहना भी ठीक होगा कि चाहे और मुसलमान हो या न हो, परन्तु जैनुल्आबिदीन अली की सन्तान सैयद लोग सदा से आधे भारतीय हैं।

[१] **देखो किताबुल्म आरिफ, इब्ने कुतैबा; और इब्ने खल्लिकान; तज़किरा अली बिन हुसैन जैनुल्याबिदीन ।**

खैबर की घाटी की ओर से उत्तरीय भारत मे आनेवाले मुसलमान तुर्कों और अफगानो का समय हिजरी चौथी शताब्दी का आरम्भ है। महमूद ने सन् ४१८ हि० में लाहौर पर विजय प्राप्त की लेकिन दक्षिणी भारत अर्थात् मालाबार और कारोमंडल से गुजरात तक के प्रदेश इसके सैकड़ो वर्ष बाद तक भी मुसलमानो के अधिकार में नहीं गए थे। सन् ६९७ हि० मे सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात पर विजय प्राप्त कर के उसे दिल्ली के अधीनस्थ प्रदेशो मे मिला लिया था; और उसी समय सुलतान अलाउद्दीन की सेनाओं ने मदरास की

ओर केवल एक बार मालाबार और कारोमंडल के समुद्र तट के प्रदेशों को पार किया था। परन्तु वह विजय अस्थायी थी। इसके उपरान्त बिजयनगर की दीवार ने कई शताब्दियों तक अफगानो और मुगलो को आगे नही बढ़ने दिया था।

दक्षिण के बहमनी साम्राज्य का सारा जीवन बिजयनगर के साथ लड़ाई झगड़े करने मे ही बीता था, परन्तु वह भी कृष्णा नदी से आगे किसी प्रकार से नहीं बढ़ सका था। हाँ, बहमनी साम्राज्य की राख से जो पाँच लपटें उठी थी, उन्होने बहुत कठिनता से सन् १५६५ ई० मे उसे भस्मकर के निःशेष किया था। फिर भी आलमगीर के समय तक छोटे छोटे हिन्दू राज्य बने ही रहे । अरकाट, मैसूर और मदास के प्रदेशों पर उन्होंने यों ही उचटता सा पैर रखा; परन्तु उनमें से कोई अधिक समय तक वहाँ जम न सका ।

इस सिंहावलोकन से हमारा यह दिखलाने का अभिप्राय है कि ख़ैबर की घाटी से उठनेवाली लहरों का भारतवर्ष के किन प्रान्तों पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कब क्या प्रभाव पड़ा और भारतवर्ष के किस प्रान्त से किस समय तक हमारे विषय का सम्बन्ध है।

पंजाब	सन् ४१४हि० ;	१०२३ ई०
सिन्ध	सन् ५८२हि० ;	११८६ ई०
दिल्ली, कन्नौज, अवध,बनारस	सन् ५८९हि० ;	११९३ ई०
बिहार और बंगाल	सन्५९३-९५हि०;	११९५-९९ ई०
दक्षिण (देवगिरि)	सन् ६९३हि० ;	१२९४ ई०
गुजरात	सन् ६९७हि० ;	१२९७ ई०
महाराष्ट्र और मदरास	सन् ७१२हि० ;	१३१२ ई०

इस लिये अरबों और हिन्दुओं के आपस के सम्बन्धों के विवरण में हम प्रत्येक प्रान्त के सम्बन्ध में खैबर से आनेवाली जातियों के द्वारा उसके विजित होने तक की सब बातों का वर्णन कर सकते हैं।

हिन्दुस्तान और अरब संसार के वे महादेश हैं जो एक प्रकार से पड़ोसी कहे जा सकते हैं। इन दोनों के मध्य में केवल एक समुद्र पड़ता है, जिसके ऊपर ऐसी लम्बी चौड़ी सड़कें निकली हैं जो एक देश को दूसरे देश से मिलाती हैं। ये दोनों देश एक समुद्र के दो

आमने सामने के स्थल के तट हैं। इस विशाल समुद्र का एक हाथ यदि अरबों के देश काबे की भूमि का पल्ला पकड़े हुए है, तो उसका दूसरा हाथ आर्यावर्त्त के चरण छूता है। समुद्रतट के देश स्वभावतः व्यापारी होते हैं। यही पहला सम्बन्ध है जिसने इन दोनों जातियों को एक दूसरे से परिचित कराया। हजारों वर्ष पहले से अरब के व्यापारी भारतवर्ष के समुद्रतट तक आते थे और यहाँ की उपज तथा व्यापारिक पदार्थों को मिस्र और शाम देश के द्वारा युरोप तक पहुँचाते थे और वहाँ के पदार्थ भारतवर्ष, उसके पास के टापुओं, चीन और जापान तक ले जाते थे ।

अरबवालो का मार्ग यह था कि वे मिस्र और शाम के नगरो से चलकर स्थल-मार्ग से लाल सागर (Red Sea) के किनारे किनारे जहाज़ को पार करके यमन तक पहुँचते थे; और वहाँ से पालवाली नावो पर बैठकर कुछ लोग तो अफ्रिका और हब्श देश को चले जाते थे और कुछ वहीं से समुद्र के किनारे किनारे हजरमौत, उम्मान, बहरैन, और इराक के तटो को पार कर के फारस की खाड़ी के ईरानी तटो से होकर बलोचिस्तान के बन्दरगाह तेज मे उत्तर पड़ते थे; या फिर आगे बढ़कर सिन्ध के बन्दरगाह देबल (कराची) में चले आते थे; और फिर और आगे बढ़कर गुजरात तथा काठियावाड़ के बन्दरगाह थाना (बम्बई) खम्भात चले जाते थे। फिर आगे बढ़ते थे और समुद्र के मार्ग से ही कालीकट और कन्याकुमारी तक पहुँचते थे। कभी मद्रास के किसी तट पर ठहरते थे और कभी लंका तथा अंडमन होकर फिर सीधे मदास के अनेक बन्दरगाहो पर चक्कर लगाते हुए बगाल की खाड़ी मे प्रवेश करते थे; और बंगाल के दो एक बन्दरगाहो को देखते हुए बरमा और स्याम होकर चीन चले जाते थे और फिर उसी मार्ग से लौट आते थे ।

इससे पाठको को यह विदित हो गया होगा कि इन लोगो के जहाज भारतवर्ष के समुद्रतट के सभी नगरो और टापुओ में बराबर चक्कर लगाया करते थे और इतिहास काल से पहले ही से इनका बराबर आना जाना होता था।

संसार की समुद्री व्यापार करनेवाली सब से पहली जाति का नाम फिनीशियन है। यह यूनानी नाम है। इब्रानी भाषा मे इनका नाम कनआनी है; और इनको आरामी भी कहते हैं। अरबवाले इनको इरम कहते हैं और यही नाम कुरान में भी है। उसमें एक स्थान पर

आया है- “आदे इरम जातुल् इमाद" अर्थात् - "बड़े बड़े स्तम्भों और भवनोंवाले इरम के वंशज आद लोग।" और इसी साम्य के कारण उर्दू तथा फ़ारसी भाषा में भी "बहिश्ते इर" कहते हैं।

यह कौन जाति थी? अन्वेषकों का कथन है कि ये लोग अरब थे जो बहरैन के समुद्रतट के पास से उठकर शाम के समुद्रतट पर जा बसे थे। पूर्व में बहरैन ही मानो इनका पूर्वीय देशों के लिये बन्दरगाह था; और शाम देश में भूमध्य सागर (Mediterranean Sea) के तर पर इनका पश्चिमी बन्दरगाह था, जहाँ से वे यूनान के टापुओं, युरोप के नगरों और उत्तरी अफ्रिका के तटो तक चले जाते थे। इधर पूर्व में वे ईरान, भारत और चीन तक की खबर लेते थे। यूनान में इसी जाति के द्वारा सभ्यता का आरम्भ हुआ और उत्तरी अफ्रिका के किनारे कार्थेज की नींव पड़ी । परन्तु पूर्वी देशों पर इनके जो प्रभाव पड़े, उनका पूरा पूरा अनुमान नहीं लगाया गया है। यह तो सभी लोग जानते हैं कि भारत की समस्त लिपियाँ, बल्कि समस्त आर्य लिपियाँ बाईं ओर से लिखी जाती हैं। परन्तु पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि आर्यावर्त्त की आरम्भिक लिपियाँ सामी लेख-प्रणाली की भाँति दाहिनी ओर से लिखी जाती थीं। इसके अतिरिक्त गिनती के लिखने का ढंग भी कदाचित् इसी व्यापार करनेवाली जाति से सीखा गया था। "एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका," ११वाँ संस्करण (Encyclopædia Britannica) में "संस्कृत" विषयक निबन्ध का लेखक यहाँ की आरम्भिक लिपि का इतिहास निम्नलिखित शब्दों में बतलाता है-

"भारतीय अक्षरों के आरम्भ का प्रश्न अभी तक सन्देहों से ढका है। भारतीय लिपि के सब से पुराने उदाहरण वे लेख हैं जो चट्टानों पर खुदे हुए हैं। ये पाली भाषा (वह प्राकृत जो दक्षिणी बौद्ध धार्मिक लेखों के लिये प्रयुक्त की जाती थी) के वह धार्मिक प्रज्ञापन हैं जिन्हे सन् २५३ ई० पू० मे मौर्य वंश के सम्राट् अशोक ने खुदवाया था । ये शिलालेख उत्तरी भारत मे उत्तर-पश्चिमी सीमा पर पेशावर के पास और गुजरात में गिरनार से लेकर पूर्वी समुद्रतट पर कटक के जिले मे जौगड़ और धौली तक फैले हुए हैं। चरम पश्चिम के वे शिलालेख जो कपूरदागढ़ी या शहबाजगढ़ी और मन्सूरा (मानसेहरा) के आस पास है, दूसरे शिलालेखो की वर्णमाला से बिलकुल भिन्न अक्षरो मे लिखे गए हैं। वे दाहिनी ओर से बाई

ओर पढ़े जाते है। इनको साधारणतः "आर्य पाली" कहा जाता है। ये अक्षर यूनानी और अयोनिटया के भारतीय-सीथियन शासको के सिक्को में भी काम मे लाये गये हैं। रहे दूसरे अक्षर जो, बाईं ओर से दाहिनी ओर को पढ़े जाते है, हिन्दी-पाली अक्षर कहे जाते है। इनमे से पहले अक्षरो ने, जिनको खरोष्ट्री या गान्धार लिपि भी कहा जाता है और जो यो देखने मे किसी सामी और कदाचित् आरामी भाषा से सम्बन्ध रखते है, बाद की लिखावटो पर अपना कोई प्रभाव नही छोड़ा है। दूसरी ओर हिन्दी पाली या ब्राह्मी अक्षर हैं जिनसे भारत के आजलक के अक्षर निकले है। इन हिन्दीपाली व ब्राह्मी अक्षरों का मूल अभी निश्चित नही हुआ है - वह सन्दिग्ध ही है। यद्यपि अशोक के समय तक इस लिपि ने बहुत अधिक उन्नति कर ली थी और विद्या सम्बन्धी विषयो मे इसका आश्चर्यजनक रूप से व्यवहार किया जाने लगा था, लेकिन फिर भी इसके कुछ अक्षर पुराने फिनीशियन अक्षरो से (जो स्वयं कदाचित् मिस्री चित्रलिपि से निकले थे) बहुत मिलते जुलते हैं। इससे यह अनुमान होता है कि कदाचित् इनका मूल भी सामी ही हो।

शायद अब इस बात का पता कभी न चलेगा कि अपने देश मे इसका कब और किसके द्वारा प्रचार हुआ। जो हो प्रोफेसर बुलहर (Prof Buhler) ने यह अनुमान किया है कि कदाचित् इराक के व्यापारियो ने ई० पू० आठवी शताब्दी मे इन अक्षरो का यहाँ प्रचार किया हो। फिर भी मौर्य और आन्ध्र शिलालेखों में इन अक्षरों ने जो पूर्ण रूप प्राप्त कर लिया है और जितने विस्तृत प्रदेश में वे फैले हुए है, उसका ध्यान रखते हुए बिना किसी प्रकार के सन्देह के यह बात मान ली जा सकती है कि भारतवर्ष में अशोक से बहुत पहले भिन्न भिन्न उद्देश्यों के लिये लिखने की कला का प्रचार था । उस समय के साहित्य में लेखन-प्रणाली का कहीं कोई उल्लेख नहीं है; और इसका कारण कदाचित् यही हो सकता है कि ब्राह्मण लोग अपने पवित्र ग्रन्थों को लेखबद्ध करना पसन्द नहीं करते थे ।

"अब रहा भारत में अङ्को के सम्बन्ध का प्रश्न । ईसवी सन् के आरम्भ मे खरोष्ट्री शिलालेखों में अङ्क जिस ढंग से लिखे गए है, वह ढंग यह है कि पहली तीन संख्याएँ लकीरो के द्वारा प्रकट की जाती हैं। चार की संख्या एक झुके हुए क्रास या सलीब की तरह है। और पाँच से नौ तक की संख्याएँ इस प्रकार लिखो जाती हैं ४ + १ से लेकर ४ + ४ +

१ । इसके सिवा दस, बीस और सौ के लिये कुछ विशेष चिह्न हैं। बाकी दहाइयों को दस मिलाकर इस प्रकार लिखा जाता है। जैसे, यदि पचास लिखना हुआ तो इस प्रकार लिखते हैं २० + २० + १०। यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि लिखने का यह ढंग सामी या शायद आरामी है। ईसवी छठी शताब्दी तक के ब्राह्मी शिलालेखा में एक दूसरे ही प्रकार के अङ्कों का व्यवहार किया गया है। १ से ३ तक के लिये आड़ी लकीरें हैं। फिर ४ से ९ तक की इकाइयो और १०, ९०, १०० और १००० के लिये विशेष चिह्न है। बहुत सम्भव है कि यह तरीक़ा सिस्त्र से निकला हो, और संख्याएँ लिखने का वह दशमिक प्रकार जो सब से पहले गुजरात के शिलालेख से मिलता है कदाचित् यहीं के ज्योतिषियों या गणितज्ञो ने निकाला हो ।"

पर इससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात यह है कि महाभारत के समय में भी भारत में ऐसे लोग थे जो अरबी भापा जानते थे। इस बात पर विश्वास करना है तो बहुत कठिन, लेकिन फिर भी एक बड़े पंडित ने इसको माना है, इस लिये मैं इसे न मानने का साहस नहीं कर सकता । "सत्यार्थ प्रकाश" के लेखक स्वामी दयानन्द जी ने ११ वें समुल्लास (पहला पर्व, अध्याय १४७) मे लिखा है- "महाभारत में जब कौरवो ने लाख का घर बनाकर पांडवो को उसके अन्दर जलाकर फूंक देना चाहा, तब विदुर जी ने युधिष्ठिर को अरबी (यवन?) भाषा मे बतलाया; और युधिष्ठिर ने उसी अरबी भाषा में उन्हे उत्तर दिया।" यदि यह बात ठीक हो तो अरबो और हिन्दुओं का सम्बन्ध कितना पुराना ठहरता है ।

अरबो और हिन्दुओ के सम्बन्ध का एक और द्वार भी था। इसका स्वरूप यह था कि ईरान के बादशाह का प्रायः बलोचिस्तान और सिन्ध पर अधिकार रहा करता था। इस अधिकार के सम्बन्ध से सिन्ध के कुछ लड़ाके कबीलो या वंशो की सैनिक टुकड़ियाँ ईरानी सेना मे सम्मिलित थी। इन लड़ाके कबीलो में से दो का उल्लेख अरबो ने किया है; और वे दोनो कबीले जाट (जत) और मेंड़ या मीड़ हैं। ये दोनो सिन्ध की प्रसिद्ध जातियाँ थी। एक हदीस मे कहा है कि अब्दुल्लाह बिन[१] मसऊद सहाबी ने हज़रत मुहम्मद साहब के साथ एक विशेष आकार के लोगो को देखा था, जिनके सम्बन्ध मे उन्होंने - बतलाया था कि उनका चेहरा जाटो की तरह था।[२] इससे जान पड़ता है कि अरबवाले ईसवी छठी शताब्दी से

भी जाटों को जानते थे । जब ईरानी लाग हार गए, तब ये बहादुर जाट लोग हवा का रुख देखकर कुछ शर्तों के साथ आकर मुसलमानों के लश्कर में मिल गए । मुसलमान सेनापति ने इनकी बहुत प्रतिष्ठा की और इनको अपने क़बीलों में मिला लिया। हजरत अली ने जमलवाले युद्ध के अवसर पर बसरे का खजाना इन्हीं जाटों की रक्षा में छोड़ा था।[३] अमीर मुआविया ने रूमियों का मुकाबला करने के लिये इन लोगों को ले जाकर शाम देश के समुद्र तट के नगरों में बसाया और वलीद बिन अब्दुल्मलिक ने अपने समय में इनको अन्ताकिया में ले जाकर बसाया था।[४]

[१] अरबी में बिन का अर्थ "लडका" होता है। "अब्दुल्लाह बिन मसऊद" का अर्थ है- मसऊद का लडका अब्दुल्लाह। आागे भी जहाँ दो नामों के बीच में "बिन" शब्द आये, वहाँ इसी प्रकार अर्थ लगाना चाहिए- अनुवादक ।

[२] तिरमिजी अबवाबुल्-इम्साल ।

[३] तारीखे तबरी ।

[४] बिलाज़ुरी; श्रसावरा का वर्णन ।

“हिन्द" शब्द

मुसलमानों के आने से पहले इस पूरे देश का कोई एक नाम नहीं था। हर प्रान्त का अलग-अलग नाम था या हर राज्य का नाम उसकी राजधानी के नाम से प्रसिद्ध था। जब फ़ारसवालों ने इस देश के एक प्रान्त पर अधिकार किया, तब उन्होंने उस नदी का नाम "हिन्दहो" रखा जिसको सिन्ध नदी कहते हैं और अरबों की भाषा में जिसका नाम महरान है। पुरानी ईरानी भाषा और संस्कृत में "स" और "ह" आपस में बदला करते हैं। इसके बहुत से उदाहरण हैं। इस लिये फ़ारसवालों ने इसको "हिन्दद्दो" कहकर पुकारा और इससे इस देश का नाम “हिन्द" पड़ गया। अरबो ने, जो सिन्ध के सिवा इस देश के दूसरे नगरो को भी जानते थे, सिन्ध को 'सिन्ध' ही कहा । लेकिन उसके सिवा भारतवर्ष के दूसरे नगरों या प्रदेशों को हिन्द निश्चित किया। अन्त में यही नाम सारे संसार में भिन्न भिन्न

रूपों में फैल गया । इसके "ह” का “अ” हो गया, जिससे फ्रान्सीसी भाषा में इंड और इण्डिया बना, और इसीके भिन्न भिन्न रूप सारे संसार में फैल गए । खैबर की ओर से आनेवाली जातियों ने इसका नाम हिन्दुस्थान रखा, जो फारसी उच्चारण मे हिन्दुस्तान बोला जाता है। यह बहुत आश्चर्य- जनक बात है कि "हिन्द" शब्द अरबो को ऐसा प्यारा लगा कि उन्होने देश के नाम पर अपनी स्त्रियो का यह नाम रखा । अरबी कविता में इस नाम का वही स्थान है जो फारसी मे लैला और शीरी का है।

हिन्दोस्तान पर अरबों के आक्रमण

तात्पर्य यह कि इस प्रकार के दोहरे तेहरे सम्बन्ध थे, जिनके कारण इस्लाम के बाद अरबों का ध्यान भारत की ओर झुका; और उन्होने ईरान की विजय के बाद इसके उपनिवेशो और दूसरे स्थानो को अपने व्यवहार से लाना आवश्यक समझा । इस प्रकार मकरान और बलोचिस्तान के बाद सिन्ध की सीमा इनके सामने थी। इसके सिवा इनको अपने व्यापारी जहाज़ो की रक्षा के लिए भारत के किसी समुद्रतट के बन्दरगाह की तलाश थी। इस लिये हज़रत उमर के शासन काल मे अरबी जहाज़ो के बेड़े किसी अच्छे बन्दरगाह पर अधिकार करने के लिए भारत के समुद्र के किनारे मँडराने लगे। आज- कल जिस जगह बम्बई का शानदार शहर बसा हुआ है, उसके पास थाना नाम का एक छोटा सा बन्दर था, जो अब भी है। सब से पहले सन् १५ हि० (सन् ६३६ ई०) मे बहरैन के शासक की आज्ञा से अरबो ने इसी बन्दरगाह पर पहली चढ़ाई की। इसके बाद भड़ौच (बरौस) पर चढ़ाई की, इसी समय मुगीरा नाम के एक दूसरे अरब ने देवल पर, जो सिन्ध का बन्द्र था और जो ठट्ठा या वर्तमान कराची के पास था, चढ़ाई की। इसके कुछ ही वर्षों के बाद हज़रत उस्मान के समय मे एक समुद्री टुकड़ी इन बन्दरगाहो की देख भाल कर के चली गई। 'हजरत अली के समय (सन् ३९ हि० ; सन् ६६० ई०) से एक अरब सरदार नियमित रूप से इन प्रान्तों की देख भाल करने लगा। पर सन् ४२ हि० (सन् ६६३ ई०) में वह मार डाला गया । सन् ४४ हि० (सन् ६६५ ई०) में अमीर मुआविया ने मुहल्लित्र नाम के एक सरदार को सिन्ध की

सीमा का रक्षक बनाकर भेजा; और उसके बाद अरबों के शासन में यह एक स्थायी पद बना दिया गया ।

सन् ८६ हि० (सन् ७०५ ई०) में जब दमिश्क के राज-सिंहासन पर वलीद अमवी (मुआविया नामक अमीर के वंश का) बैठा और उसकी ओर से हज्जाज नामक सरदार इराक, ईरान, मकरान और बलोचिस्तान अर्थात् पूर्वी अधिकृत प्रदेशों का शासक बनाया गया, तब उसने भारत और उसके टापुओं के साथ अपने सम्बन्ध और दृढ़ किए । अरब व्यापारी बराबर आते जाते रहते थे; पर साथ ही भारत के प्रायः समुद्री किनारों से समुद्री डाकूलोग उनके जहाजों पर डाके डाला करते थे। अलबेरूनी के समय (सन् ४२४ हि०) तक सोमनाथ और कच्छ में इन समुद्री डाकुओं के सबसे बड़े अड्डे थे ।[१] जो हो, घटना यह है कि लंका में कुछ अरब व्यापारी व्यापार करते थे। वहाँ उनका देहान्त हो गया। लंका के राजा ने उनकी स्त्रियों और बच्चों को एक जहाज पर बैठाकर इराक़ की ओर भेज दिया । रास्ते में सिन्ध के देबल नामक बन्दरगाह के पास डाकुओं ने उस जहाज पर छापा मारा और उन स्त्रियों को पकड़ लिया। उस विपत्ति के समय स्त्रियों ने हज्जाज की दुहाई दी। जब हज्जाज को यह समाचार मिला, तब उसने सिन्ध के राजा दाहर को लिख भेजा कि इन स्त्रियो को रक्षापूर्वक मेरे पास भेजवा दो। राजा ने उत्तर दिया कि यह समुद्री डाकुओं का काम है; जो हमारे अधिकार में नहीं हैं।

इराक़ के शासक हज्जाज ने यह बात नहीं मानी । इसी बीच में एक और घटना हो गई। वह यह कि मकरान से कुछ अपराधी और विद्रोही लोगो ने आकर सिन्ध में शरण ली और उन्होंने राजा दाहर की अधीनता में अपना एक जत्था बना लिया। इस घटना ने भी हज्जाज को उत्तेजित किया। इस लिये उसने अपने नवयुवक भतीजे मुहम्मद बिन [२] कासिम की अधीनता मे शीराज से छः हजार सैनिक सिन्ध की ओर भेजे। साथ ही कुछ सामग्री सहित कुछ सेना समुद्र के रास्ते से भी सिन्ध की ओर भेजी और उसकी सहायता के लिए ईरान के पुराने खुश्की रास्ते से भी कुछ सेनाएँ भेजी। सन् ९३ हि में मुहम्मद बिन कासिम सिन्ध पहुंचा और तीन वर्ष के बीच मे उसने छोटे काश्मीर (अरब लोग पंजाब को छोटा काश्मीर कहते थे) की सीमा मुलतान से लेकर कच्छ तक और उधर मालवे की सीमा

तक अपना अधिकार कर लिया, और सारे सिन्ध प्रदेश में उसने बहुत ही न्याय और शान्ति का राज्य स्थापित कर दिया। राजा दाहर के साथ मिलकर जिन भारतीय सैनिको ने अरबो का सब से अधिक सामना किया, उनका नाम बिलाजुरी ने, जिसने अपनी पुस्तक सन् २५५ हि० (सन ८५५ ई०) में लिखी थी, "तकाकिरा" बतलाया है जो अरबी भाषा मे "ठाकुर" शब्द का बहुवचन का रूप है। सन् ९६ हि० मे वलीद् का देहान्त हुआ और उसके स्थान पर सिहासन पर सुलैमान बैठा।

हज्जाज और उसके वंश के लोगो तथा कर्मचारिया के साथ उसकी व्यक्तिगत शत्रुता थी, इस लिये उसी वर्ष उसने हज्जाज के नियुक्त किए हुए दूसरे अधिकारियो के साथ मुहम्मद बिन कासिम को भी सिन्ध से वापस बुला लिया; और अन्त मे अपनी व्यक्तिगत शत्रुता का बदला लेने के नशे मे उसकी हत्या भी करा दी। इस हत्या के कारणो में राजा दाहर की दो कन्यायो का कथानक उल्लेख करने के योग्य नहीं है; क्योंकि उसका कई बार खंडन हो चुका है। हाँ, यह घटना अवश्य स्मरण रखने के योग्य है कि जब क़ासिम सिन्ध से लौटने लगा, तब सिन्ध की प्रजा ने अपने सुशील और न्यायी विजेता के वियोग में आँसू बहाए और उसकी स्मृति में उसकी मूर्ति बनाकर स्थापित की ।

[१] **किताब उलू हिन्द, पृ० १०२ (लन्दन का संस्करण)**

[२] **क़ासिम का लडका मुहम्मद ।**

इसके उपरान्त बहुत से शासक नियुक्त होकर यहाँ आते रहे । सन् ६०७ हि० में जुनैद यहाँ का शासक होकर आया। यह बहुत बड़ा साहसी अधिकारी था। इसने सिन्ध से कच्छ पर चढ़ाई की। वह पहले मरमद में पहुँचा और वहाँ से मांडल और फिर धनख तक गया। यहाँ से वह भड़ौच के बन्दरगाह तक पहुँच गया और उसके एक अधिकारी ने उज्जैन (मालवा) तक धावा किया; और वहाँ से फिर सम्मैद और भीलमाल को जीतता हुआ गुजरात पहुँचा और वहाँ से बह फिर सिन्ध लौट आया, परन्तु इन सब विजयों का महत्व आकर निकल जानेवाली आँधी से अधिक नहीं है। सन् १३३ हि० (सन् ७५१ ई०) में अरबी शासन

का पृष्ठ उलट गया। अमवियों (मुआविया के वंश के लोगों) के स्थान पर अब्बासी लोग आए ।

शाम के स्थान पर इराक़ साम्राज्य का सूबा निश्चित हुआ और शासन का केन्द्र दमिश्क से हटकर बगदाद चला गया । इस परिवर्तन ने भारत को अरब साम्राज्य के केन्द्र से बहुत अधिक पास कर दिया। सन् १४० हि० (सन् ७५९ ई०) में हिशाम सिन्ध का शासक होकर आया। उसने उमर बिन जमल नामक एक अधिकारी को जहाजों का एक बेड़ा देकर गुजरात भेजा वह लूटमार करके थोड़े ही दिनों में विफल होकर लौट आया। अन्त में हिशाम ने स्वयं एक बेड़ा लेकर भड़ौच के पास गन्धार पर अधिकार किया और वहाँ उसने अपनी विजय के स्मारक में एक मसजिद बनवाई। यह गुजरात देश में इस्लाम का पहला चरण था और सिन्ध को छोड़कर बाकी सारे भारत में यह पहली मसजिद थी ।

मन्सूर के बाद महदी खलीफा हुआ। उसकी आज्ञा से अब्दुल्मलिक ने गुजरात पर फिर चढ़ाई की और सन् १६० हि० (सन् ७७८ ई०) मे बारबुद को, जिसका हिन्दी नाम भाडभूत है और जो भड़ौच के पास है, जीत लिया। पर सयोग से सेना मे मरी फैल गई, जिससे एक हजार सिपाही सर गये। इस दुर्घटना से अरब लोग विकल होकर उलटे पॉव लौट गए ।

बग़दाद का साम्राज्य मोहतशिम बिल्लाह अब्बासो तक, जिसकी मृत्यु सन् २२७ हि० मे हुई, दृढ़ रही। इसके बाद दिन पर दिन वह ऐसी निर्बल होती गई कि सिन्ध और भारत से उसका सम्बन्ध टूट गया। कुछ दिनो तक अरब अमीर लोग यहाँ स्वतन्त्र बने रहे; पर अन्त मे हिन्दू राजाओ ने फिर अपना अधिकार कर लिया। बाद मे केवल दो प्रसिद्ध अरब रियासते यहाँ बनी रह गई, जिनमे से एक मुलतान में थी और दूसरी सिन्ध के अरबी नगर मन्सूरा मे थी । यहाँ यह बात लिख देने के योग्य है कि इन हिन्दू राजाओ ने भी मुसलमान प्रजा के साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया और उनकी मसजिदो को उसी प्रकार अपने स्थान पर बनी रहने दिया।[१]

[१]इन सब घटनाओं का उल्लेख फुतूहुल्बुल्दान (बिलाज़री) में है।

सिन्धियों की हार का रहस्य

इसके आगे बढ़ने से पहले यह जान लेना चाहिए कि कुछ ही हजार अरबो की जो सेना इतनी दूर से चल कर यहाँ आई थी, उसने एक ही आक्रमण से कैसे इस देश पर अधिकार कर लिया। मेरी समझ मे सिन्धियो की हार भी उसी एक कारण से हुई थी, जिससे संसार की हर एक जाति दूसरी जाति के अधीन हुई है। अरबो के विवरण से यह बात स्पष्ट रूप से सिद्ध होती है कि उस समय अर्थात् हिजरी पहली शताब्दी के अन्त और ईसवी आठवीं शताब्दी के आरम्भ में सिन्ध में बौद्ध धर्म का प्रचार था। अरबवाले बौद्धों को समनियः कहते थे। (इस शब्द पर आगे चलकर विचार होगा)। भूगोल के सभी लेखकों ने यहाँ बुद्ध नाम की एक बस्ती का उल्लेख किया है। [१] जिसका ठीक नाम चचनामे में बुद्धपुर है। [२] फिर यहाँ नवविहार [३] नाम के एक उपासना-मन्दिर का उल्लेख मिलता है जो विशेष रूप से बौद्धों के मन्दिर का नाम है। उनके पुजारी का नाम समनियः मिलता है जो ब्राह्मणों के विरोधी थे । इलियट साहब भी हमारे इस कथन का समर्थन करते हैं कि उस समय सिन्ध का धर्म बौद्ध था। वह कहते हैं-

"जब मुसलमानों को पहले पहल भारत की जातीयता से काम पड़ा, तब सिन्ध में बौद्ध मत का पूरी तरह से प्रचार था; इस लिये निश्चित रूप से इस नाम "बुद" का मूल रूप "बौद्ध" है, न कि फ़ारसी शब्द "बुद" (बुत) जो कदाचित् स्वयं भी बौद्ध शब्द का ही बिगड़ा हुआ रूप है। इस बात के बहुत से चिह्न अब भी मिलते हैं कि उस समय सिन्ध की तराई में बौद्ध धर्म फैला हुआ था। केवल विशेष रूप से चीनी यात्रियों के विवरणों और इब्न खुर्दाजिबा के वर्णन से ही इसका समर्थन नहीं होता, बल्कि अरब लेखकों के कुछ संकेत और उल्लेख भी ऐसे हैं जिनमें ब्राह्मणों और बौद्धों के एक दूसरे के विरोधी होने का विशेष रूप से कोई उल्लेख नहीं है। क्योंकि इन लोगों की धर्म सम्बन्धी बातों (और विशेषतः प्रार्थना के ढङ्ग, श्राद्ध या बढ़ों के नाम पर दान पुण्य करने आदि) में आपस में इतना सूक्ष्म अन्तर है कि अनजान और अभिमानी विदेशियों का ध्यान कठिनता से इस ओर जा सकता था। इसी लिये जहाँ कहीं पुजारियों का वर्णन आया है, वहाँ उन्हे "समनी" कहा गया है।

साम्राज्य का हाथी सफेद होता था, जो एक बहुत अर्थपूर्ण बात है। एक हजार ब्राह्मणों (पुजारियो) को जिस नाम से अरबी किताबो में इनका उल्लेख है और जो चाहते थे कि अपना पुराना धार्मिक विश्वास और रीव रवाज आदि जारी रखें, मुहम्मद बिन कासिम ने उस समय के खलीफा की आज्ञा से आदेश दिया था कि वे अपने हाथो मे भिक्षापात्र लेकर नित्य सवेरे घूम घूमकर अपनी जीविका का प्रबन्ध करें। और यह एक विशेष धार्मिक प्रथा है जो बौद्ध पुजारियों में प्रचलित है और सब से अन्तिम बात यह है कि समाधि या स्तूप बनाकर या और किसी प्रकार विजयी लोगो की शारीरिक स्मृति स्थापित करना आदि आदि बातें बौद्धो के प्राकृतिक गुणों की ओर संकेत करती हैं, न कि ब्राह्मणो की ओर । इन भाव रूप युक्तियो के सिवा इस बात से अभाव रूप साक्षी भी मिलती है कि सती, जनेऊ, गौ पूजा, स्नान, हवन, पुजारियों के हथकंडा और धर्माधिकारियो के अधिकारो, योगियो के इन्द्रिय-निग्रह् या दूसरी प्रथाओ और कार्यों का भी कोई उल्लेख नहीं मिलता।"

[१] **बुशारी मुकद्दसी और इब्न हौकल का "जिन्क्रे सिन्ध" ।**

[२] **इलिपट का इतिहास; पहला खंड; पृष्ठ १३८ ।**

[३] **उक्त ग्रन्थ और खंड; पृ० १० ।**

सिन्ध का सब से पहला और पुराना इस्लामी इतिहास, जो साधारणतः चचनामा के नाम से प्रसिद्ध है (और जिसके दूसरे नाम तारीखुल् हिन्द व उल् सन्द और मिनहाजुल् मसालिक हैं) को देखने से भली भाँति यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय सिन्ध में बौद्धों और ब्राह्मणो के बीच विरोध और शत्रुता चल रही थी। यह भी पता चलता है कि कुछ घरानों में ये दोनो धर्म इस प्रकार भी फैले हुए थे कि उनमे का एक हिन्दू था, तो दूसरा बौद्ध । सिन्ध के राजाओं के विवरण पढ़कर इसी आधार पर मुझे यह निर्णय करना पड़ा है कि राजा चच हिन्दू ब्राह्वाण था। उसने लड़ भिड़ कर छोटे छोटे बौद्ध राजाओं को या तो मिटा दिया था और या उन्हें अपना करद बना लिया था। [१] यह राजा ईसवी छठीं शताब्दी के अन्त में सिन्ध का शासक था। उसके बाद उसका भाई चन्द्र राजा हुआ। यह

बौद्ध मत का कट्टर अनुयायी था; और जिन लोगों ने पहले अपना धर्म छोड़ दिया था, उन्हें इसने बलपूर्वक बौद्ध बनाया था [२] यह देखकर हिन्दू ब्राह्मणों ने सिर उठाया। वह विवश होकर लड़ने के लिये निकला ; पर सफल नहीं हुआ उसके बाद चच का लड़का दाहर उसके स्थान पर राजा हुआ। यह मुझे हिन्दू ब्राह्मण जान पड़ता है।

ऐतिहासिक अनुमानों से यह जान पड़ता है कि जिस समय मुसलमान लोग सिन्ध की सीमा पर थे, उस समय देश में इन दोनों धर्मों में भारी लड़ाई हो रही थी और बौद्ध लोग ब्राह्मणों का सामना करने में अपने आपको असमर्थ देखकर मुसलमानों की ओर मेल और प्रेम का हाथ बढ़ा रहे थे। हम देखते हैं कि ठीक जिस समय मुहम्मद बिन क़ासिम की विजयी सेना नैरूँ नगर में पहुँचती थी, उस समय वहाँ के निवासियों ने अपने समनियों या बौद्ध पुजारियो को उपस्थित किया था। उस समय पता चला था कि इन्होने अपने विशेष दूत इराक् के हज्जाज के पास भेजकर उससे अभयदान प्राप्त कर लिया है। इस लिये नैरूँ के लोगों ने मुहम्मद का बहुत अच्छा स्वागत किया। उसके लिये रसद की व्यवस्था की, अपने नगर में उसका प्रवेश कराया और मेल के नियमों का पूरा पूरा पालन किया। इसके बाद जब इस्लामी सेना सिन्ध की नहर को पार कर के सदौसान पहुँचती है, तत्र फिर समनिया बौद्ध लोग शान्ति के दूत बनते हैं। [३] इसी प्रकार सेवस्तान में होता है कि समनी (बौद्ध) लोग अपने राजा विजयराय को छोड़कर प्रसन्नता- पूर्वक मुसलमानो का साथ देते हैं और उनको हृदय से मान्य करते है ।

सिन्ध मे काका नाम का कोई प्रसिद्ध बुद्धिमान् और राजनीतिज्ञ था । जाट रईस लोग उसके पास जाकर उससे सलाह करते हैं कि क्या मुसलमानों की सेना पर रात के समय छापा मारा जाय? वह उत्तर में कहता है- "यदि तुम ऐसा कर सको तो अच्छा है। पर सुनो, हमारे पंडितो और योगियो ने यन्त्र देखकर यह भविष्यद्वाणी कर दो थी कि इस देश को एक दिन मुसलमान लोग जीत लेंगे।" लोग उसकी बात नही मानते और हानि उठाते हैं। काका ने कहा- "तुम लोग अच्छी तरह जानते हो कि मेरा विचार और निश्चय प्रसिद्ध है। बौद्धो के ग्रन्थो में यह भविष्यद्वाणी पहले से ही लिखी जा चुकी है कि भारत को मुसलमान लोग जीत लेंगे । और मैं भी विश्वास रखता हूँ कि वास्तव मे ऐसा ही होनेवाला

है।" इसके बाद काका मुहम्मद बिन कासिम के पास चला जाता है और जाटो के विचार से उसको सूचित करता है और अपने ग्रन्थो की भविष्यद्वाणी उसको सुनाता है। मुहम्मद बिन क्लासिम बहुत आदरपूर्वक उसे अपने यहाँ रखता है और उसके साथियो को पुरस्कार और खिलअत आदि देकर सम्मानित करता है। इसी प्रकार राजा दाहर के बहुत से विरोधी अधिकारी (सम्भवतः बौद्ध) स्वयं आ आकर अधीनता स्वीकृत करते हैं।[४]

[१] **चचनामा; इलियट; खण्ड १; पृ० १४२ और १५२ ।**

[२] **उक्त ग्रन्थ थौर खण्ड; पृ० १५२-५३ ।**

[३] **बिलाजुरी; पृ० ४३७-३८ ।**

[४] **चचनामा; इलियट; पृ० १०६ ।**

ऐसा जान पड़ता है कि जब सिन्ध के बौद्धो ने एक ओर मुसलमानो को और दूसरी ओर ब्राह्मणों को तौला, तब उनको मुसलमान अच्छे जान पड़े। दूसरा कारण यह हो सकता है कि इससे पहले तुर्किस्तान और अफगानिस्तान के बौद्धो के साथ मुसलमानो ने जो अच्छा व्यवहार किया था और उनमे से बहुत अधिक लोगो ने जिस शीघ्रता से इस्लाम धर्म ग्रहण किया था, उसका प्रभाव इस देश के बौद्धों पर भी पड़ा था ।

भारत के अरब यात्री और भूगोल-लेखक

इस समय अरबी भाषा में जो सब से पहली भूगोल की ऐसी पुस्तक मिलती है जिस में भारतवर्ष का कुछ वर्णन है, वह इब्न खुर्दाजबा (सन् २५० हि०) की किताबुल्-मसालिक वल् ममालिक है।

(१) इब्ने खुर्दाजबा; सन् २५० हि०

यह ईसवी नवीं शताब्दी में मोतमद खलीफा अब्बासी के समय में डाक और गुप्त सूचनाओ के विभाग का अधिकारी था । इस लिये इसने बगदाद से भिन्न भिन्न देशों की यात्राओं और आने जाने के मार्गों का विवरण देने के लिये यह पुस्तक लिखी थी। इसमें उसने भारत के जल और स्थल के व्यापारी मार्गों का विवरण दिया है और यहाँ की भिन्न भिन्न जातियों का उल्लेख किया है। यद्यपि वह स्वयं भारत में नहीं आया था, पर उसकी साधारण जानकारी की नींव बतलीमूस के भूगोल पर है और विशेष विशेष जानकारियाँ उसके विभाग की सरकारी सूचनाओं के आधार पर हैं। अपने पद के कारण व्यापारियों और यात्रियों से उसकी बराबर भेंट होती रहती थी; इस लिये उसकी यह निजी जानकारियाँ मानो भारतीय यात्री की जानकारियों के समान थीं । उसकी पुस्तक सन् १८८९ ई० में ब्रेल, लीडन यन्त्रालय में डी गोइजी (De Goeje) ने प्रकाशित की थी ।

इब्ने खुर्दाजबा ने सिन्ध के अन्तर्गत जिन नगरों का उल्लेख किया है, उनसे जान पड़ता है कि अरबवाले बलोचिस्तान के बाद से लेकर गुजरात तक के सारे देश को सिन्ध समझते थे। उसने सिन्ध के नीचे लिखे नगर गिनाए हैं-

"कैकान बन्नः, मकरान, मेद, कन्धार, कसदार, बूकान, कन्दा- बोल, कन्जपुर, अरमाबील, देवल, कम्बली, कंबायाद, खम्भायत, सहनान, सदौसान, रासक, रूर, सावन्दी, मुलतान, मंडल, बेलमान, सरिश्त, केरज, मरमद, काली, धवख, बरौस (बडौच)" (पृ० ५५)। फिर भारत के प्रसिद्ध नगरों के नाम गिनाए है जो इस प्रकार है- सामल, होरैन (उज्जैन), कालौन, कन्धार (गन्धार), काश्मीर । (पृ० ६८) ।

इब्ने खुर्दाजबा कहता है- "भारत मे सात जातियों है। शाकशरी (क्षत्रिय), ये उस देश के सम्पन्न और बड़े लोग हैं। (१) इन्हीं मे से बादशाह होते है। इनके आगे सब लोग सिर झुकाते है, पर ये किसी के आगे सिर नही झुकाते । (२) बराहमः (ब्राह्मण) ये शराब और नशे की चीजे नहीं पीते । (३) कस्तरी (खत्री) ये तीन प्यालों तक पी लेते है। ब्राह्मण इनकी लड़को लेते है, पर इनको अपनी लड़की नही देते । (४) शुदर (शुद्र), ये खेती करनेवाले हैं। (५) बैश (वैश्य); ये पेशे करनेवाले हैं। (६) शन्दाल (चांडाल); ये खिलाड़ी और कलावन्त हैं।

इनकी स्त्रियों सुन्दर होती है। और (७) जम्ब (डोम), ये लोग गाते बजाते है। भारत मे ४२ प्रकार के धर्म सम्प्रदाय प्रचलित हैं। कोई ईश्वर और रसूल (अवतार से अभिप्राय है) दोनों को मानता है, कोई एक को मानता है; और कोई किसी को नहीं मानता। इनको अपनी जादूगरी और यन्त्र मन्त्र पर बड़ा अभिमान है ।" (पृ० ७१) ।

(२) सुलैमान सौदागर ; सन् २३७ हि०

यह सब से पहला अरब यात्री है, जिसका यात्रा-विवरण हम लोगों को, प्राप्त है। सन् १८११ ई० मे यह पेरिस में "सिलसिल तुत्तवारीख" के नाम से छपा है। यह एक व्यापारी था जो इराक्त के बन्दरगाह से चीन तक यात्रा किया करता था। इस प्रकार यह भारत के सारे समुद्र तट का चक्कर लगाया करता था। इसने अपनी यात्रा का यह संक्षिप्त विवरण सन् २३७ हि० में लिखा था, जिसे आज प्रायः ग्यारह सौ वर्ष होते हैं।

यह सब से पहला उद्गम है जिसमें भारतीय महासागर का नाम हमें "दरियाए हरगन्द" मिलता है। इरगन्द समुद्र के उस भाग को कहते थे, जो दक्षिणो भारत के किनारों पर बहता है। सुलैमान कहता है- "यह प्रसिद्ध है कि इसमें १९०० के लगभग टापू हैं। इन टापुओं पर एक स्त्री का राज्य है। इनमें अम्बर और नारियल के वृक्ष बहुत अधिक हैं। एक टापू दूसरे टापू से दो तीन फरसख (दूरी की एक नाप जो प्रायः साढ़े तीन मील के बराबर होती है। इसीका फ़ारसी रूप फरसंग है।) को दूरी पर स्थित है। यहाँ के लोग बहुत कारीगर हैं। ये कुरता दोनों आस्तीनों, दामनों और गले के सहित बुन लेते हैं और इसी प्रकार जहाज बनाते हैं। सब से अन्तिम टापू का नाम सरन्दीप है और इनमें से हर एक टापू का नाम दीप (द्वीप) है। इसी सरन्दीप में हज़रत आद्म के चरण चिह्न हैं। इन सब के पीछे अंडमन टापू है। यहाँ के लोग जंगली हैं। ये कुरूप और काले होते हैं। इनके घुँघराले बाल, डरावने चेहरे और लम्बे पैर होते हैं और ये नंग धड़ंग रहते हैं। ये जीते आदमी को पकड़ कर खा जाते हैं। कुशल यही है कि इनके पास नावें नही है, नहीं तो इधर से जहाजों का आना जाना कठिन हो जाता।" दक्षिणी भारत के कुछ तटो के निवासियो के सम्बन्ध में इसने लिखा है- "वे केवल एक लँगोटी बॉधते हैं।"

इसने एक विलक्षण बात यह लिखी है जिससे सारे संसार के सम्बन्ध मे उस समय के लोगों की व्यापक पारखी दृष्टि का पता चलता है इसने लिखा है कि भारतवासियों और चीनियों दोनो का यह कहना है कि संसार में केवल चार बादशाह हैं। सब से पहला अरब का बादशाह, जो सत्र बादशाहों का बादशाह अधिक धनवान है और एक बड़े धर्म का बादशाह है। फिर चीन के बादशाह का नम्बर है। फिर रूम के बादशाह का और फिर भारत के राजा बल्हरा का (गुजरात के राजा बल्लभराय) का ।

इसने भारत के समुद्र तट के चार बड़े बड़े राजाओ का उल्लेख किया है, जिनमें पहला नाम राजा बल्हरा का है- "जो सब राजाओं का राजा है। इसके यहाँ सैनिको को उसी प्रकार वृत्ति मिलती है, जिस प्रकार अरब में मिलती है। इसके सिक्के भी हैं। इस पर राजा का सन् होता है, जो उसके सिंहासन पर बैठने से आरम्भ होता है। भारत के सब राजाओ से बढ़कर यहाँ के राजा अरबों से प्रेम रखते हैं। इनका विश्वास है कि इसी लिये इनके राजाओं की उमर बड़ी होती है। वह पचास पचास वरस तक राज्य करते हैं। उनके देश का नाम कुमकुम (कोकण) है, जो समुद्र के किनारे है। आस पास के राजाओ से इसकी लड़ाइयों रहा करती हैं।" बल्ड्रा शब्द के शुद्ध रूप के सम्बन्ध मे पहले अन्वेषको मे बड़ा मतभेद था; पर अब यह भली भाँति प्रमाणित हो गया है कि बल्हा वास्तव में वल्लभराय का बिगड़ा हुआ रूप है और कुमकुम कोकण का बिगड़ा हुआ रूप है। वल्लभराय का वंश यहाँ बहुत दिनो तक शासन करता रहा है।

वल्लभराय के बाद जजर के बादशाह का उल्लेख है। जज़्र वास्तव मे गूजर है। गूजर राजा गुजरात के राजा थे। वह कहता है "इस राजा के पास सेनाएँ बहुत हैं। उसके पास जैसे घोड़े है, वैसे और किसी राजा के पास नही हैं। पर वह अरबो का बहुत बड़ा शत्रु है। इसका देश भी समुद्र के किनारे पर है। इसके पास पशु बहुत हैं। भारत के सब प्रदेश मे से यह प्रदेश चोरी से बहुत अधिक रक्षित है।"

"इसके बाद ताकन का बादशाह या राजा है। इसका देश बहुत थोड़ा है। यहाँ की खियाँ बहुत सुन्दर यहाँ का राजा सब हैं। से मेल रखता है और अरबों से प्रेम रखता है।"ताफ़न शब्द के शुद्ध रूप के सम्बन्ध में युरोपियन अन्वेषकों में मतभेद है। कुछ प्रत्तियो

में ताफन के स्थान पर ताकन शब्द भी मिला है। कुछ लोगों ने इसे वर्तमान औरंगाबाद, दक्खिन के पास के पास बतलाया है और कुछ लोग इसे काश्मोर ले गए हैं। पर मेरी समझ में यह ताकन शब्द है और दक्खिन की खराबी है।

"इसके बाद रहमी का राजा है जिसके पास राजा बल्हा और दूसरे राजाओं से अधिक सेना है। इसकी सेना के साथ पचास हज़ार हाथी रहते हैं। इसके देश में ऐसे सूती कपड़े होते हैं जैसे और किसी जगह नहीं होते ।" कपड़ों की प्रशंसा के आधार पर समझा जाता है कि यह ढाके के पास किसी रामा नाम के राजा का राज्य था।

इसने भारत के बहुत से क़ानून आदि भी लिखे हैं। उदाहरणार्थ यह कि- "जब एक दूसरे पर कोई अभियोग चलाता है, तब अभियुक्त के सामने लोहा गरम कर के रखा जाता है और उस के हाथ पर पान के सात पत्ते रखकर ऊपर से गरम लोहा रख दिया जाता है। वह उसको लेकर आगे पीछे चलता है। फिर वह उस लोहे को गिरा देता है और उसके हाथ को खाल की एक थैली में रखकर उस पर राजा की मोहर कर दी जाती है। तीन दिन के बाद धान लाकर उसको इस लिये दिए जाते हैं कि वह उनको छीलकर उनमें से चावल निकाले । यदि उसके हाथ पर गरम लोहे का कोई प्रभाव नहीं होता, तो वह सच्चा समझा जाता है; और मुद्दई पर जुरमाना कर के वह धन राजकोष में रखा जाता है।

कभी कभी गरम लोहे के बदले ताँबे के बरतन में पानी गरम किया जाता है और उसमें लोहे की एक अँगूठो छोड़ दी जाती है। तब उससे कहा जाता है कि हाथ डालकर इसमें से अँगूठी निकालो।" सुलैमान कहता है कि मैने कुछ लोगो को देखा है कि उनके हाथ बिलकुल अच्छी दशा में निकल आए। वह यह भी कहता है- "यहाँ मुरदे जलाए जाते है। उसमे चन्दन, कपूर और केसर डालते हैं ओर उसकी राख हवा में उड़ा देते हैं। यहाँ यह भी नियम है कि जब राजा मरता है, तब उसके साथ उसकी सत्र रानियाँ भी जलकर सती हो जाती हैं। पर यह केवल उनकी इच्छा पर है, इसमे कोई जबरदस्ती नहीं है।" (पृ० ५०)

वह यह भी लिखना है - "यहाँ राज्य पैतृक होता है और उसमे युवराज होते हैं। इसी प्रकार यहाँ जो और पद या पेशे हैं, वे भी पैतृक हैं। यहाँ के सब राजा मिलकर एक

बड़े राजा के अधीन नहीं रहते बल्कि हर एक का राज्य अलग अलग है। कोई किसी के अधीन नही है। लेकिन वल्लभराय (बल्हरा) सब राजाओ में बड़ा है।" (पृः ५१)

"यहाँ विवाह करने से पहले लड़के और लड़कीवाले एक दूसरे के पास संदेसा भेजते हैं। फिर उपहार और भेट आदि भेजते है। ब्याह मे खूत्र ढोल और झाँझ आदि बजाते हैं; और जहाँ तक सामर्थ्य होती है, दान देते हैं।" (पृ० ५३) "सारे भारत मे व्यभिचार का दंड दोनो अपराधियो के लिये वध है। इसी प्रकार चोरी का दंड भी वध है। भारत मे इसका ढंग यह है कि चोरों को एक ऐसी नुकीली गोल लकड़ी पर बैठाते है। जो नीचे की ओर बराबर मोटी होती जाती है। वह लकड़ी नीचे से गले तक चली आती है।" (पृ० ५४)

आज यह सुनकर लोगो को आश्चर्य होगा कि भारत मे भी लोग किसी समय लम्बी लम्बी दाढ़ियों रखते थे। हमारे इस यात्री का कहना है- "यहाँ मैंने तीन तीन हाथ की दाढ़ियां देखीं।" (पृ० ५५) "जब कोई मरता है, तब उसके सम्बन्धी आदि दाढ़ी और मोछ मुँडाते हैं। जब कोई कैद किया जाता है, तब सात दिन तक उसको अन्न पानी कुछ भी नहीं देते। यहाँ हिन्दू न्यायाधीश बैठकर अभियोगों का निर्णय करते हैं। डाकू के लिये भी वध ही दंड है। पशु को जबह करके नहीं बल्कि किसी चीज से मारकर खाते हैं। हिन्दू लोग दोपहर को भोजन करने से पहले नहाते हैं। मुँह अच्छी तरह से साफ करते हैं।

बिना मुँह साफ किए भोजन नहीं करते।" (पुग् ५६) एक अरब के लिये सब से अधिक आश्चर्य की बात यह है कि किसी देश में छुहारा न हो। हमारे इस अरब यात्री को भी इसी बात का आश्चर्य है। वह कहता है- "भारत में और सब फल तो हैं, पर छुहारे का वृक्ष नहीं है। और उनके पास एक फल ऐसा है, जो हमारे यहाँ नहीं है।" (पृ० ५६) हो न हो, यह आम होगा। भारत में अंगूर भी नहीं हैं। अनार अलबत्ता हैं। सजावट पसन्द करने वाले हमारे इस यात्री को इस बात का भी आश्चर्य है कि "भारत में जमीन पर फर्श बिछाने की प्रथा नहीं है।" (पृ० ५४) "स्त्रियां रखने की संख्या भी यहाँ निश्चित नहीं है। जो जितनी चाहे, उतनी रखे । इनका भोजन चावल है।" (पृ० ५४) "चीन का धर्म वास्तव में भारत से ही निकला है। वे बौद्धों की मूर्त्तियाँ पूजते हैं। चिकित्सा, ज्यौतिष और दर्शन भारत में है।" (पृ० ५७) "जानवरों में यहाँ घोड़े कम हैं।" (पृ० ५७)

"भारत की अपेक्षा चीन अधिक साफ सुथरा देश है। दोनों देशों में बड़ी बड़ी नदियाँ हैं। भारत में जङ्गल बहुत हैं और चीन पूरा बसा हुआ है। भारतवासियों का पहनावा यह है कि एक कपड़ा कमर से बाँधते हैं और दूसरा ऊपर डाल लेते हैं। स्त्रियाँ और पुरुष सब सोने और जवाहिरात के गहने पहनते हैं।"

(३) अबूज़ैद हसन सैराफ़ी; सन् २६४ हि०

फारस की खाड़ी में सैराफ एक प्रसिद्ध बन्दर था! अबूजैद वहीं का रहने वाला था। उसकी पुस्तक में "सन् २६४ हि०" लिखा मिलता है। मसऊदी नामक यात्री सन् ३०० हि० मे सैराफी में उससे मिला था। यह भी एक अरब व्यापारी था। इमने सुलैमान का यात्रा विवरण पढ़कर पचीस तीस बरस बाद उसका परिशिष्ट लिखा था । वह भी सैराफ और भारत तथा चीन के मध्य व्यापार के लिये समुद्र यात्रा किया करता था। वह लिखता है- " चीन में राजनीतिक क्रान्तियों होने के कारण हमारे समय मे वहाँ से अब लोगो के व्यापारिक कार बार बन्द हो गए हैं।" इसने इस बात का दावा किया है कि- "मैं पहला व्यक्ति हूँ जिसने यह पता लगाया है कि भारत और चीन का समुद्र ऊपर से फिरकर भूमध्य सागर मे मिल गया है ।" (पृ० ८८) यह सब से पहला अरब यात्री है जो जात्रा के महाराज नामक राजा का उल्लेख करता है और उसकी तुलना में कुमार देश (कन्या कुमारी) का नाम लेता है और कहता है- "यहाँ का राजा महाराज के अधीन है। यहाँ व्यभिचार और मद्य दोनो मना हैं। यहाँ इनका नाम निशान भी नहीं है।" (पृ० ९४) "भारत और चीन दोनों देशो में पुनर्जन्म का विश्वास इतना दृढ़ है कि लोग अपने प्राण दे देना एक बहुत ही साधारण काम समझते हैं।" (पृ० १०१) वह कहता है "वल्लभराय और दूसरे राजाओ के राज्य मे कोई कोई ऐसे भी होते हैं जो जान बूझकर अपने आपको आग मे जला डालते हैं।" (७० ११५) "यहाँ राजा बनाने के समय यह प्रथा है कि राजा के रसोई घर में चावल पकाए जाते हैं और तीन चार सौ आदमी अपनी इच्छा से वहाँ आते हैं।

राजा के सामने एक पत्ते पर वह चावल रख दिए जाते हैं। राजा उसमे से थोड़ा सा उठाकर खाता है। फिर एक एक आदमी राजा के सामने जाता है। राजा उनको थोड़े थोड़े

चावल अपने सामने से देता जाता है। ये सब आदमी राजा के साथी होते हैं। जब राजा मरता है, तब ये सब भी उसके साथ उस दिन आग में जल जाते हैं।" हमारे यात्री ने इस प्रकार की कई घटनाओ का उल्लेख किया है। वह यह भी कहता है- "यहाँ पानी बहुत बरसता है और उसीसे यहाँ की खेती होती है।" (पृ० १२६) फिर वह बौद्ध भिक्षुओं का उल्लेख करता है, जो "नंगे बदन सिर और शरीर के बाल बढ़ाए, नाखून बढ़ाए, गले में मनुष्यों की खोपड़ियों की माला पहने देश देश फिरते रहते हैं। जब उनको भूख लगती है, तब वे किसी के दुवार पर खड़े हो जाते हैं।" (पृ० १२९) साथ ही उसने दक्षिण भारत की देवदासियो का भी उल्लेख किया है। (पृ० १२९) इसके बाद मुलतान की प्रसिद्ध मूर्ति का हाल लिखा है। यह नारियल वाले देश का उल्लेख करता है और उसके व्यापार का हाल भी लिखता है। अन्त में कहता है- "भारत के राजा लोग कानों में सोने के बाले पहनते हैं, जिनमें बड़े बड़े बहुमूल्य मोती रहते हैं। वे गले में माला पहनते हैं, जिनमें बहुमूल्य रत्न होते हैं। यही मोती और रत्न उनकी सम्पत्ति और कोप हैं। सेनाओं के सेनापति तथा दूसरे अधिकारी भी अपने अपने पद और मर्यादा के अनुसार इसी प्रकार के गहने पहनते हैं। यहाँ अमीर लोग आदमी की गरदन पर सवार होकर चलते हैं। उस आदमी के हाथ में छत्र होता है, जिसमें मोर के पर लगे होते हैं।" (५० १४५) ।

इस यात्री को यह देखकर आश्चर्य होता है- "यहाँ दो आदमी भी एक साथ मिलकर नहीं खाते थोर न एक ही दस्तरखान पर खाते हैं; और इम प्रकार खाने को बहुत अनुचित समझते हैं। राजाओं और अमीरो के यहाँ यह प्रथा है कि नारियल की छाल का थाली की तरह का एक बरतन नित्य बनता है और वह हर एक मादमी के सामने रखा जाता है। भोजन के बाद जूठा पदार्थ उस छाल की थाली के सहित फेंक दिया जाता है।" (पृ० १६४) वह यह भी साक्षी देता है- "यहाँ के प्रायः राजा अपनी रानियों से परदा नहीं कराते। जो कोई उनके दरबार मे जाता है, वह उन्हे देख सकता है ।" (पृ० १६७)

(४) अबू दल्फ मुसइर बिन मुहलहिल यंबूई सन् २३१ हि०

यह बहुत बड़ा अरब यात्री है। इसका समय सन् ३३१ हि० से सन् ३७७ हि० तक निश्चित हुआ है। यह बग़दाद से तुर्किस्तान आया था और बुखारा के शाह नसर सामानी (मृत्यु सन् ३३१ हि०,) से मिला था। वहाँ से यह एक चीनी राजदूत के साथ चीन चला गया था। फिर चीन से चल कर तुर्किस्तान, काबुल, तिब्बत ओर काश्मीर होता हुआ मुलतान, सिन्ध और भारत के दक्षिणी समुद्र तट कोलम तक पहुंचा था। इसकी पुस्तक का कुछ अंश बरलिन में सन् १८४५ ई० में लैटिन अनुवाद के सहित छपा है। पर वह मेरे देखने मे नही आया। हाँ, उस के कुछ संक्षिप्त उदाहरण इब्न नदीम ने किताबुलू फिहरिस्त में याकूत ने मोजमुल् बुल्दान में और क़जवीनी ने आसारुल् बिलाद मे दिए हैं। वे अंश मैं ने देखे हैं। इसने मुलतान के मन्दिर का विस्तृत विवरण दिया है। इसी प्रकार मदरास मे पैदा होनेवाली और बननेवाली चीजो का भी वर्णन किया है। सम्भवतः यह पहला अरब यात्री है जो भारत मे स्थल के मार्ग से आया था ।

(५) बुजुर्ग बिन शहरयार सन् ३०० हि०

यह एक जहाज चलानेवाला था, जो अपने जहाज इराक के बन्दरगाह से भारत के समुद्रतटो और टापुओं से लेकर चीन और जापान तक ले जाता और ले आता था। इसने अथवा इसके और साथियों ने जलमार्ग में जो जो बातें देखो सुनी थी, वे सब अरबी भाषा में अजायबुलू हिन्द नामक पुस्तक में लिखी हैं, जिसमें दक्षिणी भारत और गुजरात की भिन्न भिन्न घटनाएँ और बातें मिलती हैं। इनमें से सब से अधिक महत्व की घटना एक हिन्दू राजा का कुरान का हिन्दी में अनुवाद करा के सुनना है। इसने भारत के नगरों में से कोलम, कल्ला, छोटा काश्मीर (पंजाब), सैमूर (चैमूर), सोपारा, ठट्ठा, थाना, मानकेर (महानगर जो वल्लभराय की राजधानी थी) और सीलोन या लंका का नाम लिया है। यहाँ के योगियों, उनकी तपस्याओं और अपने आपको मार डालने और जला डालने की बहुत सी कथाएँ लिखी हैं। इस पुस्तक में विलक्षण बात यह है कि स्थान स्थान पर व्यापारियों के

लिये "बनियानिया" शब्द का व्यवहार किया गया है, जो स्पष्टतः हिन्दी शब्द बनिया है। उस समय छोटी नावो को अरब मल्लाह बारजा कहते थे। यह हिन्दी का बेड़ा शब्द है। इसका अरबी बहुवचन "बवारिज" है। पर इस पुस्तक में बवारिज शब्द का व्यवहार बार बार समुद्री डाकुओं के लिये भी किया गया है। डोली और डोले के अर्थ में हिडोल शब्द का और पलंग के अर्थ में बलंज शब्द का भी व्यवहार हुआ है। हिन्दुओं की छूत छात का भी इस में उल्लेख है। (पृ० ११८) ।

यह पुस्तक सन् १८८६ ई० में लीडन में छपी है। इसका फ्रान्सीसी अनुवाद तो इसीके साथ प्रकाशित हुआ है, पर अँगरेजी अनुवाद अभी इसी महीने में छप कर निकला है।

(६) मसऊदी ; सन् २०३ हि०

मसऊदी, जिसका नाम अबुलहसन अली था, एक ऊँचे दरजे के इतिहास-लेखक, भूगोल- लेखक और यात्री के रूप में प्रसिद्ध है। इसने अपनी आयु के पचीस वर्ष यात्रा और घूमने फिरने में बिताए हैं। इसने अपने जन्म-स्थान बरादाद से यात्रा आरम्भ की थी और इराक, शाम, आरमीनिया, रूम (एशियाये कोचक या एशिया माइनर) अफ्रीका, सूडान और जग के अतिरिक्त चीन, तिब्बत, भारत और सरन्दीप की यात्रा की थी। जल से इसने भारत, चीन, अरब, हब्श, फारस और रूम की नदियो की सैर की थी। इसके कई बड़े बड़े प्रन्थो मे से केवल दो ऐतिहासिक ग्रन्थ मिलते हैं। एक पुस्तक किताब उल् तम्बीह वल् अशराफ है जो संक्षिप्त है। दूसरी पुस्तक इससे बड़ी है जिसका नाम मुरूजुज-जहव व मआदनुल् जौहर है। इस दूसरी पुस्तक मे जानकारी की बहुत सी बातें भरी है। यह मानो इस्लाम का इतिहास है। पर इसकी भूमिका मे सारे संसार की जातियो का सम्मिलित इतिहास है। उन्हीं में भारत भी है। इसने नदियो का वर्णन बहुत विस्तार के साथ किया है। इसके विवरण से यह एक विलक्षण बात मालूम होती है कि जिस प्रकार आजकल जहाजी कम्पनियो और उनके जहाजो के नाम होते हैं, उसी प्रकार उन दिनो भी जहाजो के मालिको के नाम पर या भाइयो और बेटो के नाम सहित (एंड ब्रदर्ट्स, एंड सन्स के ढंग पर) उन

जहाजों के नाम रखे जाते थे, जो भारतीय महासागर मे आते जाते थे। इसने सब से पहले रायद (राबी) नदी, गगा और पजाब की पाँचो नदियों का बार बार नाम लिया है (पृ० ३७२), और यह बतलाया है कि इनमे से हर एक नदी कहाँ कहाँ से निकली है।

इसने दूसरे कन्नौज का भी उल्लेख किया है, जो प्रसिद्ध कन्नौज से अलग था जो सिन्ध मे था और जिस के राजा बौवरह के नाम से, प्रसिद्ध थे और उसका स्थान बतलाया है। लिखा है- "तिब्बत के पहाड़ो से अधिक बड़े पहाड़ मैने कही नहीं देखे"। (पृ० ३८९) यह स्पष्ट है कि इन पहाड़ो से हिमालयका अभिप्राय है। यह भी लिखा है "भारत में बहुत सी बोलियाँ बोली जाती हैं।" (पृ० १६३ और ३८१) विलक्षण बात यह है कि इसने कन्धार को रहबूतों (राजपूतों) का देश बतलाया है। (पृ० ३७२) खम्भात में वह सन् ३०३ हि० में पहुँचा था। वह उस समय राजा वल्लभराय के अधीनस्थ एक ब्राह्मण बनिए के शासन में था। (पृ० २५४) वह सन् ३०० के बाद अपना मुलतान पहुँचना प्रकट करता है और वहाँ के मुसलमान अरब बादशाह और मन्त्रियों के नाम बतलाता है। (पृ० ३७६) ।

मसऊदी ने अपनी पुस्तक मुरुजुज-जहब सन् ३३२ हि० में अपनी यात्रा समाप्त करने के उपरान्त लिखी थी। यह पुस्तक पेरिस में फ्रान्सीसी अनुवाद के सहित नौ खंडों में प्रकाशित हुई है और मिस्र में कई बार प्रकाशित हो चुकी है।

(७) इस्तखरी; सन् ३४० हि०

अबू इसहाक इब्राहीम बिन मुहम्मद फारसी साधारणतः इस्तखरी के नाम से प्रसिद्ध है। यह बग़दाद के महल्ले कर्ख का रहने- वाला था। यह बहुत बड़ा यात्री था और इसने एशिया के प्रायः देशों की यात्रा की थी। भूगोल के सम्बन्ध में इसकी दो पुस्तकें हैं- एक किताबुलू अकालीम और दूसरी किताबुल मसालिकुल् ममालिक । पहली पुस्तक सन् १८३९ ई० में गोथा में और दूसरी पुस्तक सन् १८७० ई० में लीडन में छपी है। इसमें अरब और ईरान के बाद मावरा उन् नहर या ट्रान्स काकेशिया, काबुलिस्तान, सिन्ध और भारत का उल्लेख है। इसमें भारतीय महासागर का महासागर कहता है, विस्तार पूर्वक वर्णन है। वह सन् ३४० हि० (सन् ९५१ ई०) मे भारत आया था। वह अपने समय के इब्न हौकल नामक

यात्री से यहीं मिला था। उसने भी वल्लभराय के महानगर का उल्लेख किया है। पर जान पड़ता है कि उस समय उसके राज्य के कई टुकड़े हो चुके थे। वह लिखता है कि इसके अधीन बहुत से राजा हैं। इसके सिवा इसने सुलतान, मन्सूरा, समन्द, अलोर और सिन्धु नद का भी उल्लेख किया है। इसका काम केवल देशो का हाल लिखना नहीं था, बल्कि संसार का मानचित्र या नक्शा तैयार करना था, जिसमे सिन्ध का नक्शा भी है।

(८) इब्न हौक़ल; सन् ३३१-५८ हि०

(सन् ९४३-७९ ई०)

यह बग़दाद का एक व्यापारी था। सन् ३३१ हि० (सन् ९४३ ई०) मे यह बगदाद से चला था और युरोप, अफ्रीका तथा एशिया के देशो में इसने भ्रमण किया था। स्पेन और सिसली से लेकर भारत तक की जमीन इसने छान मारी। इसने भी देशो के नक्शे बनाए थे; पर दुःख है कि इसकी जो पुस्तक छपी है, उसमे ये नक्शे नही दिए गए है। लेकिन इलियट साहब ने इसकी पुस्तक की एक हाथ की लिखी रद्दी प्रति अवध के शाह के पुस्तकालय मे देखी थी। उसी प्रति से लेकर उन्होने अपनी पुस्तक मे सिन्ध का वह नक्शा लगा दिया है। वह नक्शा अशुद्ध होने पर भी कदाचित् भारत के किसी प्रदेश का पहला भूगोल सम्बन्धी नक्शा है, जो संसार मे बना था। इस नक्शे मे गुजरात से लेकर सीस्तान तक की बस्तियो के स्थान दिखलाए गए है। यह पहला अरब यात्री और भूगोल- लेखक है जिसकी पुस्तक मे भारत की पूरी लम्बाई चौड़ाई बतलाने का प्रयत्न किया गया है। वह कहता है- "भारत के महादेश मे सिन्ध, काश्मीर और तिब्बत का भाग मिला हुआ है। (पृ०९) "भारत के पूरब में फारस का सागर है और उसके पच्छिम और दक्खिन मुसल- मानो के देश हैं और उसके उत्तर मे चीन है।" (पृ० ११) भारतवर्ष की लम्बाई बहुत है। मकरान से मन्सूरा, बुद्ध और सारे सिन्ध प्रान्त से लेकर, यहाँ तक कि कन्नौज तक उसका अन्त होता है। फिर उससे आगे बढ़कर तिब्बत तक चार महीनों का रास्ता है। चौड़ाई फारस के सागर से लेकर क़न्नौज तक तीन महीनों का रास्ता है।" चाहे यह वर्णन कितना ही रद्दी हो, पर भारत की सीमा नियत करने का यह पहला प्रयत्न है।

(९) बुशारी मुक़द्दसी; सन् ३७५ हि०

शम्सुद्दीन मुहम्मद बिन अहमद बुशारी शाम देश के जेरूसलम का रहनेवाला था। इसने अपनी पुस्तक सन् ३७५ हि० में समाप्त की थी। इसने अपने समय के केवल इस्लामी संसार की यात्रा की थी। यह भारत भी आया था, पर सिन्ध से आगे नहीं बढ़ा था। इसकी पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसमें देशों के नक्शे थे, पर वे नक़्शे छपी हुई पुस्तक में नहीं हैं। इसकी पुस्तक का नाम अहसनुत तकासीम फ़ी मारफतिलू अकालीम है। पुस्तक का अन्तिम प्रकरण सिन्ध के सम्बन्ध में है। हमारे सामने उसका वह दूसरा संस्करण है जो सन् १९०६ ई० में लीडन में छपा था ।

मुक़द्दसी की पुस्तक की एक और विशेषता यह है कि उसने महादेशों का विभाग देशों या प्रान्तों में और देशों या प्रान्तों का विभाग नगरों में किया है। फिर हर एक का अलग अलग वर्णन किया है और हर जगह के व्यापार, उपज, कारीगरी, धर्मों और सिक्कों का हाल लिखा है। इस लिये इस पुस्तका का विशेष महत्व है। इसी प्रकार इसने सिन्ध का हाल १४ पृष्ठों में लिखा है।

(१०) अलबेरूनी; सन् ४०० हि०

किताबुल् हिन्द नामक पुस्तक से लोग इतने अधिक परिचित हैं कि उसका विशेष वर्णन करने की अवश्यकता नहीं है। केवल इतना कहना बहुत है कि अलबेरूनी जो असल में ख्वारिज्म (खीवा) का रहनेवाला था, जब भारत में आया, तब महमूद गजनवी की चढ़ाइयाँ आरम्भ नही हुई थी। पर इसने अपनी पुस्तक महमूद के दो बरस बाद लिखी है। इसने किताबुल् हिन्द के सिवा और भी बहुत सी पुस्तकें लिखी है, जिनमे से कानून मसऊदी विशेष रूप से उल्लेख के योग्य है और जो अभी तक छपी नही है। उस मे भारत के बहुत से नगरो के नाम लिखे हैं और उनकी लम्बाई चौड़ाई भी निश्चित की है।

किताबुलू हिन्द मूल अरबी में भी छप चुकी है और फिर उसका अँगरेजी और हिन्दी अनुवाद भी छप चुका है। इसमे भारत का पूरा भूगोल विस्तार पूर्वक दिया हुआ है ।

(११) इब्न बतूता, सन् ७७९ हि० (१३१७ ई०)

यह यात्री मराकश या मरक्को का रहनेवाला था और मुहम्मद तुग़लक् के समय में भारत में आया था। उसने इस देश का चप्पा चप्पा देखा। उसने अपने अजायबुल् अस्फार नामक यात्रा-विवरण मे अपनी देखी हुई बातो का जैसी सुन्दरता से वर्णन किया है वह सभी लोग जानते है। हमारे लिये उसके वर्णन का सब से अधिक महत्व का अंश वह है जिस मे दक्षिण भारत के उस समय का वर्णन है, जिस समय मुसलमानो ने उसे जीता नही था ।

(१२) दूसरे इतिहास लेखक और भूगोल-लेखक

ऊपर के पृष्ठों में केवल उन महाशयो का वर्णन किया गया है जो आप भारत मे आए थे। लेकिन इनके सिवा बहुत से ऐसे अरब भूगोल-लेखक या इतिहास-लेखक भी है जिन्होने भारत का हाल लिखा है। इनमे से एक इब्न रस्ता (सन् २९० हि०) और दूसरा कदामा बिन जाफर (सन् २९६ हि०) है। फिर बिलाजुरी (सन् २७९ हि० ८९२ ई०) है जिसका फुतूहूल् बुल्दान नामक ग्रन्थ बहुत बहुमूल्य है। इसके सिवा इब्न नदीम बगदादी (सन् ३७० हि०) की किताबुल् फेहरिस्त नामक पुस्तक भी है ।

ये तो आरम्भ के लोग हैं, और अन्त के लोगों में सूफ़ी दमिश्की (सन् ७२८ हि०, १३२६ ई०) है जिसकी पुस्तक अजायबुल् बर्र वल् बहर है। सिसली का अरब भूगोल-लेखक इदरीसी (सन् ५६० हि० ११६५ ई०) है। ईरान का जकरिया कजवीनी (सन् ६८२ हि० १२८३ ई०) है जिसकी पुस्तक का नाम आसारुल् बिलाद है। एक और अबुलू फिदा (सन् ७३२ हि० १३३१ ई०) है जिसकी पुस्तक तकवीमुल् बुल्दान है। एक याकूत (सन् ६२७ हि० १२२९ ई०) है जिसकी बहुत बड़ी पुस्तक मुअजमुल् बुल्दान है। मिस्र का नवीरी (सन् ७३३ हि० १३३१ ई०) भी है जिसकी पुस्तक नहायतुल् रब फी अफनूनुलू अदब है; और शहाबुद्दीन उमरी (सन् ७४८ हि०; १३४६ ई०) है जिसकी पुस्तक का नाम मसालिकुल् अब्सार व ममालिकुल् अम्सार है।

इदरीसी के कुछ अंश और नहायतुल् अरब के ५ खंड और मसालिकुल् अब्सार का केवल एक खंड मिस्र में छपा है। इन सब में भारत का कुछ न कुछ हाल है। इन सब पस्तकों में भारत के सम्बन्ध की जो बातें हैं, यदि वे सब इकट्ठी कर दी जायँ, तो इलियट का अधूरा काम बहुत कुछ पूरा हो जाय और मध्य काल के भारत के सम्बन्ध की बहुत सी नई बातें हमारे सामने आ जायँ। युरोपियन इतिहास-लेखकों ने प्राचीन भारत का वर्णन करने में यूनानी वर्णनों को बहुत महत्व दिया है और उसकी बालकी खाल निकालने और झूठ को सचकर दिखलाने और एक एक नाम का ठीक पता लगाने में बहुत अधिक परिश्रम किया है। यदि वे अरबों के विवरणों पर थोड़ा भी परिश्रम करते, तो यूनानी और फारसी इतिहासों के बीच जो कई शताब्दियों का गड्डा पड़ता है, वह बहुत कुछ पट जाता ।

व्यापारिक सम्बन्ध

अरबों का देश तीन ओर से समुद्रो से घिरा हुआ है। उस देश मे जितने आदमी बसते हैं, उनके हिसाब से वहाँ उतनी उपज नहीं होती। ऐसा देश स्वाभाविक रूप से व्यापारी होगा। फिर सौभाग्य से उसके चारो ओर संसार के बड़े बड़े देश बसे हैं। एक ओर इराक, दूसरी ओर शाम, तीसरी ओर मिस्र और अफ्रीका, सामने भारत, एक ओर ईरान है। इन सब देशों के साथ अरब-वालों के पुराने प्रत्यक्ष सम्बन्ध थे। यहाँ हमारा केवल भारत से सम्बन्ध है। लोहित सागर, भारतीय महासागर और फारस की खाड़ी पर बहरीन, उमान, हजरमौत, यमन और हिजाज आदि बसे हुए हैं और स्वभावतः इन्हीको इस समुद्री व्यापार का अवसर मिला था । इससे पहले यह दिखलाया जा चुका है कि अरवलोग भारत के समुद्र- तटो पर आया जाया करते थे और भारत के समुद्र तटों से जहाज चलकर यमन के बन्दरगाह में पहुँचते थे और वहाँ से उनका सामान ऊंटो पर लद कर स्थल मार्ग से लोहित सागर के किनारे किनारे शाम और मिस्र जाता था और वहाँ से रूम सागर होकर युरोप चला जाता था ।

हमको जब से संसार के व्यापारिक विवरणो का ज्ञान है, तब से हम अरबों को कारबार में लगा हुआ पाते हैं। और इसी मार्ग से उनके व्यापारक दलों को शाम और मिस्र

तक आते जाते देखते हैं। इस समय हमारे पास संसार की सब जातियों के इतिहास की सब से पुरानी पुस्तक तौरात या तौरेत है। उसमें हजरत इब्राहीम के दो ही पीढ़ी बाद हजरत यूसुफ के समय में हम इस व्यापारी दल को इसी मार्ग से जाता हुआ पाते हैं। यह वही दल है जो हजरत यूसुफ को मिस्र पहुँचाता है (जन्म; २५; ३७)। इस मार्ग का उल्लेख यूनानी इतिहास लेखकों ने भी किया है। तात्पर्य यह कि हजरत यूसुफ के समय से लेकर मार्की पोलो और वास्को डि गामा के समय तक भारत के व्यापार के मालिक अरब लोग ही रहे।[१]

जब यूनानियों ने मिस्र पर अधिकार कर लिया, तब उन्होंने इस व्यापार को सीधे अपने हाथ में ले लिया; क्योंकि मिस्र से शाम तक का मार्ग उनके लिये शान्ति-पूर्ण था। इस प्रकार अरबों के व्यापार की वह पहली रौनक नहीं रह गई। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में "अरब" नामक निबन्ध का लेखक लिखता है-

"उन दिनों दक्षिण-पश्चिमी अरब (हजरमौत और यमन) के सम्पन्न होने का सब से बड़ा कारण यह था कि मिस्र और भारत के बीच का व्यापारिक द्रव्य पहले समुद्र के मार्ग से यहाँ आता था और फिर स्थल के मार्ग से पश्चिमी समुद्र तट पर जाता था। उस समय यह व्यापार बन्द हो गया, क्योंकि मिस्त्र के बतलीमूसी बादशाहों ने भारत से इसकन्दरिया तक एक सीधा मार्ग बना लिया था ।"[२]

जान पड़ता है कि इस अभिप्राय से यूनानियों ने सकोतरा टापू पर अधिकार कर के वहाँ अपना उपनिवेश स्थापित कर लिया था, जिसका स्मारक मुसलमान अरब मल्लाहों को वहां बाद में भी दिख- लाई दिया ।[३]

[१] एलफिन्स्टन कृत भारत का इतिहास; दसवाँ प्रकरण; "व्यापार" ।

[२] एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका ११ वां सं० खंड २, पृ० २६४ ।

[३] अबूजैद का यात्रा-विवरण; पृ० १३४; (पैरिस में प्रकाशित) ।

पर यह प्रकट होता है कि यह व्यापार पूरी तरह से यूनानियों के हाथ में नहीं चला गया था; क्योंकि महात्मा मसीह से दो शताब्दी पहले आगा थरशीदस नामक यूनानी इतिहास

लेखक लिखता है “जहाज भारत के समुद्र तट से सबा (यमन) आते हैं और वहाँ से मिस्र पहुँचते हैं।" [१]

इसी प्रकार आर्टीमिडोरस, जो ईसा से सौ वर्ष पहले हुआ था, कहता है- "सबा (यमन की एक जाति) लोग आस पास के लोगो से व्यापार की वस्तुएँ मोल लेते है और अपने पड़ोसियो को देते हैं; और इसी प्रकार हाथो हाथ वे बस्तुएँ शाम और टापू तक पहुँच जाती हैं।" [२]

[१] डन्कर (Duncker) कृत History of Antiquities पहला खंड, पृ० ३१०-१२

[२] एल्फिन्स्टन साहब ने भी बहुत जाँच करके यही परिणाम निकाला है। देखो उनका बनाया हुआ "भारत का इतिहास", पहला खंड, पृ० १८२ (सन् १६१६ ई० वाला संस्करण ।)

इस प्रकार के और दूसरे विवरणो से भी यह सिद्ध है कि अरव लोग उस समय बिलकुल मिट नहीं गए थे, बल्कि यूनानियो के साथ साथ उनका काम भी चला चलता था?

भारत और अरब का दूसरा मार्ग, जो फारस की खाड़ी में से होकर था, सदा खुला रहा; और समुद्र तटों के पारसी और अरब जल और स्थल मार्ग से सदा अपनी वस्तुएँ लाते और ले जाते रहे। वे भारत के समुद्र तटो के सभी स्थानों और भारतीय महासागर के एक एक टापू को देखते भालते बंगाल और आसाम होकर चीन चले जाते थे और फिर वहाँ से उसी मार्ग से लौट आते थे ।

भारत और युरोप के बीच के मार्ग का पहले भी बहुत महत्व का था और अब भी है। इसी मार्ग के कारण इतिहास मे बहुत बड़े बड़े परिवर्त्तन हुए हैं। पहले कहा जा चुका है कि किसी समय यह मार्ग केवल अरबों के हाथ में था। महात्मा ईसा से प्रायः तीन सौ बरस पहले जब यूनानियों ने मिस्र पर अधिकार किया, तब इस समुद्री मार्ग पर भी उनका अधिकार हो गया। ईसा के छः सौ बरस बाद जब इस्लाम धर्म चला और अरबों की उन्नति हुई, तब ईसवी छठी शताब्दी में वे लोग मिस्र से लेकर स्पेन तक छा गए और साथ ही रूम सागर पर भी उनका अधिकार हो गया। रूम सागर के क्रीट और साइप्रस आदि महत्वपूर्ण टापुओं को भी उन्होंने अपने अधीनस्थ प्रदेशों में मिला लिया। इसका फल यह हुआ कि

संसार में व्यापार करने की सब से बड़ी सड़क अरबों के हाथ में आ गई और कई शताब्दियों तक उसपर उनका अधिकार रहा। ईसवी चौदहवीं शताब्दी में युरोप की ईसाई जातियों ने रूमी प्रदेशों से अरबों को निकालने का पूरा प्रयत्न किया । पर ठीक जिस समय वे लोग स्पेन और उत्तरी अफ्रीका में सफल हो रहे थे और रास्ता साफ कर रहे थे, उसी समय एशियाई कोचक से तुर्कों ने सिर निकाला और फिर रूम सागर का यह मार्ग मुसलमानों के ही हाथ में रह गया।

इस कठिनता ने युरोप की जातियों को भारत का कोई दूसरा मार्ग ढूंढ निकालने के लिये विवश किया। इसी प्रयत्न का यह पल है कि उत्तरी अफ्रीका और रूम सागर को छोड़ कर दक्षिणी अफ़्रीक़ा के मार्ग से भारत का पता लगाया गया। इस मार्ग में पहले तो डच और पुर्तगाली ही थे, पर बाद को अंगरेज और फ्रान्सीसी भी मिल गए। भारत का जो व्यापार अरब के हाथ में था, अब उसे ये लोग उनसे लड़ भिड़कर छीनने लगे। इस छीना झपटी में भारत के समुद्र तटों पर पश्चिमवालों और पूरबवालों में एक बड़ी समुद्री लड़ाई भी हुई। इस लड़ाई में पूरबवालों की हार हुई और यही हार मानो पूरबवालों की आगे चलकर होनेवाली सब हारों का श्रीगणेश प्रमाणित हुई। इस लड़ाई में मिस्री, अरबी और दक्खिन के भिन्न भिन्न हिन्दू और मुसलमान राज्यों के लड़ाई के जहाजों के बेड़े एक साथ मिलकर युरोप की समुद्री यात्रा करनेवाली जातियों के जहाजों से लड़े थे। इस हार का यह फल हुआ कि प्रायः उसी समय से आज तक भारत के सभी टापुओ और समुद्र तटों का व्यापार युरोपवालो के हाथ में चला गया । मदरास के अरब व्यापारियों के (जो मोपला कहलाते हैं और जो उस समय भारत के उस कोने और टापुओं के व्यापार के मालिक थे) जहाजो को सब प्रकार से नष्ट कर दिया गया ।

इसके बाद भी रूम सागर के पासवाले मार्ग पर अधिकार करने का विचार युरोपवालों के मन से दूर नहीं हुआ। उस मार्ग को और छोटा करने के लिये लोहित सागर और रूम सागर के बीच का सँकरा स्थल खोद कर स्वेज की नहर निकाली गई। अब मिस्र और स्वेज़ पर अधिकार रखना आवश्यक समझा गया, जिसमें युरोप और भारत के बीच का यह महत्व पूर्ण ऐतिहासिक मार्ग सदा के लिये रक्षित हो जाय ।

ये ऐसी घटनाएँ हैं जो भारत और उसके टापुओ पर युरोपियन जातियो के व्यापारियों के आने जाने के सम्बन्ध में भारत के हर एक इतिहास मे लिखी हुए मिलती हैं। इन घटनाओ से अरबों और हिन्दुओ के व्यापारिक सम्बन्धो के इतिहास के भिन्न भिन्न अंग प्रकट होते हैं।

भारत और अरब का दूसरा व्यापारिक मार्ग, जिसका सम्बन्ध फारस की खाड़ी से था, सदा से बराबर अरबो के ही हाथ में दिखाई पड़ता है। हाँ, उमान, हजरमौत और इराक मे भिन्न भिन्न राज्यों के अदलने बदलने से और बन्दरगाहो के टूटने और बनने से व्यापार का केन्द्र एक नगर से दूसरे नगर से या एक बन्दगाह से दूसरे बन्दरगाह मे हटता बढ़ता रहा ।

उबला बन्दरगाह

सन् १४ हि० मे इराक पर अरबों का अधिकार होने से पहले ईरानियो के समय में भारत के लिये फारस की खाड़ी का सब से बड़ा और प्रसिद्ध बन्दरगाह उबला था जो बसरे के पास था। व्यापार के लिये उबले और भारत के बीच इतना अधिक आना जाना होता था कि अरब लोग उबले को भारत का ही एक टुकड़ा समझते थे। चीन और भारत से आनेवाले जहाज यहीं ठहरते थे और यहीं से चलते थे।[१]

भारत के व्यापार और उपज का अरबों की दृष्ठि में कितना अधिक महत्व था, इसका अनुमान इस बात से हो सकता है कि एक बार हजरत उमर ने एक अरब यात्री से पूछा था कि भारत के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या सम्मति है? उसने तीन संक्षिप्त वाक्यों में इसका ऐसा मार्मिक उत्तर दिया, जिससे अधिक मार्मिक और कोई उत्तर हो ही नहीं सकता। उसने कहा था- "उसकी नदियाँ मोती हैं, पर्वत लाल हैं और वृक्ष इत्र हैं।"[२]

इराक़ को जीतने के बाद हजरत उमर को चिन्ता हुई कि इराक़ का यह बन्दरगाह भी अरबों के हाथ में आ जाय । इस लिये सन् १४ हि० में आपने उसपर अधिकार करने की आज्ञा दी और लिखा- "इसको मुसलमानों का व्यापारिक नगर बना दिया जाय।"[३] उस समय से लेकर सन् २५६ हि० तक यह बन्दरगाह बना रहा ।[४] जंगियों की लड़ाई में सन्

२५६ हि० में यह नष्ट हो गया । इराक़ का दूसरा प्रसिद्ध बन्दरगाह अरबों ने सन् १४ हि० में बसरे के नाम से बनाया था; पर वह उबला की व्यापारिक मर्यादा को नष्ट न कर सका। इसका कारण कदाचित् यह हुआ कि वसरा व्यापारिक केन्द्र होने के बदले अरबो का सामरिक और राजनीतिक केन्द्र अधिक हो गया। लेकिन इतने पर भी भारत, चीन और हब्श के व्यापार का रुख धीरे धीरे उधर होने गला और राजनीतिक परिवर्त्तन आदि होने पर भी उसकी बहुत उन्नति हो गई। विशेषतः हिजरी पहली शताब्दी के अन्त में सिन्ध पर अरवो का अधिकार हो जाने के कारण यह भारत आने जाने का केन्द्र बन गया। आनेवाली नावो और जहाजो का महसूल इतना बढ़ गया था कि वह बग़दाद की खिलाफत की आय का वहुत बड़ा साधन हो गया। अन्त मे सन् ३०६ हि० में मुकतदिर विल्लाह के समय में वहाँ की वार्षिक आय २२५७७५ दीनार रह गई थी।

[१] उबला का विवरण जानने के लिये देखो अल् अखबारुत्तवाल ; अबू हनीफ़ा दीनवरी कृत; सन् २२८; हि० पृ० १३३ (लीडन) और सुअज मुल् बुल्दान; याकूत रूमी कृत खं० १, पृ० ८८ खं० २ पृ० १६६ (मिस्र) और तारीख बसरा नोमान आज़मी (बगदाद) पृ० ११ की पाद टिप्पणी ।

[२] अल् अख़बारुत्तवाल दीनवरी पृ० ३२६ (लीडन)

[३] मुअजमुल् बुल्दान; याकूत खंड २; पृ० १६६ (मिस्र) ।

[४] तारीखे बसराअल् आजमी (बग्दाद) पृ० ११ की पाद् टिप्पणी ।

सैराफ़

इसके बाद भारत के लिये फारस की खाड़ी का सब से बड़ा बन्द्रगाह सैराफ हुआ। यह बसरे से सात दिन के रास्ते पर ईरानी सीमा में था। हिजरी तीसरी शताब्दी मे इसके प्रताप का सितारा उगा था। यह बड़े बड़े जहाजियो और समुद्री व्यापारियों का अड्डा बन गया। भारत और चीन के लिये यही से जहाज चलते थे । और इन देशो से जो जहाज आते थे, वे भी यहीं ठहरते थे। हिजरी तीसरी शताब्दी में इस बन्दरगाह की जो अवस्था थी,

उसका पता अबूजैद के वर्णन से लगता है। वह कहता है - "यह फारस का बहुत बड़ा बन्दरगाह है और बहुत बड़ा नगर भी है। जहाँ तक निगाह काम करती है, केवल इमारते ही इमारतें दिखलाई पड़ती हैं। यहाँ खेती नहीं होती, बल्कि सब चीजें समुद्र के मार्ग से बाहर से आती है।" [१]

[१] **मुअजमुल् बुल्दान, याकूत; खंड ५ पृ० १६३ (मिस्त्र) ।**

हिजरी चौथी शताब्दी के मध्य में बुशारी मुक्क़द्दसी ने जब इसको देखा था, तब इसका वर्णन इस प्रकार किया था- "मैंने यहां की इमारतों से अधिक सुन्दर इमारतें सारे इस्लामी संसार में नहीं देखीं। ये इमारतें साल की लकड़ी और ईंटों से बनी हैं और बहुत ऊंची हैं। एक एक घर का मूल्य एक एक लाख दरहम से अधिक है।" [१]

इसी समय के लगभग इस्तखरी ने भी इसको देखा था। वह कहता है-" यह विस्तार में शीराज के बराबर है। इसकी इमारतें साल की लकड़ी की हैं। यह लकड़ी अफ्रिका के जंगिस्तान प्रदेश से समुद्र के मार्ग से आती है। नदी के किनारे कई कई खंडों के मकान हैं। यहाँ के निवासी इमारत पर बहुत धन लगाते हैं, यहाँ तक कि एक एक व्यापारी एक एक मकान पर तीस तीस हजार अशरफी खर्च करता है। सामने बाग होते हैं। पानी पहाड़ से आता है। [२]"

बुशारी का कथन है कि दैलमियों के राज्य की किसी क्रान्ति और भूकम्प के कारण सन् ३२६ हि० में यह नगर नष्ट हो गया था। इस- के बाद लोगों ने इसे फिर से बसाना चाहा" [३]; और बसाया भी; और कुछ दिनों तक उनको सफलता भी हुई। याकूत हमवी ने हिजरी छठी शताब्दी के अन्त में इसे देखा था। उसका कहना है- "इस समय वहाँ टूटे फूटे चिह्नों के सिवा और कुछ भी नहीं है। कुछ दरिद्र लोग वहाँ बसे हुए हैं। इसके नष्ट होने का कारण यह हुआ कि इब्ने उमैरा ने कैस नामक टापू को बसा कर इसका महत्व नष्ट कर दिया ।"

[1] **अहसनुत्तकासीम (लीडन); पृ० ४२६**

[2] **मुअजमुल् बुल्दान; याकूत; खंड ५; पृ० १६३; (मित्र) के आधार पर ।**

[3] **अहसनुत् तकासीम; पृ० ४६४ ।**

कैस

इसे कैस या कैश कहते हैं। यह फारस की खाड़ी में उमान के पास एक टापू था इसने सैराफ को मिटा कर भारत और चीन के व्यापार पर अधिकार कर लिया। इसका हाकिम उमान का बादशाह था। याकूत ने हिजरी छठी शताब्दी मे जब इस को देखा था, तब यह छोटा सा टापू भारत के व्यापार के कारण बहुत सुन्दर और हरा भरा हो गया था। भारत के सब जहाज यही आकर ठहरते थे। जहाजों के इस आने जाने का परिणाम यह हुआ था कि याकूत कहता है- "भारत के राजाओ मे इस छोटे से टापू के अरब हाकिम की मान- मर्यादा बहुत अधिक है; क्योकि उसके पास जहाज और नावें बहुत हैं।" [1] क़ज़वीनी (सन् ६८६ हि०) कहता है- "कैस भारत के व्यापार की मंडी और उसके जहाजो का बन्दर है। भारत में जो अच्छी चीज होती है, वह यहाँ लाई जाती है।" [2]

[1] **मुअजमुल् बुल्दान; याक्क्रूत; खंड ७; पृ० १२६ (मित्र) और खंड ५; पृ० १६३ ।**

[2] **श्रासारुल् बिलाद; क़ज़वीनी; (युरोप में मुद्रित) पृ० १६१ ।**

भारत के बन्दरगाह

भारत के बन्दरगाहों के नाम हमको हिजरी पहली शताब्दी से मिलने लगते हैं और तीसरी शताब्दी तक बहुत अधिक बढ़ जाते हैं और अन्त तक वहीं बने रहते हैं। इनमे से अरबों के लिये फारस की खाड़ी के बाद सबसे पहले बलोचिस्तान का तेज नामक बन्दरगाह और फिर सिन्ध का देवल नामक बन्दरगाह था। गुजरात मे थाना खम्भात, सोपारा, जैमूर और मद्रास में कोलममली, मलाबार और कन्या कुमारी थी। इसके आगे वे लोग या तो

टापुओं में चले जाते थे और बंगाल होकर फिर वहाँ से कामरून (कामरूप) अर्थात् आसाम चले जाते थे। फिर वहाँ से चीन जाते थे। अरबी भूगोलों में इन्हीं बन्दरगाहों के नाम आया करते हैं। इब्न हौक़ल ने ईसवी दसवीं शताब्दी में सिन्ध के बन्दरगाह देवल के सम्बन्ध में लिखा है- "यह व्यापार की बहुत बड़ी मंडी है और यहाँ अनेक प्रकार के व्यापार होते हैं।"[१]

[१] इब्न हौकल का यात्रा-विवरण; पृ० २३० (युरोप में मुद्रित)

समुद्र के व्यापार मार्ग

हिजरी तीसरी शताब्दी में सुलैमान सौदागर इन जहाजों के मार्ग इस प्रकार बतलाता है- "पहले बसरे और उमान से सब पदार्थ सैराफ में आ जाते हैं और यहाँ सैराफ में वह जहाजों पर लादे जाते हैं। यहीं से पीने का मीठा पानी भी साथ ले लिया जाता है। जब यहाँ से लंगर उठता है, तब मस्कत पहुँच कर लंगर डालते हैं। यहाँ से फिर पीने का पानी लेते हैं। इसके बाद जहाज यहाँ से भारत के लिये चल पड़ते हैं। और एक महीने में कोलममली पहुँचते हैं। वहाँ से चीन जाने वाले जहाज चीन चले जाते हैं। कोलममली में जहाज बनाने और उनकी मरम्मत करने का कारखाना है। वहीं से मीठा पानी भी ले लेते हैं। चीनी जहाजों से इसका महसूल एक हजार दरहम और दूसरे जहाजों से दस दीनार से लेकर एक दीनार तक लेते हैं।"[१]

सुलैमान के पचीस वर्ष बाद अबूज़ैद सैराफी कहता है- "भारत के दाहिने हाथ उमान को जहाज पहुँचता है। वहाँ से अदन, अदन से जद्दा, जद्दा से जार (शाम का समुद्र तट) और फिर लाल या लोहित सागर पहुँचता है। यहाँ समुद्र समाप्त हो जाता है। इसके बाद बर्बर के तट पर समुद्र फिरता है और हब्शा जाता है। जब सैराफ वालो के जहाज जद्दा पहुँचते हैं, तब वहाँ से आगे नहीं बढ़ते । मिस्र जाने वाले जहाज यहाँ तैयार रहते हैं। सैराफ के जहाजो से सव सामान उतार कर मिस्त्री जहाज मे लादे जाते हैं और वे उनको लाल सागर ले जाते हैं। सैराफ वाले भारत और चीन के समुद्रों से अधिक परिचित हैं। इसके

सिवा भारत और चीन के समुद्री व्यापार में जो लाभ है, वह लाल या लोहित सागर के व्यापार में नहीं है।" [२]

[१] **सुलैमान सौदागर का यात्रा-विवरण; (पेरिस में मुद्रित सन् १८११ वाला संस्करण) पृ० १५-१६ ।**

[२] **अबूनैद का यात्रा विवरण पृ० १३६ (सन् १८११ ई० का पेरिस का संस्करण)**

इब्न खुर्दाज़बा, जो तीसरी शताब्दी के आरम्भ में था, जहा के व्यापार के सम्बन्ध मे कहता है- "यहाँ सिन्ध, भारत, जंजीबार, हब्श और फारस की वस्तुएँ मिलती हैं।"[२] साथ ही वह बसरे से भारत के मार्ग और दूरियो का विवरण इस प्रकार देता है-

बसरे से खारक टापू	५० फरसंग
खारक टापू से लावान टापू तक	८० “
लावन टापू से ऐरोन टापू तक	७ “
ऐरून टापू से खैन टापू तक	७ फरसंग
खैन टापू से केश टापू तक	७ “
केश टापू से इब्न कावान टापू तक	१८ “
इब्न कावान टापू से हुरमुज टापू तक	७ “
हुरमुज टापू से सारा	७ दिन का मार्ग

वह कहता है कि यही सारा फारस और सिन्ध के बीच की सीमा है। यहाँ से जहाज देबल के लिए चलता है।

[२] **किताबुल् मसालिक; इब्न खुर्दाज़या; पृ० ६१ (लीडन)**

सारा से देबल	८ दिन का मार्ग
देबल से सिन्ध नदी का मुहाना	२ फरसंग
सिन्ध नदी से औतगीन	४ दिन का मार्ग

वह कहता है कि औतगीन से भारत की सीमा आरम्भ होती है।

औतगीन से कोली	२ फरसंग
कोली से सन्दान	५ दिन; १८ फरसंग
सन्दान से मली	५ दिन का मार्ग
मली से बलीन	२ " "

बलीन से आगे मार्ग अलग अलग होते हैं। जो जहाज़ समुद्र के किनारे किनारे चलते हैं, वे बलीन से पापटन जाते हैं, जो दो दिन का मार्ग है।

पापटन से संजली और कबश्कान तक	१ दिन का मार्ग
यहाँ से गोदावरी का मुहाना	३ फरसंग
यहाँ से कीलकान	२ दिन का मार्ग
यहाँ से समुद्र	१० फरसंग
यहाँ से औरनचीन	१२ "

दूसरे जहाज बलीन से सरन्दीप और फिर वहाँ से जावा चले जाते हैं; और कुछ बलीन से ही सीधे चीन चले जाते हैं।[१]

[१] **इब्न खुर्दानबा; पृ० ६१-६४; (लीडन) ।**

युरोप और भारत के व्यापारिक मार्ग

अरब के राज्य से होकर

मिश्र, शाम, इराक, ईरान, रूम सागर, लाल सागर और भारतीय महासागर पर अरबों का अधिकार हो जाने से भी पूर्व और पश्चिम का व्यापार के लिए आना जाना बन्द

नही हुआ। मुसलमान व्यापारी युरोप नहीं जाते थे और रूमवाले इन देशो मे नहीं आते थे लेकिन इन दोनो जातियो के बीच मे यहूदियो की एक ऐसी जाति थी, जो दोनो मे मध्यस्थता का काम करती थी। इस्लामी देश में वे अहले किताब (अर्थात् ऐसे धर्म के अनुयायी, जिनका उल्लेख क़रान में है) माने जाते थे और यूनानियों के समय से ही युरोप से परिचित थे। कृष्ण सागर के तट पर एशियाई कोचक और रूस की सीमा पर का तराबजन्द नामक नगर मुसलमान और ईसाई व्यापारियो के मिलने का स्थान था। वे उससे आगे नहीं बढ़ते थे[१] । लेकिन यहूदी व्यापारी बहुत सहज मे इस्लामी और ईसाई दोनो जगतो को एक साथ पार कर लेते थे। इब्न खुर्दाजवा लिखता है- "ये लोग अरबी, फारसी, लैटिन, फिरंगी, स्पेनी और स्लव भाषाएँ बोलते है। ये पूरब से पच्छिम और पच्छिम से पूरब जल और स्थल मे दौड़ते फिरते है। ये दासियों, दास, दीवा (बहुत बढ़िया रेशमी कपड़े), समूर, पोस्तीन और तलवार बेचते है ।

ये फिरंगिस्तान से सवार होकर रूम सागर के मिश्रवाले तट पर आते है। वहाँ स्थल पर उत्तरकर व्यापार की सामग्री पशुओ की पीठ पर लादकर लाल सागर लाते हैं। वहाँ से फिर जहाज पर बैठकर जद्दा आते है। और वहाँ से सिन्ध, भारत, और चीन जाते है। वहाँ से फिर इसी मार्ग से लौट आते है। इनका दूसरा मार्ग यह है कि युरोप से चलकर रूम सागर से निकलकर एन्टोकिया (शाम) आते है और फिर स्थलमार्ग से जाबिया (इराक) चले जाते हैं वहाँ से फिरात की नहर में सवार होकर बगदाद आते हैं। फिर जहाज पर बैठकर दजला के मार्ग से उबला पहुँचते हैं और वहाँ से उमान, सिन्ध, भारत और चीन चले जाते हैं।" [२]

[१] नुखबतुहहर फ्री अजायबुल् बर्र वल् बहर; सूफी दमिश्की; पृ० १४६ ।

[२] इब्न खुर्दाज़वा; पृ० १५३-५४ (लीडन)।

रूसी व्यापारी

इब्न खुर्दाजबा ने यहूदियों के सिवा रूसी व्यापारियों का भी उल्लेख किया है जो "जल और स्थल दोनों में यात्रा करते हैं और अपने आप को ईसाई बतलाते ह।" रूसी लोग ईसवी दसवीं शताब्दी में ईसाई हुए हैं। इब्न खुर्दाजबा का कथन है कि ये लोग स्लब जाति के हैं। ये लोग स्लविया से निकलकर रूम सागर में सवार होते हैं। रूम का कैसर या बादशाह इनसे दसवाँ भाग कर लेता है। वहाँ से वे कैस्पियन सागर के किसी तट पर आकर उतरते हैं। वहाँ से स्थल के मार्ग से ऊँटों पर बैठकर बगदाद आते हैं और वहाँ ईसाई बनकर जजिया देते हैं।

कभी कभी ये लोग स्थल के मार्ग से भी पूरी यात्रा करते हैं। वे स्पेन या फ्रान्स से सूस उल् अक्सा (उत्तरी अफ्रिका) आते हैं और वहाँ से तंजा, वहाँ से अल जजायर, ट्यू निस और ट्रिपोली होकर मिस्र, मिस्र से रमला (शाम) होकर दमिश्क, दमिश्क से कोफा, फिर बगदाद, फिर बसरा, फिर अहवाज़, फिर फारस, फिर करमान, फिर बलोचिस्तान होकर सिन्ध, फिर भारत और तब चीन जाते हैं।[१]

[१] उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ ।

खुरासान से भारत का व्यापारी दल

मसऊदी, जो सन् ३०५ हि० के लगभग भारत आया था और बल्ख तथा खुरासान से भी होकर गुजरा था, लिखता है - " खुरासान से चीन के लिये स्थल का भी मार्ग है और भारत का देश खुरासान से मिल जाता है। सिन्ध से एक ओर मुलतान पर और दूसरी ओर मन्सूरा पर सुलतान है; और व्यापारियो के दल खुरासान से सिन्ध को और इसी प्रकार भारत को भी बराबर आते जाते रहते हैं, जहाँ यह देश ज़ाबिलस्तान (अफगानिस्तान) से मिल जाता है।"[१] इब्न हौकल, जो महमूद गजनवी से पचास बरस पहले आया था, कहता है- "काबुल और ग़ज़नी भारत के व्यापार के निकास के स्थान हैं।"[२] असीवान, जिसको अरब लोग असीफान कहते थे; पंजाब में एक हिन्दू राज्य था। वहाँ भी मुसलमान व्यापारी थे।'[३]

[१] मुरूजुज ज़हब, मसऊदी ।

[२] इब्न होकल ; पृ० ३२८ (युरोप मे मुद्रित)।

[३] फुतुहुल् बुल्दान; बिलाजुरी; पृ० ४४६ (लोडन) ।

भारत की समुद्री-यात्रा का समय

मसऊदी ने भारतीय महासागार के उतार चढ़ाव और ज्वार भाटा के समय नियत किए हैं और इस दृष्टि से जहाजों के चलने के महीने निश्चित किए हैं। उसने लिखा है। हमारे यहाँ (कदाचित् बग़दाद) की और भारत की ऋतुओ में अन्तर है। गरमी के दिनो मे लोग हमारे यहाँ से भारत की सरदी बिताने के लिये वहाँ जाते हैं। जून के महीने में भारत की ओर कम जहाज जाते हैं; और जो जाते भी हैं, वे हलके होते हैं और उनमे अधिक सामान नही लादा जाता । उन जहाजो को तीरमाही (जूनवाले) जहाज कहते हैं।"[४]

[४] मुरूजुज़ ज़हब मसऊदी ।

अबूजैद सैराफी का कथन है- "वर्षा के दिनो मे जहाज नही चलते । भारतवाले उन दिनों बैठकर खेती बारी या और कोई व्यवसाय करते हैं। इसी वर्षा पर उनका निर्वाह होता है। इसी ऋतु में चावल होता है जो उनका भोजन है।""

अरबी में हिन्दी के कुछ नाविक शब्द

भारत के समुद्र तटों पर अरबों के आने जाने का यह प्रभाव हुआ कि अरबी यात्रा-विवरणों और भूगोलों में और अरव तथा फारस के मल्लाहों की जबान पर जहाजों और उनके सम्बन्ध के नाम चढ़ गए। उनमें से एक शब्द बारजा है। अनेक हिन्दी अलबेरूनी ने बतलाया है कि वास्तव में यह हिन्दी का "बेड़ा" शब्द है, जिसको अरब लोग बारजा कहते हैं (अरबी में "ह" के स्थान पर "ज" हो जाता है); और उसका बहुवचन बवारिज होता है। भारतीय समुद्र तट के समुद्री डाकू इन्हीं नावों पर बैठकर डाके डालते थे; इस लिये बाद में

भारत के समुद्री डाकुओं को ही "बवारिज" कहने लगे, जिस प्रकार रूम सागर के समुद्री डाकुओं को करसान कहते हैं; और आज कल की अरबी भाषा में बारजा लड़ाई के जहाजों के बेड़े को कहते हैं।

दूसरा शब्द “दोनीज” है, जिसका बहुवचन “दवानीज” होता है।[२] यह हिन्दी के "डोंगी" शब्द का अरबी रूप है। तीसरा शब्द होरी है, जिसे अब भी बम्बईवाले होड़ी कहते हैं।

[१] अबूज़ैद सैराफ़ी का यात्रा विवरण पृ० ११६ ।

[२] किताबुल् हिन्द; बैरूनी पृ० १०२ (लंडन) अजायबुलू हिन्द; बुजुर्ग; पृ० ११४ (पेरिस) ।

[३] याकूत हमवी कृत मुअजमुल् बुल्दान में "कैस" शब्द; खंड ७; और अजायबुल् हिन्द; बुजुर्ग; पृ० ६६ (वरेल लीडन में प्रकाशित) ।

भारतवर्ष या भारतीय टापुओं के तीन और शब्द हैं जिनके ठीक ठीक मूल रूप का पता नहीं चलता। "बलीज" जहाज की छत को कहते हैं; "जोश" नाव के रस्से को कहते हैं और "कनेर" नारियल के छाल की रस्सी को कहते है, जो जहाजो को बॉधने और तख्तो को सीने के काम मे आती थी। ये शब्द भी भारतीय शब्दो से ही निकले हुए हैं।' एक शब्द ऐसा है जो उस समय के पूर्वी सार्वराष्ट्रीय समुद्री व्यापार का संक्षिप्त इतिहास है । अरबी में इस शब्द का रूप "नाखूजा" है और इसका बहुवचन "नवाखजा" है। लेकिन भारतवाले उसके फारसी रूप "नाखुदा" से ही अधिक परिचित हैं। असल मे यह शब्द नावखुदा है। इसमे नाव शब्द हिन्दी का और स्वामी के अर्थ से खुदा शब्द फारसी का है। हाफिज कहते हैं- “मा खुदा दारेम मारा नाखुदा दरकार नेस्त ।" अर्थात् मेरे साथ खुदा है। मुझे नाखुदा (एक अर्थ ईश्वर-रहित ओर दूसरामल्लाह) की आवश्यकता नही है।

भारत की उपज और व्यापार

ये अरब व्यापारी भारतवर्ष और यहाँ के टापुओ से अपने देश को क्या क्या पदार्थ ले जाते थे, इसका स्थूल अनुमान उस वर्णन से होगा जो सन् १४ हिज० मे एक अरब यात्री ने हजरत उमर से किया था। उसने कहा था- "भारत का समुद्र मोती है; उसका पर्वत लाल है और उसका वृक्ष इत्र है।" इससे जान पड़ता है कि ईसवी छठी शताब्दी में अरबवाले भारतवर्ष से मोती, जवाहिरात और सुगन्धित द्रव्य ले जाया करते थे । ईसवी नवी शताब्दी में एक अरब यात्री इस बात का कारण बतलाता है कि सैराफ के जहाज लोहित सागर होकर मिस्र क्यो नही जाते और जद्दा से लौटकर भारत क्यो चले जाते है । वह कहता है- "इसलिये कि वह चीन और भारत के समुद्र की तरह, जिसके पानी में मोती और अम्बर होता है, जिसके पहाड़ों में जवाहिरात और सोने की खानें हैं, जिसके जानवरों के मुँह में हाथीदाँत हैं, जिसकी पैदावार में आबनूस, बेंत, जद, कपूर, लौंग, जायफल, बक्कम, चन्दन और सब प्रकार के सुगन्धित द्रव्य होते हैं, जिसके पक्षियों में तोते और मोर हैं और जिसकी भूमि की विष्ठा मुश्क या कस्तूरी और जुबाद मुश्क बिलाई जिसका पसीना सुगन्धित होता है।[२]

[१] देखो सवा उस् सबील फिल् मौलिद वद् दखील (डा० धार्नल्ड का संस्करण) ।

इब्न खुर्दाजबा (सन् २५० हि०) जो ईसवी आठवीं शताब्दी के कुछ पीछे आया था, भारतवर्ष में होनेवाले उन पदार्थों और व्यापार की चीजों की यह सूची देता है जो पदार्थ यहाँ से अरब और इराक़ जाते थे- "सुगन्धित लकड़ियाँ, चन्दन, कपूर, लौंग, जायफल, कबाबचीनी, नारियल और सन् के कपड़े, रूई के मखमली कपड़े और हाथीदॉत; और सरन्दीप से सब प्रकार के लाल, मोती, बिल्लौर और कुरुड जिससे जवाहिरात साफ़ किए और चमकाए जाते हैं; मलाबार से काली मिर्च, गुजरात से सीसा, दक्खिन से बक्कम और सिन्ध से कुट, बाँस और बेंत ।[२]

मसऊदी (सन् ३०३ हि०) और बुशारी (सन् ७३० हि०) दोनों ने खम्भात (काठियावाड़) के जूतों की प्रशंसा की है, जो यहाँ से बनकर बाहर जाते थे। थाना (बम्बई) के कपड़े प्रसिद्ध थे। वे या तो वहीं बनते थे और या देश के भीतरी भागो से आते थे । लेकिन वे सब इसी बन्दरगाह से बाहर जाते थे। जो हो, उनको थाने के कपड़े कहते थे ।

[१] अबूजैद सैराफ़ी; पृ० १३५ (सन् १८११ ई० का पेरिसवाला संस्करण) ।

[२] किताबुलू मसालिक वलू ममालिक; इब्न खुर्दाजबा; पृ० ७१ (लीडन)।

[३] मुरूजुज जहब; मसऊदी; पहला खंड; पृ० ३५३ (पेरिस) थौर अहसनुत् तकासीम; बुशारी (लीडन) पृ० ४८२ ।

मुसइर बिन मुहलहिल, जो सन् ३३१ हि० में भारत आया था और जिसने दक्षिणी भारत की सैर की थी, कोलम (ट्रावन्कोर ; मदरास) का वर्णन इस प्रकार करता है- "यही वे मिट्टी के बरतन "ग़ज़ायर"" बनते है जो हमारे देश मे चीनी बरतनों के नाम से बिकते हैं; पर वास्तव मे वे चीन के नहीं होते; क्योकि चीन की मिट्टी कोलम की मिट्टी से कडी होती है और आग पर अधिक समय तक नहीं ठहर सकती। कोलम की मिट्टी का रंग मैला होता है और चीनी मिट्टी सफेद या और और रंगों की होती है। यहाँ सागौन की लकड़ी इतनी लम्बी होती है कि कभी कभी सौ हाथ तक पहुँच जाती है। इसके सिवा बक्कम, बत और नेज़े की लकड़ी भी वहाँ बहुत होती है। रेवन्दचीनी और तेजपत्ता भी होता है, जो दूसरे स्थानो मे बहुत कम मिलता है और जो आँखो के रोगो में बहुत लाभदायक है। व्यापारी लोग ऊद, कपूर और लोबान भी यही से ले जाते हैं।"

भारत से एक प्रकार का जहर भी बाहर जाता था जिसे क़जवीनी ने “बेश” लिखा है। यह विष का बिगड़ा हुआ रूप है, जिसे हिंदी में जहर कहते हे|

[१] तकवीमुल् बुल्दान; अबुल फ़िदा; पृ० ३०६ ।

[२] ग़ज़ायर का अर्थ सुगन्धित मिट्टी है, पर आगे चलकर सम्भवतः यह शब्द चीनी बरतनों के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। देखो मुअजमुल् बुल्दान; खंड ८ पृ० ३४८ में "नहरवान" शब्द ।

[३] आसारुल् बिलाद; कज़वीनी; पृ० ७० (गोटिजन, सन् १८४८ ई०) * उक्त ग्रन्थ; पृ० ८५।

इलायची

इलायची मन को जितना अधिक प्रसन्न करनेवाली है, उसकी व्युत्पत्ति भी उतनी ही मनोरंजक है। कारोमंडल और मलाबार के बीच में हेली नाम का एक अन्तरीप है।[१] इलायची शब्द का मूल यही नाम है। यह समझा जाता है कि संस्कृत में जो इसे एला और फारसी में जो हेल कहते हैं, वह इसी हेली अन्तरीप के नाम से लिया गया है। इसी एला शब्द से उदू में उसी प्रकार इलायची शब्द बन गया जिस प्रकार अगर या ऊद का नाम जो मंडल (कारोमंडल) से जाता था, अरबों में मन्दल हो गया ।[२]

ईसवी दसवीं शताब्दी के अन्त में मसऊदी कहता है- “दीप (भारत के मालदीप और सिंहलदीप आदि टापू) से व्यापारी लोग नारियल, बक्कम की लकड़ी, बेद और सोना ले जाते हैं।"[३] महाराज के टापुओं के वैभव का वह इस प्रकार वर्णन करता है- "इन टापुओं में अनेक प्रकार की सुगन्धियाँ होती हैं। यहीं से कपूर, अगर, लौंग, जायफल, कबाबचीनी, जावित्री और बड़ी इलायची आदि ले जाते हैं।"[४] "कुछ लोग इन टापुओं से छोटी छोटी नावों पर बैठकर, जो केवल एक लकड़ी को खोदकर बना लेते हैं, नारियल, गन्ने, केले और नारियल का पानी लेकर आते हैं और उनके बदले में लोहा लेते हैं ।"[५]

[१] इब्न बतूता; दूसरा खंड और तकवीमुल् बुल्दान; अनुल्फ़िदा; पृ० ३५४ ।

[२] श्रासारुलू बिलाद; कज़वीनी (गोटेंजन) पृ० ८२ ।

[३] मुरूजुज़ ज़हब ; १६ वाँ प्रकरण ।

[४] उक्त ग्रन्थ और प्रकरण ।

[५] सुलैमान सौदागर ; पृ० १८ ।

इब्नुल् फकीह हमदानी (सन् ३३० हि०) लिखता है- "भारत और सिन्ध को ईश्वर ने यह विशेषता दी है कि वहाँ सब प्रकार के सुगन्धित द्रव्य, रत्न जैसे लाल, हीरा-आदि, गैडा, हाथी, मोर, अगर, अम्बर, लौग, सम्बुल, कुलंजन, दालचीनी, नारियल, हरें, तूतिया, बक्कम, बेद, चन्दन, सागौन की लकड़ी और काली मिर्च उत्पन्न होती है।""

अरबी कोषों की पुरानी साक्षी

यह जानने के लिए कि भारत से अरबवाले क्या क्या चीजें अपने देश को ले जाते थे, स्वयं अरबी भाषा के कोपो मे ही कुछ साधन मिलते है। अरब मे भारत की बनी हुई तलवारे प्रसिद्ध थी। इसी लिये अरबी मे तलवार के नाम हिन्दी, हिन्दवानी और मुहन्नद आदि बहुत प्रचलित है। अरबी के नीचे लिखे हुए शब्द हिन्दी भाषा से निकले हुए है जो स्वयं अपनी व्युत्पत्ति और जन्मभूमि का पता देते है । अधिकतर इनका सम्बन्ध मसालो, सुगन्धित पदार्थों और ओषधियो आदि से है। हमने उनके मूल हिन्दी रूपो का पता लगाने का प्रयत्न किया है, जिसमें आज उन शब्दो के देश के लोग उन शब्दो को उसी प्रकार पहचान सकें, जिस प्रकार अपने घर के लोगो को पहचानते हैं।

अरबी	हिन्दी (या संस्कृत)	उदू (या हिन्दी)
सन्दल	चन्दन	सन्दल
मस्क	मूषिका	मुश्क
तम्बोल	ताम्बूल	पान, तम्बोल
काफूर	कपूर	काफूर
अरबी	हिन्दी (या संस्कृत)	उदू (या हिन्दी)

कनकफल	करनफल	लौंग
फिल फिल	पिप्पलो, पिप्पला	गोलमिर्च (सम्भवतः इसी से अँगरेजी का पेपर शब्द भी बना है)।
फोफल	कोबल, गोपदल	सुपारी, डली
जंजवील	जरंजा वीरा (?)	सोठ, अदरक
नीलोफर	नीलोत्पल.	नीलोफर
हेल	एला	एलायतची, इलायची

[१] **किताबुल् बुल्दान, इब्नुल फकीह अल् हमदानी; पृ० २५१ (लीडन) ।**

औषधियाँ

जायफल	जायफल	जायफल
इत्रीफल	त्रिफला	इन्नीफ़ल
शखीरा	शिखर (? शिखिकंठ)	तूतिया
वलीलह	वहेड़ा	वहेड़ा
हलीलज	हर्रे	हलीला
बलादर	भिल्लातक	भिलावॉ

ऊद् (अगर) हिन्दी, किस्त हिन्दी (कुट), साजज हिन्दी (तेजपत्ता), कुरतुम हिन्दी (कुसुंब) और तमर हिन्दी (हिन्दुस्तानी खजूर अर्थात् इमली) आदि शब्दो के साथ का "हिन्दी" शब्द ही यह सूचित करता है कि ये सब चीजें भारत से जाती थीं और भारत की थीं। ऊद या अगर की लकड़ी कारोमंडल से जाती थी; इस लिये 'अरबवालों ने उसका नाम मंदल रख दिया।[१]

१ पामारन् बिलाद : ऊतरीनी; पृ० ८२ (गोटेंजन सन् १८४८ १०) ।

कपड़ों के प्रकार

अरबी	हिन्दी	उर्दू
कर्पास	कार्पास	मलमल
शीत	छीट	छीट
बौतः	पट, लुंगीवाल	रूमाल
	रंग	
नीलज	नील	
किर्मिज	किरमिज	
	फल	
मोज	मोचा	केला
नारजील	नारियल	
अम्बज	आम	
लेमूँ	निम्बू	

(इसीसे अँगरेजी का "लेमन" शब्द निकला है।)

ये शब्द अपना हाल आपही अपनी जबान से बतला रहे हैं कि वे किस देश मे उत्पन्न हुए थे और कहाँ जाकर उन्होने यह नया रूप रंग पाया ।

कुरान में हिन्दी के तीन शब्द

विद्वानो में इस सम्बन्ध मे बहुत कुछ मतभेद रहा है कि कुरान मे अरबी के सिवा किसी दूसरी भाषा का कोई शब्द है या नही। पर अन्त मे निर्णय यही हुआ कि उसमे दूसरी भाषाओ के ऐसे शब्द हैं जो अरबो की भाषा मे आकर प्रचलित हो गए थे और जो अपना

पहला रूप बदलकर अरबी भाषा के शब्द बन गए थे। हाफिज इब्न हजर और हाफ़िज सुयूती ने कुरान के इस प्रकार के शब्द एकत्र किए हैं। हम भारतवासियों को भी इस बात का अभिमान है कि हमारे देश के भी कुछ शब्द ऐसे भाग्यवान् हैं जो इस पवित्र ग्रन्थ में स्थान पा सके। पहले विद्वानों ने जिन शब्दों को हिन्दी बतलाया था, वे तो ठीक नहीं थे और न उनका कोई आधार था। जैसे "इबलई” के सम्बन्ध में यह कहना कि हिन्दी में इसका अर्थ पीना होता है, या "तूबा" को हिन्दी कहना जैसा कि सईद बिनजुबैर का प्रवाद है[१], कोई आधार नहीं रखता। लेकिन फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि जन्नत या स्वर्ग की प्रसंशा में इस स्वर्गतुल्य देश के तीन सुगन्धित पदार्थों का नाम अवश्य आया है; अर्थात् मस्क (मुश्क या कस्तूरी) जंजबील (सोंठ या अदरक) और काफूर (कपूर) ।

तौरेत की साक्षी

अरबों के भारतीय व्यापार की प्राचीनता के सम्बन्ध में

ऊपर जो बातें कही गई हैं और जो शब्द दिए गए हैं, उनको सामने रखकर तौरेत में दी हुई कुछ बातों पर विचार करना चाहिए । ईसा से दो हजार बरस पहले अरब के जो व्यापारी अनेक बार मिस्र को जाते हुए दिखाई दिए हैं, उनका सामान यह था -बल्सान (एक सुगन्धित फूल) सनोबर और दूसरे सुगन्धित द्रव्य ।[२] यमन देश की मल्का या महारानी ई० पू० सन् ९५० में हजरत सुलैमान के लिये जो उपहार शाम लाई थी, उनमें भी सुगन्धित द्रव्य, बहुत सा सोना और बहुमूल्य रत्न थे।[३] हिजकयाल नबी (ई० पू० सन् ५२८) के समय में औजाल (यमन) से फौलाद, तेजपत्ता और मसाला आदि अरब लोग ही शाम देश मे ले जाते थे। हिजकयाल नबी कहते है - "औजाल (यमन) से तेरे बाजार मे आबदार फौलाद, तेजपत्ता और मसाले बेचने आते हैं।"[१] यह भली भाँति विदित है कि लोबान और अनेक प्रकार के सुगन्धित फूल स्वयं यमन मे ही उत्पन्न होते थे; लेकिन आबदार फौलाद (तलवार) तेज- पत्ते और मसालो का देश भारतवर्ष ही था; और आज भी वही तलवार, तेजपत्ते और मासालो का देश है। इससे स्पष्ट है कि भारत के साथ अरबो का व्यापारिक सम्बन्ध ईसा से कम से कम दो हज़ार बरस पहले का है।

[१] **देखो अल इल्कान फ़ी उलूमिल् कुरान ३८ ।**

[२] **उत्पत्ति ; ३७-२६ ।**

[३] **दूसरे दिन ; ६-६ ।**

भारत की उपज और व्यापार अरब यात्रियों की दृष्टि में

अरब के यात्रियो की दृष्टि से भारत के फलो में से सबसे पहला फल नारियल है। ईसवी नवी शताब्दी का अरब यात्री अबूजैद कहता है- "उमान के अरब यह करते है कि जिन स्थानो मे नारियल होते हैं, वहाँ बढ़इयो के औजार लेकर चले जाते हैं। पहले वे नारियल का पेड़ काटकर सूखने के लिये छोड़ देते हैं। जब वह सूख जाता है, तब उसके तख्ते काट डालते है और नारियल की छाल को बटकर उसकी रस्सी बनाते है उसी रस्सी से तख्तों को सीकर नाव और उसका मस्तूल बनाते है और उसके झोझे को बुनकर पाल तैयार करते हैं। फिर उन नावो मे नारियल भरते है और उनको उमान लाते है और उससे बहुत धन कमाते है ।"[२]

[१] **हिजकयाल, २७-१६ ।**

[२] **अबूजैद ; पृ० १३१ ।**

नारियल के उपरान्त वे नीबू और आम के नाम बहुत आश्चर्य से लेते हैं। इब्न हौकल (सन् ३५० हि०) सिन्ध का वर्णन करता हुआ कहता है- "उनके देश में सेब के बराबर एक फल होता है, जिसको लेमूं कहते हैं और जो बहुत खट्टा होता है। उनके यहाँ एक मेवा और होता है, जो शफ्तालू की तरह का होता है। उसका नाम अम्बीज (अर्थात् आम) है, जिसका स्वाद भी प्रायः शफ्तालू के समान ही होता है।"[१]

आम के भारतीय प्रेमी जरा यह भी देखें कि अरबवाले उस आम का कितना आदर करते हैं।

मसऊदी का कहना है-"नारंगी और नीबू भी भारत की खास चीजें हैं। ये फल हिजरी तीसरी शताब्दी में भारत से अरब लाए गए थे। ये पहले उमान में और फिर वहाँ से इराक़ और शाम पहुँचे । यहाँ तक कि वे शाम के समुद्र तट के नगरों और मिस्र में घर घर फैल गए।" लेकिन मसऊदी कहता है- "उनमें वह भारत का सा स्वाद नहीं है।"[२]

इब्न हौकल (सन् ३५० हि०) सिन्ध और गुजरात की उपज और व्यापार के सम्बन्ध में इस प्रकार वर्णन करता है-

मन्सूरा - इसका पुराना नाम ब्रहमनाबाद है। यहाँ नीबू और आम हैं और गन्ने भी हैं। भाव सस्ता है। स्थान हरा भरा है।

अलोर - यह विस्तार में मुलतान के समान है। नगर के चारों ओर परकोटा है। सिन्ध नदी के किनारे है। बहुत हरा भरा और व्यापार का अच्छा स्थान है।

[१] इब्न हौकल ; पृ० २२८ ।

[२] मुरूजुज जहब, दूसरा खंड, पृ० ४३८ (युरोप)।

देबल - सिन्ध नदी के पूरब समुद्र के किनारे है। यह बहुत बड़ी मंडी है और यहाँ अनेक प्रकार के व्यापार होते है। यह इस देश का बन्दरगाह है। अनाज भी है। यहाँ की बस्ती केवल व्यापार के कारण है।

काम्हल - काम्हल से मकरान तक बौद्धों और मेदियो का देश है। यहाँ दो कूबड़वाले ऊँट होते हैं, जिनकी खुरासान और फारस में नसल बढ़ाने के लिये बहुत कदर है।

कन्दाबील - यह बौद्धो का व्यापारिक नगर है। मकान छप्परो और झोपड़ो के हैं।

जैसूर और खम्भायत (गुजरात और काठियावाड़) - यहाँ अधिकतर चावल होता है और शहद भी बहुत है।

कलवान - यहाँ अनाजो की बहुत अधिकता है। फल कम हैं। पशु और ढोर बहुत है।

कीजकानान (कजदार की राजधानी) - सस्ती है। यहाँ अंगूर, अनार और ठंढे मेवे हैं। खजूरें नही है।

कनजपूर - मकरान का सबसे बड़ा नगर है। यहाँ गन्ने और छुहारे होते है और फानीज (एक प्रकार का हलुवा) बनता है, जो यहाँ से सारे संसार मे जाता है।

कन्दाबील - यह भारत के अनाजो की बड़ी मंडी है।

इसके उपरान्त बुशारी मुकद्दसी (सन् ३७५ हि०) का वर्णन बहुत विस्तृत है। वह एक नगर का वर्णन करता है-

वैहिन्द - यह मन्सूरा से बड़ा नगर है। बहुत साफ सुथरा नगर है । बहुत अच्छे फल, बड़े बड़े वृक्ष; भाव सस्ता, शहद एक दरहम का तीन मन (अरबी में मन बहुत छोटा होता था), रोटी और दूध के सस्तेपन का हाल मत पूछो । अखरोट और बादाम के वृक्ष बहुत अधिकता से हैं।

कन्नौज - मुलतान के पासवाला बड़ा नगर है। परकोटा है । यहाँ की यहाँ मांस बहुत सस्ता है। बाग़ बहुत अधिक हैं। मंडी में बहुत लाभ होता है। केले यहाँ सस्ते हैं पर गेहूँ बहुत कम है। लोगों का भोजन प्रायः चावल है।

सुलतान - मन्सूरा के बराबर है। वहाँ से फल यहाँ अधिक नहीं हैं; पर सस्ती वहाँ से अधिक है। रोटी एक दरहम में तीस मन और फ़ानीज (हलुआ) एक दरहम में तीन मन मिलता है। व्यापार में यहाँ के व्यापारी झूठ नहीं बोलते । यहाँ के व्यापार की दशा बहुत अच्छी है ।

तूरान से फानीज (हलुआ) और सन्दान से चावल तथा कपड़े जाते हैं। सारे सिन्ध में फर्श आदि बहुत अच्छे बनते हैं। यहाँ से बारीक कपड़े और नारियल, मन्सूरा से खम्भात के बने हुए जूते, सिन्ध से हाथी, हाथी दाँत, बहुमूल्य वस्तुएँ और अच्छी दवाएँ बाहर जाती हैं। यहाँ विशेष रूप से होनेवाले दो फल हैं। एक का नाम लेसूँ (नीबू) है और दूसरे का आम, जो बहुत स्वादिष्ट होता है। पूरब और फ़ारस में जो अच्छे बख्ती ऊँट होते हैं, वह सिन्धी ऊँटों से ही नसल लेकर तैयार किए जाते हैं। इन सिन्धी ऊंटों के, जिन्हें पाला (फालिज)

कहते हैं, दो कूबड होते हैं; और वे इतने अधिक मूल्य के होते हैं कि दूसरे देशों में केवल बादशाहों की ही सवारी में काम आते हैं। इसी प्रकार खम्भात के जूतों की भी क़दर है।"[१]

[१] **अहसनुत् तकासीम फ़ी मारफ़तिल् अकालीस; बुशारी सुकद्दसी; पृ० ४७४-८२ (लीडन) ।**

मसऊदी ने भारत के मोर की प्रशंसा की है और लिखा है- "भारत से इराक आदि मे ले जाकर उनकी नसल तैयार की गई; पर भारत में उनका जैसा आकार और रूप रंग होता है, वैसा उनमे नहीं होता।"[१]

भारत के बारीक कपड़ो की सदा से प्रशंसा होती आई है और प्रत्येक जाति के वर्णनो से इसका प्रमाण मिलता है कि यहाँ बहुत ही बारीक कपड़े बुने जाते थे। कहा जाता है कि मिस्र मे जो ममी या पुराने मृत शरीर मिलते हैं, वे जिन कपड़ो मे लपेटे हुए मिलते हैं, वे भारत के ही बने हुए है। खैर । यह तो अनुमान ही है। पर ईसवी आठवी शताब्दी का अरब यात्री सुलैमान एक स्थान के सम्बन्ध मे लिखता है- "यहाँ जैसे कपड़े बुने जाते है, वैसे और कहीं नही बुने जाते; और इतने बारीक होते हैं कि पूरा कपड़ा (या थान) एक अँगूठी मे आ जाता है। ये कपड़े सूती होते है और हमने ये कपड़े स्वयं भी देखे है ।"[२]

अरब लोग गैंडे के सीग भी यहाँ से चीन ले जाते थे। उसमें चित्र बन जाते थे। उसकी पेटी बनती थी, जो इतनी बहुमूल्य होती थी कि चीन मे एक एक पेटी दो दो तीन तीन हजार अशर्फिया को बिकती थी।[३]

यहाँ एक प्रकार का पशु (गन्ध बिलाव) होता था, जिसके पसीने से सुगन्धित द्रव्य निकालते थे। इसको अरब व्यापारी भारत से मरक्को तक ले जाते थे।[४] काला नमक भी भारत से बाहर जाता था।[५]

[१] **मुरूजुज़ ज़हब ; दूसरा खंड, पृ० ४३८ (लीडन) ।**

[२] **सुलैमान व्यापारी का यात्रा विवरण, पृ० ३० (पेरिस) ।**

[३] **उक्त ग्रन्थ; पृ० २१।**

[४] **तोहफ़तुल् अहबाब; अबू हामिद गरनाती; पृ० ४६ (पेरिस)।**

[५] **मफातीहुल उलूम ; नारिज़मी; पृ० २५६ (लीढन) ।**

अरबों में से मसऊदी ने पान का विस्तृत वर्णन किया है। यह वर्णन आज से प्रायः नौ सौ बरस पहले का है। वह कहता है- "पान एक प्रकार का पत्ता होता है जो भारत मे उत्पन्न होता है। जब इसको चूना और डली मिलाकर खाते हैं, तब अनार के दानों की तरह दाँत लाल हो जाते हैं और मुँह सुगन्धित हो जाता है। चित्त भी बहुत प्रसन्न होता है। भारत के लोग सफेद दाँतो और पान न खाने वालों को पसन्द नहीं करते।" खैर; पान का वर्णन तो यहाँ प्रसंगवश हो गया है। उस समय पान जैसा कोमल पदार्थ अरब नहीं पहुँच सकता था। लेकिन डली बराबर पहुँचती थी । सन् ३०५ हि० में मसऊदी कहता है-"अब आजकल यमन, हज्जाज और मक्के में लोग डली बहुत अधिकता से खाने लगे हैं।"[१] अब आजकल हमारे समय में तो अदन तक हरे पान और मक्के तक सूखे पान बहुत अधिकता से पहुँचने लगे हैं। यह भारतवासियों की शौकीनी का शुभ फल है। जो हो, उसी समय से भारत से डली अरब जा रही है। अरब में ऊद या अगर कन्या कुमारी का प्रसिद्ध था और वहीं से जाता था।[२] वे लोग कन्या कुमारी को कुमार कहते थे; इस लिये उनके यहाँ ऊद कुमारी प्रसिद्ध था। मुश्क या कस्तूरी तिब्बत से लाते थे।[३] हीरा काश्मीर के पर्वतों से आता था ।[४]

[१] **मुरूजुज ज़हब; दूसरा खंड; पृ० ८४ (पेरिस) ।**

[२] **सुलैमान और अबू ज़ैद का यात्रा-विवरण; पृ० ६३ और १३० ।**

[३] **उक्त ग्रन्थ; पृ० १११ ।**

[४] **अजायबुल् हिन्दू ; बुजुर्ग; पृ० १२८ (पेरिस) ।**

भारत में समुद्र के मार्ग से आनेवाली चीज़ें

ये वस्तुएँ तो भारत से बाहर जाती थीं, पर इनके बदले में अरबवाले भारतवासियों को क्या लाकर देते थे ? टापुओवाले तो अपनी अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ लेते थे; जैसे कपड़े

आदि । कुछ टापुओ के सम्बन्ध मे अरब ने लिखा है कि वहाँ के लोग नंगे रहते है। वे कपड़े नही लेते, बल्कि लोहा लेते है।[१]

हिजरी तीसरी शताब्दी (ईसवी नवीं शताब्दी) मे सिन्ध के सोने के सिक्को की भारत मे बहुत मॉग रहती थी। वहाँ की एक एक अशर्फी यहाँ तीन तीन अशर्फियो को बिकती थी। मिस्र से पन्ने की अँगूठी बनकर यहाँ आती थी, जो बड़ी सुन्दरता से डिबिया मे रखी हुई होती थी। मूँगा और एक साधारण पत्थर की, जिसका नाम दहंज था, यहाँ माँग रहती थी।[२] मिस्र से शराब भी यहाँ आती थी ।[३] रूम से रेशमी कपड़े, समूर, पोस्तीन और तलवारे आती थी ।[४] फारस से गुलाबजल, जो प्रसिद्ध था, भारत मे आता था ।[५] बसरे से देबल (सिन्ध के बन्दरगाह) मे खजूरें आती थी ।[६] कारोमंडल मे अरब से घोड़े आते थे ।[७]

[१] सुलैमान और अबू जैद का यात्रा विवरण; पृ० ६।

[२] उक्त ग्रंथ, पृ० १४५ ।

[३] इब्न हौकल ; पृ० २३१ ।

[७] इब्न खुर्दाजबा, पृ० २५३ (लीडन) ।

[४] इब्न हौकल, पृ० २१३ ।

[६] तकवीसुल बुलदान अबुल फिदा पृ० ३४६ ।

[७] उक्त ग्रथ, पृ० ३५५ ।

क्या भारतवासी भी नाविक थे?

भारत के जल और स्थल सब प्रकार के बाहरी व्यापार के सम्बन्ध से कही हिन्दुओ का नाम नही आता। न कही समुद्री यात्रा करनेवालो और जहाज चलानेवालो मे किसी ने हिन्दुओ का उल्लेख किया है यूनानियों से लेकर अरबो तक के इतिहास, भूगोल और यात्रा-विवरण इससे खाली हैं। सब जगह भारत के समुद्री व्यापारियों के रूप में यूनानियों, रूमियों और अरबो के ही नाम आते हैं; यहाँ तक कि मार्को पोलो के यात्रा विवरण रण में भी अरबों के ही नाम हैं। इसी आधार पर एल्फिन्स्टन साहब आदि ने यह विचार प्रकट किया है-

"सिन्धु और गंगा नदी में नावों और डोंगियों पर और समुद्र के किनारे किनारे एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह तक जाने के सिवा हिन्दुओं ने समुद्र को पार करने का कभी साहस नहीं किया । यहाँ तक कि सिकन्दर के समय में भी सिन्ध में यूनानियों को न तो जहाज मिले और न जहाज चलानेवाले। छोटी छोटी डोगियो और नावों पर मछुए अवश्य उनको मिलते रहे। हाँ, कारोमंडल के लोग अवश्य जावा टापू में जाने का साहस कर सके ।[१]

लेकिन इन महाशयों की इस जॉच से हमारा मत-भेद है। हमारा विचार है कि सभी हिन्दू तो गुजरात के लोग इसके अपवाद हैं। नहीं, परं कम से कम सिन्ध और बल्कि मनु के धर्मशास्त्र में एक ऐसा श्लोक है, जो यह प्रकट करता है कि उस समय के हिन्दुओ में कुछ लोग ऐसे भी थे जो समुद्र की यात्रा से परिचित थे। उस श्लोक का भावार्थ यह है-

"समुद्र यान मे कुशल तथा देश, काल और अर्थ इन चार के जाननेवाले जो वृद्धि या व्याज निश्चित करें, वह व्याज लेना चाहिए।"

समुद्रयान कुशलः देशकालार्थ दर्शिनः ।
स्थापयन्ति तु यां वृद्धि सा तथाधिगमं प्रति ।।

(अ० ८ लो० १५७३)

[१] एल्फिन्स्टनटत "भारत का इतिहास; " दसवाँ प्रकरण (व्यापार) ।

यूनानी लेखक एरियन (Arrian) सिकन्दर के प्रकरण मे लिखता है- "भारत मे उसको अपने जहाज़ स्वयं बनवाने पड़े ।" पर साथ ही वह यह भी लिखता है- "हिन्दुओ की चौथी जाति मे वे लोग है जो जहाज बनाते है, चलाते है या खेते हैं। मल्लाह ऐसे हैं जो नदियों को पार कर लेते है।"[१]

यूनानियो के एक विवरण से पता चलता है कि लाल सागर के मुहाने पर एक टापू मे, जो कदाचित् सकोतरा हो, अरबो और यूनानियो के साथ साथ कुछ हिन्दुओ की भी बस्ती थी।[२]

इस बात से किसी प्रकार का सन्देह नही है कि मालदीप, लंका, जावा और मलाया द्वीपपुंज के दूसरे टापुओ की बस्ती का एक बड़ा अंश हिन्दुओ का था। उनके आचार विचार और धर्म, बल्कि उनकी भाषा तक यह प्रकट करती है कि वे हिन्दू थे। अरब यात्रियों और व्यापारियो ने इसी लिये उन टापुओ को भारत का अंश माना था और इसी रूप में उनका उल्लेख किया था। बल्कि ईसवी नवी शताब्दी का अरब यात्री अबू जैद कहता है- "कुमारी अन्तरीप भी जावा के महाराज ने जीत लिया था।"[३] यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने के योग्य है कि अरबो ने जावा के बादशाह को सदा "महाराज" कहा है और उन टापुओ को "महाराज का राज्य" बतलाया है।

[१] **एल्फिन्स्टन, पहला खंड; पृ० १८२ ।**

[२] **उक्त ग्रन्थ और खंड; पृ० १८३ ।**

[३] **अबूजैद, पृ० ६७ ।**

पर इससे बढ़कर बात यह है कि ईसवी नवी शताब्दी मे अबूजैद सैराफी इस प्रसंग मे कि "भारतवासी एक साथ मिलकर नही खाते", कहता है-"ये हिन्दू लोग सैराफ (इराक का बन्दगाह) से आते हैं। जब कोई (अरब) व्यापारी उनको भोजन के लिये निमन्त्रण देता है, तब वे कभी सौ और कभी सौ से अधिक होते हैं। पर उनके लिये इस बात की आवश्यकता होती है कि हर एक के सामने अलग अलग थाल रखा जाय, जिसमें कोई दूसरा सम्मिलित न हो ।"[१] इससे यह स्पष्ट है कि कम से कम अरबों के समय में इराक़ के बन्दरगाह में हिन्दू लोग बहुत बड़ी संख्या में आने जाने लगे थे। अरबवालों ने भी यह कहा है कि हिन्दू लोग छोटे काश्मीर (पंजात्र) से सिन्ध तक नदी द्वारा बराबर यात्रा करते रहते थे।[२]

इससे बढ़कर एक और बड़ा प्रमाण यह है कि बुजुर्ग बिन शहरयार मल्लाह ने अपनी अजायब उल् हिन्द नामक पुस्तक मे बीसों स्थानों पर "बानियाना" (अर्थात् बनिया) के नाम से जहाज के दूसरे यात्रियों के रूप में भारतीय व्यापारियों का नाम लिया है। बल्कि एक स्थान पर तो उसने "बानियाना" और "ताजर" (व्यापारी) ये दो शब्द अलग अलग दिये हैं।[३]

जिससे क्रमशः हिन्दू व्यापारियों और अरब सौदागरों का अभिप्राय है। अरब में आज तक हिन्दू व्यापारी "वानिया" कहलाता है और इसका बहुवचन "बानियाना" होता है। इराक़, बहरैन, उमान, सूडान, मसूत्र, सईद बन्दर और कायरो (मिस्त्र) में आज भी ये लोग व्यापार करते हैं। हज्जाज और मिस्र की यात्रा में इन बनियो से मेरी भेंट भी हुई है।

[१] अयुङ्गेद; पृ० ४६ ।

[२] अजायबुलू हिन्द: ५० १०४ ।

[३] उक्त ग्रन्थ: पृ० १६५ ।

ये लोग नित्य प्रति की बाजारू अरबी भाषा ऐसी सुन्दरता से बोलते हैं कि हमारे यहाँ के अच्छे मौलवी उनका मुंह ताकते रहें। ये लोग प्रायः सिन्धी, सुलतानी और गुजराती होत हैं, जो ईश्वर जाने कब से इन देशों में आते जाते रहते हैं। सन् ३०० हि० में भी ये लोग अदन के पास अरब जहाजो में बैठे हुए दिखाई पड़ते है।[१]

भारतीय महासागर के जहाज़

भारत के समुद्र मे जो जहाज चलते थे और रूम सागर में जो जहाज चलते थे उन दोनो में एक विशेष अन्तर था। रूम सागर के जहाजो के तख्ते लोहे की कीलो से जड़े जाते थे और भारतीय महासागर के जहाजो के तख्ते डोरी से सिए जाते थे।[२] इन जहाजो के विस्तार का अनुमान एक इसी बात से हो सकता है कि इनमे दो खंड होते थे, अलग अलग कमरे होते थे; पीने के पानी और भोजन का भंडार होता था, यात्रियो के रहने के स्थान के सिवा व्यापार की सामग्री रखने के गोदाम होते थे; और स्वयं जहाज मे काम करनेवाले खलासी, मल्लाह और रक्षक या तीर चलानेवाले सिपाही सब मिलाकर एक हजार होते थे।[३] बुजुर्ग बिन शहरयार मल्लाह सन् ३०६ हि० की एक घटना इस प्रकार सुनाता है-

“सन् ३०६ मे मैं एक जहाज पर सैराफ से भारत की ओर चला। हमारे साथ अब्दुल्ला बिन जुनैद का जहाज और यात्री का जहाज भी था। ये तीनो जहाज बहुत बड़े थे

और समुद्र के प्रतिष्ठित जहाज में से थे। इनके मल्लाह भी बहुत प्रसिद्ध थे । इन तीनों जहाजो मे व्यापारी, मल्लाह, बनिए आदि सब मिलाकर बाहर सौ आदमी थे; और उनमे माल असंबाब इतनी अधिकता से था कि उसका अनुमान नहीं हो सकता । ग्यारह दिन के बाद थाना (बम्बई) के चिह्न मिले ।[४]

[१] उक्त ग्रन्थ, पृ० १४७।

[२] सुलैमान का यात्रा-विवरण; पृ० ८८ ।

[३] इब्न बतूता का यात्रा- विवरण; दूसरा खड, चीन की यात्रा ।

[४] अजायबुल हिन्द; पृ० १४७ और १६५ ।

इससे अनुमान हो सकता है कि ये जहाज इतने बड़े होते थे कि इनमें असबाब और खलासियों, मल्लाहों आदि के सिवा चार सौ आदमी सुखपूर्वक यात्रा कर सकते थे। चीन जानेवाले जहाज इतने बड़े होते थे कि उनमें केवल जहाज के सम्बन्ध के एक हजार आदमी होते थे। उनमें से छः सौ जहाज चलानेवाले होते थे और चार सौ तीर चलानेवाले और भाले फेंकनेवाले सैनिक होते थे। अब बाकी यात्रियों का अनुमान आप ही कर लीजिए । प्रत्येक बड़े जहाज पर तीन छोटी नावें समय कुसमय के लिये होती थीं ।[१]

समुद्री व्यापार की सम्पत्ति

भारतीय महासागर के व्यापार से भारतवर्ष और अरब दोनों देशों को जो लाभ होते थे, उनका अनुमान कुछ बातों और घटनाओं से हो सकता है। वल्लभराय की राजधानी महानगर "सोने का नगर" कहलाता था। महाराज की राजधानी (जावा टापू) के बाजार में दूकानों की गिनती नहीं थी। इस बाजार में केवल सराफ़ी की ८०० दूकानें थीं । [२] उमानमें मोतियोंका एक व्यापारी था । उसने एक बार दो बहुत ही अद्भुत मोती पाए थे, जिनका मूल्य बरादाद के खलीफा ने एक लाख दरहम दिया था ।[३] एक मल्लाह का कथन है- "सन् ३१७ हि० में मैं कल्लह (भारत) से व्यापार की सामग्री लेकर उमान गया। हमारे जहाज पर

इतना अधिक माल था कि उमान के हाकिम ने हमारे जहाज से ६ लाख दीनार कर लिया। यह कर उस एक लाख दीनार के अतिरिक्त था, जो उसने अपनी कृपा से क्षमा कर दिया था या लोगों ने चोरी से जो माल छिपा लिया था और प्रकट नहीं किया था।[४] इसी वर्ष सरन्दीप से एक और जहाज आया था, जिसने अपना कर छ लाख दिया था । [५] उमान मे इसहाक नाम का एक यदूदी था जो दलाली का काम करता था। वह एक यहूदी से लड़कर भारत चला आया और फिर चीन चला गया। तीस वर्ष मे उसने इतना धन कमाया कि स्वयं जहाजो का मालिक हो गया। जब अन्त मे तीस बरस के बाद वह सन् ३०० हि० मे फिर लौटकर उमान आया, तब उसने वहाँ के हाकिम को एक लाख दरहम इस लिये घूस दिया कि मेरा असबाव सरकारी तौर पर देखा भाला न जाय । इसके पास कस्तूरी का इतना अधिक भंडार था कि इसने एक लाख तोले कस्तूरी केवल एक व्यापारी के हाथ बेची थी। इसके सिवा साठ हजार अशर्फी की कस्तूरी दूसरे दो व्यापारियो के हाथ बेची थी।[६] एक और आदमी बहुत दरिद्रता की अवस्था मे उमान से गया था। जब वह लौटकर आया, तब एक पूरा जहाज उसके माल असबाब से भरा हुआ था, जिसमे दस लाख अशर्फी की तो केवल कस्तूरी थी; और इतने ही मूल्य के रेशमी कपड़े और जवाहिरात आदि थे। इससे पाँच लाख दीनार कर लिया गया था।[७]

दूसरी ओर इन अरब व्यापारियो से भारतीय समुद्र-तेट के राजाओ को भी बहुत आय होती थी। इसी लिये वे भी इनका बहुत आदर करते थे।[८]

[१] **इब्न बतूता का यात्रा-विवरण; दूसरा खंड; कालीकट का प्रकरण ।**

[२] **अजायनुल् हिन्द; पृ० १३७ ।**

[३] **उक्त ग्रन्थ; पृ० १३६ ।**

[४] **उक्त ग्रन्थ; पृ० १३० ।**

[५] **उक्त ग्रन्थ; पृ० १५८।**

[६] **उक्त ग्रन्थ; १०८।**

[७] **सुअजमुल् बुल्दान; वाकूत; "कैस" शब्द ।'**

[८] याकूत कृत मुअजमुल् बुल्दान, "कैस" शब्द ।

इब्न बतूता ने दक्षणी भारत के समुद्र तटो के नगरों की यात्रा करते हुए स्थान स्थान पर लिखा है कि ये हिन्दू राजा लोग इन अरब व्यापारियों को इस लिये अप्रसन्न नहीं होने देते कि उनके राज्य की आय इन्ही लोगों के आने जाने के कारण है। कालीकट और कारोमंडल के राजा इस समुद्री व्यापार के कारण असीम सम्पत्ति के स्वामी थे। कारोमंडल के एक राजा के मरने पर उसके एक मुसलमान कर्मचारी को जो सोना और जवाहिरात मिले थे उनको उठाने के लिये सात हजार बैलों की आवश्यकता थी।[१] इसी कारोमंडल को जब एक बार अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर ने जीता था, तब उसको राजकोष से और और पदार्थों के सिवा ९६ हजार मन सोना[२] और ५०० मन मोती[३] और जवाहिरात मिले थे। यदि मोतियों और जवाहिरात का मूल्य छोड़ दिया जाय, तो भी ९६ हजार मन सोना ही क्या कम है ! अलाउद्दीन के समय में प्राःय तेरह चौदह सेर का मन होता था, अर्थात् अंगरेजी हिसाब से प्रायः २८ पाउंड का मन होता था। इस विचार से केवल इस सोने की तौल २६ लाख २८ हजार पाउंड होती है।

कारोमंडल का सारा व्यापार अरब, इराक्क़ और फारस के समुद्र तटों से होता था। इसका विवरण आगे दिया जायगा ।

[१] ईलियट, पहले खंड में पृ० ६६-७० में जामय उत् तवारीख और ईलियट, खंड दूसरे पृ० ३२ और ५३ में तारी, खे वसाफ़ ।

[२] तारीखे ज़ियावरनी; पृ० ३३३ (कलकत्ते में प्रकाशित) ।

[३] खजायनुल् फुतूह; अमीर खुसरो पृ० १७८ (अलीगढ़ में प्रकाशित) ।

रूम सागर से भारत का दूसरा समुद्री मार्ग अरवों ने ढूंढा था

ऊपर कहा जा चुका है कि किस प्रकार पुत्त्तगाली मल्लाहों ने रूम सागर को छोड़कर अफ्रिका की परिक्रमा करके भारत का मार्ग ढूँढा था; और यह समझा जाता है कि इस पता

लगाने का श्रेय उन्हीं मल्लाहो के प्रयत्नो को है। पर पाठको को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि इस पता लगाने का सम्मान इनसे सैकड़ो बरस पहले इन अरब व्यापारियो को प्राप्त है, जो भारतीय महासागर मे अपने जहाज चलाया करते थे। यह विदित हो चुका है कि भारतीय सागर और रूम सागर के जहाजो की बनावट में क्या फरक था। बड़ा फरक यह था कि रूम सागर के जहाजो के तख्ते लोहे की कीलो से जड़े जाते थे और भारतीय सागर के जहाजो के तख्ते मजबूत रस्सी से, जो खजूर या नारियल की छाल से बनती थी, सीए हुए होते थे। सुलैमान सौदागर ने, जो सन् २३७ हि० मे था और जिसका नाम ऊपर कई बार आ चुका है, अपने यात्रा विवरण मे एक स्थान पर लिखा है

"जिन नई बातो का हमारे समय मे पता लगा और जिन्हें हम से पहले के लोग नही जानते थे, उनमे से एक बात यह भी है कि पहले किसी को इस बात की कल्पना भी नही थी कि जिस समुद्र पर भारत और चीन है, वह किस प्रकार शाम के सागर (रूम सागर अर्थात् भूमध्य सागर) से मिला हुआ है; और इस सम्बन्ध मे कोई तर्क या प्रमाण भी उनके पास नही था। पर हमारे समय से यह हुआ कि अरबो के कुछ सीए हुए जहाजो के तख्ते, जो भारतीय महासागर मे टूट गए थे और जिनके यात्री डूब गए थे, एटलान्टिक महासागर से होकर रूम सागर या भूमध्य सागर से पाए गए। इससे यह बात भली भाँति प्रमाणित हो गई कि भारतीय महासागर चीन (या अफ्रिका ?) पर चक्कर खाकर भूमध्य सागर से जाकर मिल गया है; क्योकि सीए हुए जहाज केवल सैराफ मे बनते थे और रूम तथा शाम के जहाज कीलो से जड़े जाते थे।[१]

[१] **सुलैमान का यात्रा-विवरण; पृ० ८८।**

वास्को डि गामा को किसने भारत पहुँचाया

इसमें सन्देह नहीं कि अफ्रिका के दक्षिण से होकर पुर्तगाली जहाज अन्त में भारतीय महासागर में पहुँच गए; पर फिर भी उन्होने भारत का पता न पाया। पुर्तगाली यह बात मानते हैं और अभागे अरब आप भी यह बात कहते हैं कि इन पुर्तगालियों को भारत तक

एक अरब मल्लाह ने ही पहुँचाया था। उसका नाम इब्न माजिद था और "असदुल् बहर" (अर्थात् समुद्र का सिंह) उसकी उपाधि थी। भारतीय महासागर में जहाज चलाने की विद्या पर अरबी में इसकी कई पुस्तकें हैं, जो पेरिस के पुस्तकालय में रखी हैं। अभी कुछ ही वर्ष हुए, पेरिस के पूर्वी ग्रन्थों के प्रकाशक पाल गाथनर ने वह पुस्तकें दो खंडों में प्रकाशित कर दी हैं। तीसरे खंड में अरबों की नाव चलाने की विद्या और जहाज चलाने के उपकरणो का पूरा विवेचन है। इस तीसरे खंड में "अलबर्कुल यमानी फिल् फतहिल् उस्मानी" के आधार पर, जो उसी समय का यमन का इतिहास है, इन घटनाओं का विस्तृत उल्लेख किया गया है कि किस प्रकार पुत्तगालो लोग भारत का पता लगाने के लिये इधर उधर मारे मारे फिरते थे, किस प्रकार समुद्र का सिंह इब्न माजिद उन पुर्तगाली लोमड़ियों के फन्दे में फँस गया और तब उसने किस प्रकार नशे की हालत में उन लोगों को भारत तक पहुँचा दिया ।

भारत की काली मिर्च और युरोप

आरम्भ में युरोप के जो पूर्वी व्यापारी ईसवी सत्रहवीं शताब्दी से भारत में आने लगे थे, उनके सम्बन्ध में सब लोग यह जानते हैं कि वे लोग काली मिर्चें बहुत अधिक पसन्द करते थे और उनके बड़े प्रेमी थे। वे लोग भारत से काली मिर्चें ही लाद लाद कर ले जाते थे । पर तेरहवीं शताब्दी का अरबी का एक भूगोल-लेखक जकरिया कजवीनी (सन् ६८६ हि०) सम्भवतः अपने से किसी पहले के ग्रन्थ में देखकर मलाबार के सम्बन्ध से कहता है-

" ये काली मिर्चें सुदूर पूर्व से लेकर सुदूर पश्चिम तक जाती हैं, और इनके सत्र से बड़े शौकीन फिरंग देश के लोग हैं, जो इनको शाम मे रूम सागर से लेकर सुदूर पश्चिम के देशो को ले जाते है।"[१]

सम्भवतः तुर्कों ने कुस्तुन्तुनिया जीतकर और भूमध्य सागर पर अधिकार करके इन लोगो को भारत की इन्ही काली मिर्चों के आनन्द से वंचित कर दिया था; और अन्त मे उन्ही मिर्चों के लिये जान जोखिम में डालकर वे लोग दूसरे समुद्री मार्ग से इस लिये भारत आए थे जिसमे यह अद्भुत उपहार किसी प्रकार अपने देश मे पहुँचा सकें ।

एक अरब हिन्दुस्तानी का जन्मभूमि सम्बन्धी गीत

इस प्रकरण का अन्त हम एक ऐसे गीत या कविता से करते हैं जो भारत मे रहनेवाले एक देशप्रेमी अरब ने बनाया था। ऐसा जान पड़ता है कि भारत के महत्व के सम्बन्ध मे किसी ने कुछ आपत्ति की थी, और उसीके उत्तर मे उसने इस कविता में भारत के गुण गाए है और यहाँ होनेवाली चीज़ो की प्रशंसा की है।[२] इस कवि का नाम अबू जिलअ सिन्धी है और इसका समय कम से कम सन् ६८६ हि० से पहले होगा। आश्चर्य नहीं कि उसका समय हिजरी तीसरी या चौथी शताब्दी हो; क्योकि सिन्ध मे अरबो का समय यही समाप्त होता है। वह मूल कविता अरबी मे है, इस लिये यहाँ वह कविता न देकर उसका केवल भावार्थ दिया जाता है ।

[१] **आसारुल् बिलाद; कजवीनी; तीसरा खंड; पृ० ८२ (गोटेजन) ।**

[२] **आसारुल् बिनाद; कजवीनी, पृ० ८५ ।**

भावार्थ

"मेरे मित्रों ने नहीं माना और ऐसी अवस्था में यह बात ठीक नहीं थी, जब कि भारत की और भारत के तीर की युद्ध में प्रशंसा की जा रही थी ।"

"अपने प्राणों की सौगन्द, यह वह भूमि है कि जब इसमें पानी बरसता है, तब उससे उन लोगों के लिये दूध, मोती और लाल उगते हैं जो श्रृंगार से रहित हैं।"

"इसकी मुख्य चीजों में कस्तूरी, कपूर, अम्बर, अगर और अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थ उन लोगों के लिये हैं, जो मैले हों।"

"और भाँति भॉति के इत्र जायफल, सम्बुल, हाथीदांत, सागोन की लकड़ी, सुगन्धित लकड़ी और चन्दन हैं।"

"और इसमें तूतिया सब से बड़े पर्वत की तरह हैं; और यहाँ सेर बबर और चीते और हाथी और हाथी के बच्चे होते हैं।"

"यहाँ के पक्षियों में कुलंग, तोते, मोर और कबूतर हैं और वृक्षों में यहाँ नारियल आबनूस और काली मिर्चों के वृक्ष हैं।"

"और हथियारों में तलवारें हैं, जिनको कभी सिकली की आवश्यकता नहीं होती; और ऐसे भाले हैं कि जब वे हिलें, तब उनसे सेना की सेना हिल जाय ।"

"तो क्या मूर्ख के सिवा कोई और भी ऐसा है जो भारत के इन गुणों का अस्वीकार कर सकता है?"

विद्या-विषयक सम्बन्ध

लेखक और ग्रन्थ जिनका आधार लिया गया है।

(१) जाहिज़

सन् २५५ हि० में इसका देहान्त हुआ था। यह बसरे का रहनेवाला था। यह अरबी भाषा का प्रसिद्ध लेखक, दार्शनिक और व्याख्याता था। इसकी बहुत सी छोटी बड़ी पुस्तकें हैं, जिनमे से किताबुल् बयान वक्तबईन और किताबुल् हयवान नाम की पुस्तिकाओ मे कल्पित कथोपकथन हैं। ये छपी हुई है। अभी हाल में किताबुत् ताज नाम की इसकी एक पुस्तक मिस्र मे प्रकाशित हुई है। जाहिज की किताबुल् बयान मे भारत के भाषण सम्बन्धी सिद्धान्तो (अलंकार शास्त्र १) पर एक पृष्ठ है; और पुस्तिकाओ मे से एक मे भारत के गुणो का वर्णन है। ये पुस्तके मिस्र में छपी हैं ।

(२) या. कूबी

इसका नाम अहमद बिन याकूत्र बिन जाफर है। अब्बासी राज्य मे यह साहित्य विभाग का प्रधान था। इसने भारत और दूसरे देशो की यात्रा की थी। यह पहला मुसलमान इतिहास-लेखक था, जिसने सारे संसार की जातियो का इतिहास अरबी मे लिखा था। सन् २८७ हि० में इसका देहान्त हुआ था। इसकी दो पुस्तके छपी हैं। एक इतिहास की है जो दो खडो में है; और दूसरी भूगोल की है। आश्चर्य है कि इसने भूगोल में भारत का वर्णन नही

किया। लेकिन इतिहास के पहले खंड मे इसने सबसे पहली बार उन पुस्तकों का वर्णन किया है, जिनका भारत की भाषाओ से अरबी मे अनुवाद हुआ था। ये दोनो पुस्तकें लीडन में छपी हैं।

(३) मुहम्मद बिन इसहाक़ उपनाम इब्न नदीम

यह सन् ३७७ हि० में वर्तमान था। बरादाद का रहनेवाला था। इसने उन सब पुस्तकों के नाम और विवरण लिखे हैं, जो उसके समय तक किसी विद्या या कला पर अरबी में लिखी गई थीं या जिनका किसी दूसरी भाषा से अरबी में अनुवाद हुआ था। इसमें भारत का भी अंश है। यह पुस्तक जरमन विद्वान् फ्लूगल (Flugel) के निरीक्षण में और उनकी टिप्पणियों के सहित सन् १८७१ ई० में लेपजिक में प्रकाशित हुई थी ।

(४) अबू रैहान बैरूनी

सन् ४४० हि० में इसका देहान्त हुआ था। इसने भारत की कलाओं और विद्याओं पर किताबुलू हिन्द के नाम से एक पूरी पुस्तक ही लिख डाली थी। प्रोफ़ेसर जखाऊ के परिश्रम से सन् १८८७ ई० में यह लंडन में प्रकाशित हुई थी। अँगरेजी और हिन्दी में भी इसका अनुवाद हो चुका है।

(५) काज़ी सायद अन्दुलसी

यह स्पेन का निवासी था। इसकी पुस्तक का नाम तबकातुल उमम है। सन् ४६२ हि० (सन् १०७० ई०) में इसका देहान्त हुआ था। इसने अपने समय तक की समस्त सभ्य जातियों और उनकी विद्याओं तथा कलाओं का इतिहास लिखा है, जो अरबी के द्वारा उस तक पहुँचा है। इसमें भारत पर भी एक प्रकरण है। इसकी यह पुस्तक बैरूत के कैथोलिक यन्त्रालय में सन् १९१२ ई० में छपी थी। फिर मिस्र में भी छप गई। मेरे सामने बैरूत की छपी प्रति है। दारुल् मुसन्निफीन, आजमगढ़, ने इसका उदू अनुवाद भी प्रकाशित कर दिया है।

(६) इब्न अबी उसैवअ मवफिकुद्दीन

यह अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान् और चिकित्सक था। इसका दादा सुलतान सलाहुद्दीन का चिकित्सक था। सन् ५९० हि० (सन् ११९४ ई०) से सन् ६६८ हि० (सन् १२७० ई०) तक इसका समय है। इसने ओयूनुल् अंबिया फी तबकातिल अतिव्या के नाम से समस्त सभ्य जातियो के प्रसिद्ध चिकित्सको की जीवनियाँ लिखी हैं। दूसरे खंड मे भारत का भी एक प्रकरण है। यह पुस्तक दो खडो में मिस्रमे छपी है।

(७) अल्लामा शिवली नुअमानी

इन्होने “तराजुम" (अनुवाद) के शीर्षक से अलीगढ़ की मुहम्मडन एजूकेशनल कान्फरेन्स मे एक विस्तृत अभिभापण (एड्रेस) पढ़ा था, जो पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित हो चुका है। इसमे विस्तार सहित उन पुस्तको का उल्लेख था जिनका यूनानी फारसी, इब्रानी, सुरयानी आदि भाषाओ से अरबी मे अनुवाद हुआ था। इसीके अन्तर्गत उन पुस्तको का भी संक्षिप्त वर्णन है, जिनका संस्कृत से अरबी और फारसी में अनुवाद हुआ था। लेकिन उस समय तक कुछ पुरानी पुस्तके छपी ही नही थी और कुछ ऐसी थी, जिनके सम्बन्ध की पूरी पूरी और ठीक बातो का तब तक पता ही नहीं चला था; इस लिये इस अभिभाषण का यह अंश अपूर्ण सा था ।

विद्या-विषयक सम्बन्धों का आरम्भ

बरामका

अरब और भारत के विद्या विषयक सम्बन्धों का विवेचन करने से पहले यह आवश्यक जान पड़ता है कि उस वंश का कुछ वर्णन कर दिया जाय, जिसके प्रयत्नो से ये सम्बन्ध स्थापित हुए । अरबी भाषा मे यह वंश साधारणतः "बरामका" के नाम से प्रसिद्ध है। यह वह वंश है, जिसने बगदाद की अब्बासी खिलाफत में पचास वर्ष तक अर्थात् सन् १३६ हि० से सन् १८६ हि० तक बहुत ही शान्ति, सुव्यवस्था, अनुग्रह, दानशीलता और उदारता के साथ मन्त्री के कर्त्तव्यों का पालन किया था। यहाँ तक कि बहुत से ऐसे लोग हैं जो यह समझते हैं कि अब्बासी खिलाफत की कीर्त्ति, प्रसिद्धि और सुव्यवस्था इन्हीं बरमकी मन्त्रियों के कारण थी। यह इन्हींके अनुग्रह रूपी मेघों के छीटे थे, जिनसे बरादाद किसी समय हरे भरे उपवन के समान बन गया था। पहले अब्बासी खलीफा सफ्फाह से लेकर पाँचवें खलीफा हारूनुर्रशीद तक इसी वंश के भिन्न भिन्न व्यक्तियों ने मन्त्री का काम किया था; बल्कि यों कहना चाहिए कि बादशाही की थी। यद्यपि इनके वंश का आरम्भ सफ्फाह के ही समय से होता है, पर इनके प्रताप का सूर्य हारूँ के समय में अपने सब से ऊँचे शिखर पर पहुँच गया था; और अभी दोपहर ही थी कि हारूँ के हाथो यह सदा के लिये डूब भी गया।

हारूनुर्रशीद ने इस वंश को जिन कारणो से नष्ट किया, वे कारण सदा परदे में ही रहे, प्रकट नहीं हुए। पर फिर भी इतिहास-लेखकों ने यह प्रमाणित किया है कि इसका कारण केवल यह था कि बरामकः ने अपनी उदारता और कीर्ति से सब लोगो को पूरी तरह से अपने वश में कर लिया था। साथ ही देश की सब अच्छी और बढ़िया जमीनें अपनी जागीर मे कर ली थीं, और सारे राज्य पर इनका इतना अधिक प्रभुत्व हो गया था कि असल अब्बासी वंश मानो इन्ही की कृपा और अनुग्रह पर बाकी रह गया था। ऐसी दशा मे यदि ठीक समय पर बरामका की खबर न ली जाती, तो इस्लामी संसार मे एक बहुत बड़ी ऐतिहासिक क्रान्ति आ उपस्थित होती और अब्बासी वंश सदा के लिये मिट जाता। अतः

अब्बासी वंश को बचाने के लिये बरमकी वंश को मिटाना आवश्यक था। कारण चाहे जो हो, पर इसमें कोई सन्देह नही कि बरामका का ही वह वंश था, जिसके संरक्षण मे मुसलमानों मे धार्मिक बातो को युक्ति से सिद्ध करने की विद्या, दर्शन, चिकित्सा, तर्क और दूसरी जातियो की विद्याएँ सीखने का अनुराग उत्पन्न हुआ ।

बरामका कौन थे ?

साधारणतः यही प्रसिद्ध है कि बरामका लोग मजूसी अर्थात् ईरानी अग्निपूजक थे। बल्ख मे मनोचहर का बनवाया हुआ नौबहार नाम का एक अग्निमन्दिर था। उसी अग्निमन्दिर के ये लोग पुजारी थे। जब मुसलमानो ने सन् ३१ हि० (सन् ६५१ ई०) मे बल्ख को जीत लिया, तब यह अग्निमन्दिर भी इस आँधी मे ठंढा पड़ गया। पर कुछ दिनो बाद फिर इसकी लपटे उठी; और अन्त मे सन् ८६ हि० (सन् ७०५ ई०) मे प्रसिद्ध मुसलमान सेनापति खुरासान कुतैबा ने सदा के लिये इस देश को मुसलमानो के शासन क्षेत्र मे मिला लिया । इस अग्निमन्दिर के पुजारी लोग पुराने बादशाहो के समय से बल्ख और उसके आस पास की मन्दिर के लिए संकल्प की हुई बस्ती के मालिक और हाकिम थे । उनमे से कुछ लोग अपनी इच्छा से मुसलमान हो गए और दमिश्क चले आए। इसके बाद जब फिर अरबों के शासन का केन्द्र सन् १३३ हि० में दमिश्क से हटकर बगदाद चला गया, तब वे भी बगदाद चले आए और धीरे धीरे साम्राज्य और शासन के ऊँचे से ऊँचे पदों को पार करते हुए प्रधान मन्त्री' के पद तक पहुँच गए; और एक समय ऐसा आया, जब कि उन्होंने सारे इस्लामी जगत् पर राज्य किया।

इस वंश के लोग उक्त अग्निमन्दिर के सब से बड़े पुजारी थे और यह वंश बरमक के नाम से प्रसिद्ध था। इसी बरमक का बहुवचन बरमका है, जिसके साथ इस वंश की प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि और कीर्ति बनी हुई है। प्रश्न यह है कि बरमक शब्द का मूल क्या है। प्राचीन इतिहास-लेखकों और कोषकारों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है। बाद के इतिहास-लेखको और कोषकारों ने इसको फारसी की "मकीदन" क्रिया से निकाला है, जिसका अर्थ "चूसना है; और कहा है कि इसमें "बर" उपसर्ग लगाकर इसको "बरमकीदन" कह सकते हैं।

फिर इस शब्द के सहारे से एक निराधार कहानी की इमारत खड़ी की है। कहते हैं कि जब पहला बरमक मुसलमान होकर खलीफा के सामने गया, यत्र खलीफा ने उसको डाँटकर कहा- "तुझको बादशाहों के दरबार में आने का भी शऊर नहीं है। तू अपने पास जहर रखकर दरबार में आया है। मेरे पास ऐसे मोहरे हैं, जिनसे मुझको, पता चल जाता है कि किसके पास जहर है।" प्रथम बरमक ने निवेदन किया - "मुझसे यह अपराध अवश्य हुआ। मेरी अँगूठी के नीचे जहर है; पर वह इस लिये है कि यदि मुझ पर कोई ऐसा कठिन समय आा जाय कि मुझे अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिये अपने प्राण देने पड़े, तो मैं इस अँगूठी को चूसकर प्राण दे दूँ ।" उसकी मातृभाषा फारसी थी; इस लिये उसने "चूस लूँ" को फारसी में "बरमकम्" कहा। उस समय से उसका नाम ही बरमक हो गया।[१] यह कहानी बिलकुल गढ़ी हुई है और केवल फारसी कहानी लिखनेवालो की गप है ।- द्मिश्क के दरबार की भापा फारसी नही थी, वल्कि अरवी थी। इसके सिवा इस कहानी का अर्थ यह होगा कि वरमक की उपाधि सन् ८६ हि० से चली। परन्तु अरबी के सभी प्रामाणिक लेखको ने यही लिखा है कि यह बल्ख के प्रधान पुजारी की पुरानी उपाधि थी ।

[१] **तारीख जियाए बरनी रौज़तुस्सफा; बुरहान क़ाते ।**

फारसी के कुछ कोषकारो ने वरमक को किसी स्थान का नाम बतलाया है; और कहा है कि उसो नाम के सम्बन्ध के कारण लोग उनको बरमकी कहने लगे थे।[१] एक अरब साहित्यज्ञ ने भापा विज्ञान की दृष्टि से इस शब्द की और भी मनोरंजक व्युत्पत्ति बतलाई है। उसने कहा है कि बल्ख का यह उपासना-मन्दिर काबे के जोड़ पर या उसके जवाब मे बनाया गया था; इस लिये उसके प्रधान अधिकारी को "बरमका" अर्थात् मक्के का हाकिम कहते थे, और इसीका संक्षिप्त रूप बरमक है ।[२] याकूत की मुअजमुल् बुल्दान नामक पुस्तक मे इस शब्द की यह व्याख्या की गई है कि - "बर" का अर्थ पुत्र है, और बरमका का अर्थ है मक्का का पुत्र । यहाँ मक्का का अभिप्राय नौ-बहार नामक उपासना मन्दिर से है।

हमारी भाषा (उर्दू) मे अल बरामकः के नाम से इस वंश का प्रसिद्ध इतिहास लिखा गया है। उसके सुयोग्य लेखक ने इस शब्द का मूल यह प्रकट किया है कि बरमक शब्द वास्तव मे बरमग़ था । फारसी मे "मरा" आग के पुजारी या अग्निपूजक को कहते है। उदू कविता मे जो मुगाँ या पीरेमुगाँ आदि शब्द आते है, वे इसीका बहुवचन है। इस शब्द का यूनानी रूप "मगोस" और अरबी रूप "मजूस" है। बर का अर्थ होता है प्रधान, इस लिये बरमग़ का अर्थ हुआ

[१] **बुरहान काते ।**

[२] **रबी उल् अबरार, ज़मखशरी ।**

रईस और सरदार मजूस । हमें यह अर्थ मानने में कुछ भी आपत्ति नहीं है; पर शर्त यह है कि यह बात प्रमाणित हो जाय कि ईरान देश में नौबहार के अतिरिक्त और जो हजारों अग्नि-मन्दिर थे, उनमें से किसी एक का प्रधान, पुजारी, पुरोहित या दस्तूर भी कभी इस नाम से पुकारा गया है। इस व्याख्या या अर्थ के साथ फारसी में यह शब्द इतना अधिक प्रचलित होना चाहिए था कि फ़ारसी शेरो में इसका व्यवहार बहुत अधिकता से होता और कोषकारों आदि को भी इसका ज्ञान होता। लेकिन इन लोगों के इधर उधर भटकने और परेशान होने से ही यह पता चलता है कि इन लोगों को इस शब्द की व्युत्पत्ति . का ज्ञान नहीं था। इसके सिवा बरमरा शब्द को अरबी में बरमज या अधिक से अधिक बरमुरा कहना चाहिए था, न कि बरमक। इस बात का कोई उदाहरण नहीं दिया जा सकता कि फारसी का “गैन" या "ग" अरबी में "काफ" या "क" से बदला गया है। हाँ "ज" से वह अवश्य बदला गया है; जैसे "चिराग" से "सिराज” । तुर्की नाम “हलाकू” का मूल रूप लोग साधारणतः "हलागू" समझते हैं; - पर वास्तव में यह बात नहीं है, बल्कि उसका मूल रूप “हलागू” है। और फिर आश्चर्य नहीं कि इस अत्याचारी और रक्त के प्यासे बादशाह के नाम के लिये हलाकू का अशुद्ध उच्चारण इस लिये ग्रहण कर लिया गया हो कि अरबी शब्द "हलाक" (मृत्यु) की जो ध्वनि है, वह ध्वनि व्यंग्यपूर्वक उसमें छिपी रहे ।

वास्तविक बात यह है कि इस शब्द की व्याख्या या मूल इस भेद के खुलने पर निर्भर करता है कि क्या बल्ख का यह उपासना- मन्दिर वास्तव में मजूसियो का अग्निमन्दिर था? और क्या इस्लाम ग्रहण करने से पहले इस वंश का धर्म अग्निपूजन था? ईरानियो की ओर से तो इन प्रश्नों का यही उत्तर मिलेगा कि हाँ, ऐसा ही है। यह अग्निपूजकों का मन्दिर था और वह वंश अग्निपूजक था ।

पर वास्तविक बात यह है कि यदि कोई आदमी असाधारण रूप से योग्य या बड़ा होता है, तो सभी जातियो के लोग उसे अपने मे सम्मिलित करना चाहते है और उसे अपनी जाति का बतलाते हैं। क्या ईरानी लोग सिकन्दर को ईरानी राजवंश का नहीं बतलाते? और क्या मुसलमानो ने अपनी कहानियो मे सिह हृदय रिचर्ड को सुलतान सलाहुद्दीन के ही वंश का वंशधर नहीं बतलाया? यही दशा बरामका की भी हुई। ईरानियो ने तो इनके वंश का सम्बन्ध खीच तानकर गश्तास्प के मन्त्री जामास्प तक पहुँचा दिया है; और प्रमाणित किया है कि यह ईरानी मन्त्रियो का पुराना वंश था।[१] इसके विपरीत अरबो ने यह कह डाला कि प्रथम जाफर बरमकी, जिससे इस वंश की उन्नति का आरम्भ होता है, खुरासान के अरब सेनापति कुतैबा का पुत्र था। जाफर की माता युद्ध मे कुतैबा के हाथ लगी थी और सन्धि होने पर गर्भवती होकर लौट गई ।[२]

वंश आदि के इन भिन्न भिन्न विवादास्पद वर्णनो से अलग होकर पहले इस उपासनामन्दिर की अवस्था पर विचार करना चाहिए; और यह देखना चाहिए कि क्या एक अग्निमन्दिर की विशेषताएँ इसमे पाई जाती थी? अग्निमन्दिर के लिये सब से पहली बात यह है कि वह वास्तव में अग्नि का मन्दिर हो, उसमे आग जलती हो । लेकिन बल्ख के इस उपासना मन्दिर के सम्बन्ध में केवल पीछे के कुछ ऐसे लोगो ने ही यह बात कही है, जो सतर्क होकर कोई बात नही कहते। और किसी ने ऐसा नही कहा है। इस उपासनामन्दिर के सम्बन्ध मे सब से पुराना उल्लेख इस समय हमारे हाथ मे बिलाजुरी का है; पर उसने इस सम्बन्ध मे कोई विवरण नही दिया है। इसके उपरान्त मसऊदी (सन् ३३० हि०) और इब्नुल् फ़क़ीह हमदानी का समय है। फिर मुअजमुल् बुल्दान याकूत (सन् ६२६ हि०) और आसारुल् बिलाद ; जकरिया क़ज़वीनी (सन् ६८६ हि०) का वर्णन है। इब्नुलू फ़क्तीह और

याकूत का आरम्भिक वर्णन अक्षर अक्षर एक है; और याकूत ने जो वर्णन किया है, वह उमर बिन अल्अजरक से लिया हुआ है।

[१] **सियासतनामा व नुजहतुल् कुलूब; हम्दुल्लाह मुस्तौफी ।**

[२] **तबरी व इब्न असीर ।**

मसऊदी का वर्णन

इतिहास-लेखक मसऊदी नौबहार के सम्बन्ध में लिखता है-

"नौबहार का मन्दिर बहुत मज़बूत और ऊँचा था; और उसके ऊपर बाँसों पर हरे रेशमी कपड़े के फंडे लहराते थे, जिनमें से हर फंडे का कपड़ा सौ सौ हाथ के बराबर होता था । ... उसके चारों ओर की दीवारें भी ऐसी ही ऊँची थीं। उसके फंडे का रेशमी कपड़ा इतना बड़ा था कि दूर दूर तक जाता था ।"[१]

पाठकों ने देख लिया कि इसमें आग का कहीं नाम नहीं है; और न मन्दिर का यह ढंग और न ये फंडे अग्निमन्दिरों में होते हैं।

इब्नुल् फ़क़ीह का वर्णन

इब्नुल् फ़क़ीह हमदानी का वर्णन इस प्रकार है-

"नौ-बहार - यह बरमका का बनवाया हुआ मन्दिर था। उसका धर्म मूर्तियों की पूजा करना था। जब उनको मक्के और कुरैश के धर्म का पता लगा, तब उन्होंने भी यह उपासना मन्दिर बनवाया, जिसका नाम नौ-बहार हुआ, जिसका अर्थ नया या नवीन है। अरबों से भिन्न लोग यहाँ दर्शन करने के लिये आते थे। इसको रेशम का कपड़ा पहनाया जाता था। इसपर एक गुम्बद था, जिसका नाम अशबत था। यह गुम्बद सौ हाथ लम्बा और सौ हाथ चौड़ा था। मन्दिर के चारो ओर उसके पुजारियो के रहने के लिये ३६० कोठरियाँ थीं । साल

के प्रत्येक दिन के लिये एक पुजारी रहता था; और उन पुजारियों के प्रधान की उपाधि का बरमका थी। इस बरमका शब्द का अर्थ होता है- मक्के का द्वार और प्रधान पुजारी । इस प्रकार हर एक पुजारी की उपाधि बरमक होती थी। चीन और काबुल के बादशाह इस धर्म मे थे। जब वे लोग यहाँ आते थे, तब विशाल मूर्ति के आगे नमस्कार करते थे ।[१]

[१] **मुरूजुज ज़हब; चौथा खंड; पृ० ४८ (पेरिस) ।**

पाठको ने देख लिया कि इस वर्णन से भी अग्नि के होने का कही कोई उल्लेख नहीं है; बल्कि उसके वदले से इसमे मूर्त्तियो का उल्लेख है, जिनका अग्निमन्दिरो से कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर मजूस और ईरानी लोग मूर्ति की पूजा भी नहीं करते। सब लोग यह भी जानते है कि चीन और काबुल से कभी अग्नि की पूजा नही होती थी ।

या. कृत का वर्णन

रूम का याकूत एक पुराने ग्रन्थकार के आधार पर यह वर्णन करता है-

"उमर बिन अजरक किरमानी ने कहा है कि बरामका लोग बल्ख मे सदा से प्रतिष्ठित माने जाते थे; और जब (सिकन्दर के बाद) ईरान से अराजकता फैली थी, उससे पहले से ये लोग वहाँ थे । उनका धर्म मूर्तियो की पूजा करना था। (फिर मक्के के ढंग पर और उसके मुकाबले मे नौ-बहार का बनना उसी प्रकार बतलाया है, जिस प्रकार ऊपर कहा जा चुका है।) इसमे चारों ओर मूर्तियाँ खड़ी थी और उनको रेशम के कपड़े पहनाए जाते थे। नौ-बहार का अर्थ नई बहार या वसन्त ऋतु है, क्योंकि हर नई बहार या वसन्त ऋतु में उन मूत्तियों पर फूलों की नई कलियाँ चढ़ाई जाती थीं। फ़ारसवाले यहाँ आकर दर्शन करते थे और इसके सब से बड़े गुम्बद पर फंडे खड़े करते थे। इस गुम्बद का नाम "अस्तन" था और इसके चारों ओर ३६० कमरे थे, जिनमें पुजारी रहते थे। भारत, चीन और काबुल के बादशाह इस धर्म में थे और यात्रा के लिये यहाँ आते थे। वे लोग आकर बड़ी मूर्ति के आगे

प्रणाम करते थे। यह इतना बड़ा था कि इसके फंडे का कपड़ा बल्ख से उड़कर तिरमिज पर जाकर गिरता था ।[१]

[१] किताबुल् बुल्दान; पृ० ३२२ (लीडन) ।

फूल के चढ़ावे और बहार की विशेषताएँ आदि सब फ़ारसी के बहार शब्द की समानता के कारण गढ़ ली गई हैं, जिसमें नौ-बहार नाम की उपयुक्तता और सार्थकता प्रकट हो ।

क़ज़बीनी का वर्णन

बल्न के वर्णन में क़ज़वीनी लिखता है- "यहीं वह मन्दिर था, जिसका नाम नौ-बहार था और जो सब सन्दिरों से बड़ा था। (इसके उपरान्त वही मक्के की नकल और समानता की कहानी है।) यह रेशम और जवाहिरात से सजाया गया था और इसमें मूर्त्तियाँ खड़ी थीं। फ़ारसवाले और तुर्क लोग इसपर श्रद्धा रखते थे और आकर इसके दर्शन करते थे। वे लोग भेंट और उपहार भी चढ़ाते थे। इस मन्दिर की लम्बाई सौ हाथ, चौड़ाई सौ हाथ और ऊँचाई सौ हाथ से अधिक थी। बरामका यहाँ के असली पुजारी थे। भारत के राजा और चीन के खाकान यहाँ आते थे[१] और मूर्त्तियों को प्रणाम करते थे।"

[१] मुअजमुल् बुल्दान; आठवाँ खंड; ५० ३२१ (मिस्र) "नौ- बहार" शब्द ।

बौद्ध-विहार

इन सब वर्णनो से इस बात मे कोई सन्देह नहीं रह जाता कि यह मजूसियों का अग्निमन्दिर नही था, बल्कि बौद्धो का विहार था; और इसी विहार का बिगड़ा हुआ रूप यह बहार शब्द है। नौ-बहार वास्तव मे नव-विहार है। बौद्धो के मन्दिर और पुजारियो के रहने के स्थान को विहार कहते हैं, जिसका एक उदाहरण स्वयं हमारे देश मे विहार नामक

नगर है, जो वास्तव में बौद्धो का विहार है। मुसलमानों ने इसको अपने फारसी उच्चारण के ढंग पर "बहार" बना लिया है। इसी नव-विहार के नामवाले अनेक विहार सिन्ध में मुसलमानो के पहले पहल आने से पूर्व वर्तमान थे। अरब इतिहास-लेखको ने उन विहारो का जो वर्णन किया है, वह बल्ख के नौ-बहार के सम्बन्ध मे अक्षरशः ठीक घटता है।

बिलाज़ुरी (सन् २४७ हि०) जो बहुत पुराना इतिहास-लेखक है, फ़ुतूहुल् बुल्दान मे सिन्ध की विजय के प्रकरण में लिखता है- "देबल मे एक बहुत बड़ा बुद (बौद्धो का उपास्य देवता, वास्तव मे बुद्ध की मूर्ति) था, जिसके ऊपर एक बहुत बड़ा स्तम्भ था; और उसमे बहुत बड़ा लाल फंडा था, जो इतना बड़ा था कि जब हवा चलती थी, तब वह सारे नगर के ऊपर लहराता था। और 'बुद' जैसा कि (सिन्ध के आने जानेवाले) लोगो ने बतलाया, उस मन्दिर को कहते है, जिसमें एक या कई मूर्तियाँ होती है। उसमे एक बहुत बड़ा मीनार होता है; और कभी उस मीनार के अन्दर ही वह मूर्ति रखी रहती है। वे लोग जिस चीज को उपास्य समझकर उसका आदर करते हैं, वही बुद्ध होता है; और बुत (मूर्ति) भी 'बुद' ही होता है ।"[१] क्या इस वर्णन के उपरान्त भी इस बात में किसी प्रकार का सन्देह रह जाता है कि बल्ख का यह नौ-बहार बौद्धों का मन्दिर था, मजूसियों का अग्निमन्दिर नहीं था ?

[१] आसारुल् बिलाद; कज़्वीनी; पृ० २२१ (गोटेंजन) ।

आश्चर्य है कि पुराने इतिहास-लेखकों को छोड़कर युरोप के नए जानकार इतिहास लेखकों का ध्यान भी इस ओर नहीं गया । वान क्रेमर ने बरामका को मजदकी (अपने आपको पैगम्बर बतलाने वाले मजदक का अनुयायी) बतलाया है, [२] और प्रोफेसर ब्राउन सरीखे अन्वेषण करनेवाले को भी इस रहस्य का पता न लगा। वह भी नौ-बहार को अग्निमन्दिर और बरामका को मजूसी कहते हैं।[३] लेकिन छान बीन करते समय हमें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि जखाऊ ने किताबुलू हिन्द के अँगरेजी अनुवाद की भूमिका (पृ० ३१) में नौ-बहार का असल रूप 'नव-विहार' बतलाया है; और कहा है कि यह बौद्ध भिक्षुओं के रहने का विहार था। आजकल के युरोप के अन्वेषकों में से कम से कम एक महाशय

डब्ल्यू० बर्थाल्ड (W. Barthald) ने इन्साइक्ललोपीडिया आफ़ इस्लाम के "बरामका" शीर्षक विषय (पहला खंड; पृ० ६६३) में कुछ पंक्तियों में यह संकेत किया है- "जैसा कि एक चीनी यात्री का कहना है, नौ-बहार बौद्धो का नव-विहार जान पड़ता है; और इब्न फ़क़ीह ने इस मन्दिर का जो स्वरूप बतलाया है, उससे यह प्रमाणित होता है।" लेकिन इनमे से भी किसी ने न तो इस सम्बन्ध मे कोई तर्क स्थापित किया है और न कोई प्रमाण दिया है। फिर इसीके साथ सब लोगो ने बार बार यह भूल की है कि वरामका को ईरानी वंश का मजूसी या अग्निपूजक माना है; और यह भी कहा है कि ईरानियो ने इसे अग्निमन्दिर बना लिया है।

[१] फ़ुतूहुल् बुल्दान; पृ० ४३७ (सन् १८६६ में वरेल मे प्रकाशित)

[२] सलाहुद्दीन खुदाबख़्श के ग्रन्थ का अंगरेज़ी अनुवाद ।

[३] लिटरेरी हिस्ट्री आफ पर्शिया (Literary History of Persia) पहला खंड पृ० २५६।

लेकिन मेरी समझ मे यह बात बिलकुल गलत है। मैं जोर देकर कह सकता हूँ कि बरामका लोग वौद्धधर्म के अनुयायी थे और उनका वास्तविक सम्वन्ध भारत से था, न कि ईरान से। यह ठीक है कि बरामका लोगो के समय में कुछ निन्दा करनेवाले कवियो या दुष्ट लोगो ने स्पष्ट रूप से उनको मजूसी या अग्निपूजक बतलाया है, पर इसका कारण यह है कि अरब लोग यही नही जानते थे कि अजम (फारस) देश के निवासियो में मजूसियो के सिवा और भी किसी धर्म या जाति के लोग रहते हैं। दूसरी बात यह है कि ईरानियो और बरमकियो की राजनीतिक आवश्यकता यह थी कि दोनो आपस में अजम देश के निवासी बनकर एक दूसरे के साथी और सहायक बने रहे, चाहे अन्त तक उन दोनो का यह मित्रता का सम्बन्ध न निभ सका और इसी कारण से बरामका वंश का पतन हुआ ।

मेरा यह कहना है कि नौ-बहार बौद्धो का मन्दिर था और बरामका लोग असल मे बौद्ध थे, और इस सम्बन्ध से नीचे लिखे प्रमाण है-

(क) नौ-बहार कहीं किसी मजूसी मन्दिर का नाम नहीं था। इसके विरुद्ध यह बौद्धो के मन्दिर का प्रसिद्ध नाम है, और सिन्ध मे इसी नौ-बहार के नाम से अनेक बौद्ध मन्दिर उसी समय वर्त्तमान थे।[१]

[१] वचनामा का अँगरेज़ी अनुवाद; ईलियट, पहला खंड; पृ० १५० ।

(ख) अरब भूगोल-लेखकों और बिश्वसनीय इतिहास-लेखकों ने इस मन्दिर का जो वर्णन किया है, वह बिलकुल बौद्ध मन्दिर का चित्र है।

(ग) ईसवी सातवीं शताब्दी के चीनी यात्री ह्वेन्त्सांग ने बल्ख के इस मन्दिर का उल्लेख किया है; [१] और यह समय लगभग वही होगा जब कि अरब विजेता लोग यहाँ पहुँच चुके होंगे या पहुँचनेवाले होंगे।

(घ) इस नौ-बहार का वर्णन करता हुआ मसऊदी कहता है- "लोग ऐसा कहते हैं और कुछ जाँच करनेवालों का भी यह कहना है कि उन्होंने नौ-बहार के फाटक पर फारसी में एक लेख पढ़ा था, जिसमें लिखा था- "बुज आसफ का कथन है कि राजाओं के द्वार तीन गुणों के इच्छुक रहते हैं- बुद्धि, सन्तोष और धन ।" इसके नीचे किसी ने अरबी में लिख दिया था - "बुज आसफ ने जो कुछ कहा, वह गलत है। जिसमें इन तीनों में से एक बात भी होगी, वह किसी राजा के द्वार पर क्यों जायगा ।"[२] इतिहास की बातों का पता लगानेवाले लोगों को इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं है कि अरबवाले बुद्ध को ही बुज चासक कहते थे ।[३] यदि यह बौद्धो का मन्दिर न होता, बल्कि मजूसियों का अग्नि मन्दिर होता, तो इसके प्रधान द्वार पर बुद्ध का बचन क्यों लिखा होता?

(ड) बल्ख खुरासान का एक नगर है; और पुराने तथा इस समय के सभी अन्वेषकों का यह कहना है कि खुरासान देश में इस्लाम धर्म का प्रचार होने से पहले बौद्ध धर्म का

प्रचार था। इब्न नदीम ने भी खुरासान के एक पुराने इतिहास के आधार पर लिखा है- "इस्लाम से पहले खुरासान का धर्म बौद्ध था ।"[४]

(च) बरामका से धर्म के सम्बन्ध मे इतिहास-लेखको ने यह भी लिखा है- "नौबहार के पुजारी का जो धर्म था, वही धर्म भारत, चीन और तुर्कों के बादशाह का भी था ।"[५] सब लोग यह बात जानते है कि भारत, काबुल, चीन और तुर्किस्तान का धर्म बौद्ध था, अग्निपूजा या मजूसियत नही ।

(छ) याकूत के ग्रन्थ मे एक पहले के इतिहास-लेखक उमर बिन अजरक किरमानी (यह किरमानी अवश्य ही ईसवी तीसरी चौथी शताब्दी का है, क्योकि ठीक यही वाक्य इब्नुल् फकीह मे भी हैं जो चौथी शताब्दी के मध्य में था) के आधार पर लिखा है- "जब हजरत उस्मान के समय मे बल्ख जीता गया, तब नौ-बहार का प्रधान पुजारी बरमक भी खिलाफत के दरबार में गया; और वहाँ वह अपनी इच्छा से मुसलमान हो गया। जब वह वहाँ से लौटकर बल्ख आया, तब लोग उसके धर्म परिवर्त्तित करने से असन्तुष्ट हो गए, और उसको प्रधान पुजारी के पद से हटाकर उन लोगो ने उसके स्थान पर उसके लड़के को प्रधान पुजारी बनाया। फिर नेजक तरखान (तुर्किस्तान का बादशाह) ने उसको लिखा कि तुम इस्लाम छोड़कर फिर अपने पुराने धर्म मे आ जाओ। उसने उत्तर दिया कि मैंने अपनी इच्छा से इस्लाम ग्रहण किया है; और इसको अच्छा समझकर ग्रहण किया है; इस लिये मै इसे छोड़ नहीं सकता । तरखान ने उस पर चढ़ाई करने का विचार किया; पर बरमक की धमकी से उस समय वह चुप हो गया। पीछे से उसने धोखा देकर उसको और उसके साथ उसके दस पुत्रों को भी मरवा डाला। केवल एक छोटा बालक बच गया ।"

[१] **इन्साइक्लोपीडिया थाफ़ इस्लाम; पहला खंड; पृ० ६६४ ।**

[२] **सुरूजुज़ ज़हब; चौथा खंड; पृ० ४६ (पेरिस) ।**

[३] किताबुल् फ़ेहरिस्त; इब्न नदीम; पृ० ३४५ (फ़्लूगल की टिप्पणियों से युक्त) ।

[४] उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ ।

[५] इब्नुल फ़कीह, कज़वीनी और याकूत के कथन ऊपर दिये जा चुके है।

अब प्रश्न यह है कि यदि नौ-बहार अग्निमन्दिर होता और बरामका लोग अग्निपूजक होते, तो बौद्धों के बादशाह तरखान को उस पर क्रोध क्यों आता और वह उसके तथा उसके वंश के पीछे क्यों पड़ता?

(ज) बरमक और उसके पुत्रों के मारे जाने के बाद बरमक की स्त्री छोटी अवस्थावाले अपने बालक को लेकर भाग गई और भागकर काश्मीर आई। उस छोटे बच्चे की शिक्षा आदि काश्मीर में ही हुई; और यहीं उसने चिकित्सा, ज्योतिष और भारत की दूसरी विद्याएँ सीखीं और वह अपने बाप दादा के धर्म का पालन करता रहा। संयोग से एक बार बल्ख में मरी फैली। वहाँ के लोगों ने यह समझा कि अपना पुराना धर्म छोड़ने के कारण लोगों पर यह आपत्ति आई है। इस लिये उन लोगों ने नवयुवक बरमक को काश्मीर से बल्ख बुलवाकर नए सिरे से नौ-बहार का श्रृंगार किया ।[१]

बल्ख से भागकर काश्मीर आने और यहाँ शिक्षा प्राप्त करने का इसके सिवा और कोई कारण नहीं हो सकता कि इस वंश का सम्बन्ध भारत से था और उनका धर्म बौद्ध था, जिसका एक केन्द्र काश्मीर भी था। नहीं तो उनके लिये यह सहज था कि वे लोग तर्कों के अत्याचार से भागकर अपनी जाति और अपने धर्मवाले लोगों के पास ईरान जाते या मुसलमानों के पास आकर शरण लेते। फिर एक मजूसी या अग्निपूजक लड़के की शिक्षा दीक्षा किसी दूसरे देश और धर्म में क्या हो सकती है; और यहाँ काश्मीर में उसको अपने धर्म की क्या शिक्षा मिलती ।

[१] देखो याकूत कृत मुअजमुल् बुल्दान मे "नौ-बहार" शब्द और किताबुल् बुल्दान इब्नुल फ़कीह पृ० ३२४ (लीडन) ।

(झ) जिस समय यह वंश भारत में इस्लाम धर्म लाया था, उससे पहले का भारत के साथ यह सम्बन्ध था। इस देश मे अपने साथ इस्लाम धर्म लाने के बाद इस वंश ने भारत के साथ अपना सम्बन्ध और दृढ़ कर लिया; और भारत के पंडितो को इराक मे बुलवाकर अपने दरबार मे स्थान दिया। सिन्ध के सम्भवतः बौद्ध विद्वानो और चिकित्सको को बुलवाकर उसने बगदाद के अनुवाद- विभाग और चिकित्सालयो मे नियुक्त किया; और भारत के धर्मों तथा ओषधियो आदि की जाँच के लिये कुछ लोगो को यहाँ भेजा। इब्न नदीम ने अपनी किताबुलू फेहरिस्त मे, जो सन् ३७७ हि० की लिखी हुई है, इस प्रकार लिखा है-

"अरबो के राज्य के समय भारत के विषयो से जिसने सबसे अधिक हृदय से ध्यान दिया, वह यहिया बिन खालिद बरमकी और दूसरे बरामका लोग है, जिनका यह कार्य और व्यवस्था भारत के विषय में और वहाँ के पंडितो और वैद्यो को भारत से बगदाद बुलवाने के सम्बन्ध से प्रसिद्ध है।"[१]

यदि ये लोग ईरानी अग्निपूजक होते, तो इनके ध्यान और प्रयत्न का केन्द्र भारत के बदले ईरान होना चाहिए था ।

(न) सब से बड़ी बात एक और है। वह यह कि इनके वंश का नाम बरमक है और नौबहार के प्रधान पुजारी की प्रतिष्ठासूचक उपाधि भी बरमक ही है और यह बरमक शब्द संस्कृत के "परमक" से निकला है। डा० जखाऊ, जो स्वयं संस्कृत के पंडित है, कहते है कि संस्कृत मे "परमक" शब्द का अर्थ है-श्रेष्ठ और बड़े पदवाला। हमने भी जब संस्कृत जाननेवाले लोगों से पूछा, तो उन्होंने कहा कि हाँ, यह ठीक है।

[१] किताबुल् फेहरिस्त, पृ० ३४५ (लेपूज़िक सन् १८७१ ई०)

(ट) नौबहार के भवन में जो बहुत बड़ा गुम्बद बना हुआ था उसका नाम भिन्न भिन्न ग्रन्थों में थोड़े थोड़े अन्तर से कई रूपों में लिखा हुआ मिलता है। याकूत की मिस्रवाली

प्रति में उसका नाम "अस्तन" बतलाया गया है। यूरोप की प्रति इस समय मेरे पास नहीं है; पर इब्नुल् फक्तीह की लीडन की छपी हुई जो प्रति इस समय मेरे सामने है उसमें असल पाठ में तो इसका नाम “आसबत" लिखा हुआ है, पर प्रसिद्ध विद्वान् डी गोजी (De Goeje) ने और दूसरी दूसरी प्रतियों के आधार पर उसके नीचे लिखे कई रूप दिए हैं; जैसे अस्तन, अस्त, अस्बत । मेरी समझ में इस शब्द का शुद्ध रूप "आस्तब" है और यह बौद्ध शब्द "स्तूप” का फ़ारसी और अरबी रूप है। सब लोग जानते हैं कि स्तूप बौद्धों का उपासना मन्दिर होता है, जिसमें बुद्ध की राख या समाधि होती है। भारत में भी इस तरह के कई स्तूप निकल चुके हैं और पुरातत्त्ववेत्ताओं ने उनका पूरा पूरा वर्णन किया है। यहाँ भी फ़ारसी के एक शब्द की समानता ने धोखा दिया है। फ़ारसी में "अस्तन" खम्भे को कहते हैं (सं० स्तम्भ) जिसका दूसरा फ़ारसी रूप "सतून" हमारी (उर्दू) भाषा में प्रचलित है। इसी लिये लिखनेवालों ने अपने विचार के अनुसार अस्तब या आस्तब शब्द निरर्थक समझकर उसको फ़ारसी रूप दे दिया है, जिसमें उसका कुछ अर्थ निकलने लगे । लेकिन इससे बढ़कर निरर्थक बात और क्या होगी कि एक गुम्बाद का नाम खम्भा रखा जाय !

हमने इस प्रश्न के एक ही अंग पर बहुत विस्तार से विवेचन किया है। सम्भव है कि लोग कहे कि हमने व्यर्थ ही इस प्रसंग को बहुत बढ़ाया है । पर इतना विवेचन होने पर इस प्रश्न का जो निराकरण होता है, यदि उसके महत्व का विचार क्रिया जाय, तो मेरा यह अपराध बहुत हलका हो जायगा; और पाठक समझ लेंगे कि बरामका लोगों ने अपने मन्त्री होने के समय विद्याओं और कलाओं आदि का प्रयत्न पूर्वक जो प्रचार किया और उनको जो आश्रय दिया, कविता आदि का जो आदर किया और भारत के चिकित्सा और ज्योतिषशास्त्र को अरबी में ले जाने का जो प्रयत्न किया, उसका श्रेय, मेरे ऊपर दिए हुए प्रमाणो के बाद, ईरान के बदले भारतवर्ष को मिल जायगा; और भारत का यह कोई साधारण काम न होगा।

अरबी भाषा की सबसे बड़ी इन्साइक्लोपीडिया या विश्वकोष इब्न फब्लुल्लाह अल् उमरी मिस्री का मसालिकुल् अन्सार फी ममालिकिल् अम्सार नामक ग्रन्थ है, जिसका पहला

खंड अभी हाल में छपा है। उसमें नौबहार का इतिहास और वर्णन इस प्रकार दिया गया है।[१]

"नौबहार को भारत (के राजा) मतोशहर ने बल्ख में बनाया । यहाँ नक्षत्रो की पूजा करनेवाले वे लोग आते थे, जो चन्द्रमा को पूजते थे; और इसके प्रधान पुजारी का नाम बरमक होता था। बादशाह इसका और इसके पुजारी का सम्मान करते थे। फारस के अन्त में यह पद खालिद बिन बरसक के पिता को मिला; और इसी लिये इनको बरामका कहते हैं। यह बहुत ऊँची इमारत थी, हरे रेशमी कपड़े से ढॉकी जाती थी और इसी हरे रेशमी कपड़े के सौ सौ हाथ के झडे उस पर फहराते थे। उस मन्दिर पर यह वाक्य लिखा हुआ है.....।"

इसके आगे वही वाक्य लिखा है, चुका है। उसमे केवल एक अन्तर है। जिसका ऊपर उल्लेख हो वह यह कि इसमे "बुज़्र आसफ" के स्थान पर "सोराश्फ" लिखा है, जो ठीक नहीं है।

[१] **उक्त विश्वकोष, पहला खंड; पृ० २२३ (मित्र) ।**

इस वर्णन में यह कहा गया है कि इस मन्दिर का बनानेवाला भारतीय था; और इससे हमारे कथन के समर्थन में एक और प्रमाण मिलता है। इस वर्णन में नौबहार को चन्द्रमा की पूजा करनेवालों का मन्दिर कहा गया है; लेकिन फिर भी अग्निपूजकों का मन्दिर नहीं कहा गया है। यदि यह चन्द्रमा के उपासकों का मन्दिर था, तो भी इससे भारत की ओर ही संकेत होता है; क्योंकि कुछ लोग कहते हैं कि हिन्दू शब्द का मूल रूप इन्दु है जो चन्द्रमा को कहते हैं; और इसी सम्बन्ध से इस देश का यह नाम पड़ा।[१] यही वह साक्षियाँ हैं, जिन्हें हम अपने कथन के समर्थन में उपस्थित करते हैं। इन साक्षियों से भारत और अरब के विद्या विषयक सम्बन्धों की वह खोई हुई कड़ी मिल जाती है, जिससे बरामका और भारत के विद्या विषयक सम्बन्धों की श्रृंखला बहुत दृढ़ हो जाती है; और यह रहस्य खुल जाता है कि बरामका लोगों की भारत की विद्याओं और कलाओं की ओर क्यों इतना

अधिक अनुराग था; और यहाँ के पंडितों से उनका इतना मेल जोल रखने के क्या कारण हैं।

पिछले प्रकरणमें अरब और भारत के व्यापारिक सम्बन्धों का पूरा विवेचन हो चुका है। पर वास्तविक बात यह है कि भारत और अरब में केवल व्यापार का ही सम्बन्ध, नहीं था, बल्कि और कई उद्देश्यों से भी हिजरी पहली शताब्दी के अन्त में ही लोगों का यहाँ आना जाना आरम्भ हो चुका था। सिन्ध पर आक्रमण करने के समय मुहम्मद क़ासिम (सन् ९६ हि०) जब एक छोटे नगर में पहुँचा, तब उसे पता चला कि यहाँ के निवासी बौद्ध धर्म माननेवाले दो आदमियो को इराक के शासक हज्जाज के पास भेजकर पहले से ही उससे सन्धि कर चुके है और उससे अभयदान प्राप्त कर चुके हैं। इसके बाद जब खिलाफत का केन्द्र शाम से हटकर इराक आ गया, अर्थात् अमवियों की जगह पर अब्बासी लोग इस्लाम के राजसिंहासन पर बैठे, तब सिन्ध और इराक की समीपता ने फारस की खाड़ी में इन दोनो जातियो से मेल का एक नया संगस उत्पन्न कर दिया । सफ्फाह के दो तीन वर्ष के शासन के बाद अब्बासी वंश का दूसरा खलीफा मन्सूर सन् १३६ हि० मे बादशाह हुआ। सन् १४६ हि० में राजधानी का बनना समाप्त हुआ और बग़दाद बसा; और उसके आठ बरस बाद अरब और भारत मे विद्या विषयक सम्बन्धो का नियमित रूप से आरम्भ हुआ।

[1] जुध्दतुस सहायक्फ़ फ़ी स्याहतुल् मश्रारिफ़, जिसका रचयिता नौफ़ल श्राफिन्दी था, (यह उन्हीं दिनों शाम में रहता था और ईसाई विद्वान् था।) पृ० ६३ ।

संस्कृत से अनुवाद का आरम्भ

दूसरी भाषाओ के शास्त्रो आदि का अनुवाद कराने का विचार अरबो मे हिजरी पहली शताब्दी के मध्य मे ही हो चुका था। पर उस समय तक शासन का केन्द्र शाम मे था; इसी लिये यूनानी और सुरयानी भाषाओ की प्रधानता रही। फिर जब इराक से अब्बासी खिलाफत का तख्त बिछा, तब भारत और ईरान की भाषाओ को भी अपने गुण दिखलाने का अवसर मिला। जब मन्सूर के विद्याप्रेम की चर्चा फैली, तब सन् १५४ हि० (सन् ७७१ ई०) में

गणित और ज्योतिष् आदि का एक बहुत बड़ा पंडित अपने साथ सिद्धान्त और कुछ बड़े बड़े पंडितो को लेकर बग़दाद पहुँचा[१] और खलीफा की आज्ञा से दरबार के एक गणितज्ञ इब्राहीम फिजारी की सहायता से उसने अरबी मे सिद्धान्त का अनुवाद किया । [२] यह पहला दिन था कि अरबों को भारत की योग्यता और पांडित्य का अनुमान हुआ। फिर हारूँ ने अपनी चिकित्सा के लिये यहाॅ से वैद्य बुलवाए, जिन्हों ने अरबों पर भारत के विद्या सम्बन्धी महत्व और बड़प्पन की धाक बैठा दी। इसके बाद बरामका लोगों के संरक्षण में संस्कृत के चिकित्सा गणित, ज्योतिष, फलित ज्योतिष, साहित्य और नीति आदि के ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद हुआ। इसने भारत की कीत्ति और प्रसिद्धि को और भी उज्वल कर दिया ।

[१] किताबुलू हिन्द, बैरूनी; पृ० २०८; (लंडन) ।

[२] अखबारुल् हुकमा, किफ़्ती, पृ० १७७ (मिस्त्र) ।

अरबों में भारत की प्रतिष्ठा

यह दिखलाने के लिये कि इन अनुवादों के कारण अरबों के हृदय में भारत के लिये कितना अधिक आदर भाव उत्पन्न हुआ था, मैं पाठकों को अरबी के दो तीन पुराने ग्रन्थकारों के विचार बतलाना चाहता हूँ। इनमें से पहला व्यक्ति जाहिज है। यह बहुत प्रसिद्ध लेखक दार्शनिक और तार्किक था। यह बसरे का रहनेवाला था; इस लिये भारत से भी इसके सम्बन्ध थे ।[१] सन् २५५ हि० में इसका देहान्त हुआ था। इसने एक छोटा निबन्ध इस विषय पर लिखा था कि संसार की गोरी और काली जातियों में से कौन बढ़कर है। वह अपना निर्णय काली जातियो के पक्ष में देता है। इस सम्बन्ध में वह कहता है-

"परन्तु हम देखते हैं कि भारत के निवासी ज्योतिष् और गणित में बढ़े हुए हैं और उनकी एक विशेष भारतीय लिपि है। चिकित्सा में भी वे आगे हैं और इस शास्त्र के वे कई विलक्षण भेद जानते हैं। उनके पास भारी भारी रोगों की विशेष औषध होती हैं। फिर मूर्तियाँ बनाने, रंगों से चित्र बनाने और भवन आदि बनाने में भी वे लोग बहुत अधिक योग्य होते

हैं। शतरंज का खेल उन्हीं का निकाला हुआ है, जो बुद्धिमत्ता और बिचार का सब से अच्छा खेल है।

[1] **इब्न खलकान में अमरू बिन जहरुल्जाहिज़ का विवरण ।**

वे तलवारें बहुत अच्छी बनाते हैं और उनके चलाने के करतब जानते हैं। वे विष उतारने और पीड़ा दूर करने के मन्त्र जानते हैं। उनका संगीत भी बहुत मनोहर है। उनके एक साज का नाम "कंकलः" (?) है, जो कद्दू पर एक तार को तानकर बनाते है और जो सितार के तारो और झॉझ का काम देता है। उनके यहाँ सब प्रकार का नाच भी है।. उनके यहां अनेक प्रकार की लिपियां हैं। कविता का भंडार भी है और भाषणो का अंश भी है। दर्शन, साहित्य और नीति के शात्र भी उनके पास है। उन्ही के यहां से कलेला दमना नामक पुस्तक हमारे पास आई है। उनमे विचार और वीरता भी है; और कई ऐसे गुण है जो चीनियों मे भी नहीं हैं। उनके स्वच्छता और पवित्रता के भी गुण है। सुन्दरता लावण्य, सुन्दर आकार और सुगन्धियाँ भी हैं। उन्हीं के देश से बादशाहो के पास वह ऊद या अगर की लकड़ी आती है, जिसकी उपमा नही है।

विचार और चिन्तन की विद्या भी उन्ही के पास से आई हैं। वे ऐसे मन्त्र जानते हैं कि यदि उन्हे विष पर पढ़ दें तो विष निरर्थक हो जाय। फिर गणित और ज्योतिष विद्या भी उन्ही ने निकाली है। उनकी स्त्रियो को गाना और पुरुषो को भोजन बनाना बहुत अच्छा आता है। सर्राफ और रुपये पैसे का कारवार करनेवाले लोग अपनी थैलियाँ और कोष उनके सिवा और किसी को नहीं सौंपते । जितने (इराक में) सर्राफ है, सब के यहाँ खजानची खास सिन्धी होगा या किसी सिन्धी का लड़का होगा; क्योकि उनमे हिसाब किताब रखने और सराफी का काम करने का स्वाभाविक गुण होता है। फिर ये लोग ईमानदार और स्वामिनिष्ठ सेवक भी होते है ।[1]

[1] **रिसाला फखरुस्सूदान अलल् बैजान जाहिज़; मजमूआ रसायल**

जाहिज पृ० ८१ (सन् १३२४ हि० से मित्र का छपा हुआ)।

दूसरा व्यक्ति याकूबी है; जो यात्री, इतिहास-लेखक और विद्वान भी था। कहते हैं कि यह भारतवर्ष में भी आया था सन् २७८ हि० के लगभग इसका देहान्त हुआ था। यह अपने इतिहास में भारत का कहानी सा जान पड़नेवाला इतिहास लिखकर कहता है-

"भारतवर्ष के लोग बुद्धिमान् और विचारशील हैं; और इस विचार से वे सब जातियों से बढ़कर हैं। गणित और फलित ज्योतिष् में इनकी बातें सब से अधिक ठीक निकलती हैं। सिद्धान्त उन्हीं की विचारशीलता का परिणाम है, जिससे यूनानियों और ईरानियों तक ने लाभ उठाया है। चिकित्सा शास्त्र में इनका निर्णय सब से आगे है। इस विद्या पर इनकी पुस्तक चरक और निदान है। चिकित्सा- शास्त्र की इनकी और भी कई पुस्तकें हैं। तर्क और दर्शन में भी इनके रचे हुए ग्रन्थ हैं और इनकी बहुत सी रचनाएँ हैं, जिनका बहुत बड़ा विवरण है।"[१]

तीसरा वर्णन अबूजैद सैराफी का है, जो हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त में था। वह लिखता है-

"भारत के विद्वान् लोग ब्राह्मण कहलाते हैं। उनमें कवि भी हैं, जो राजाओं के दरबारों में रहते हैं; और ज्योतिषी, दार्शनिक, फाल खोलनेवाले और इन्द्रजाल जाननेवाले लोग भी हैं। ये लोग क्रन्नौज में बहुत हैं, जो जौज के राज्य में एक बड़ा नगर है । (पृ० १२७)

तात्पर्य यह कि खलीफा मन्सूर और हारूँ रशीद के संरक्षणों और बरामका की गुणग्राहकता और उदारता के कारण भारत के बीसियों पंडित और वैद्य बग़दाद पहुँचे और राज्य के चिकित्सा तथा विद्या विभागों में काम करने लगे। उन लोगो ने गणित और फलित ज्योतिष, चिकित्सा, साहित्य और नीति के बहुत से ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद किया। दुःख यह है कि उन पंडितो के भारतीय नाम अरबी रूप में जाकर ऐसे बदल गए हैं कि आज ग्यारह बारह सौ बरसो के बाद उनका ठीक ठीक रूप और उच्चारण समझना एक प्रकार से असम्भव सा हो गया है। कदाचित् इसका एक कारण यह भी है कि मेरे विचार

से इनमें से अधिक लोग बौद्धधर्म के अनुयायी थे; और उस समय के नामो के ढंग से आजकल के वैदिक नामो के ढंग से बिलकुल अलग है। फिर इनमे से कुछ नाम ऐसे भी हैं जो नाम नहीं, बल्कि उपाधि हैं। इन भारतीय नामो की अरबी में ठीक वैसी ही काया पलट् हो गई है, जैसी अरबी नामो की युरोप की भाषाओ में हो गई है।

[१] तारीखे इब्न बाज़अ याकूबी, दूसरा खंड; पृ० १०५ (लीडन)।

पंडितों और वैद्यों के नाम

जो हो, अरबा के लेखो मे भारत के जिन पंडितो और वैद्यों के नाम आए हैं, वे इस प्रकार हैं-बहला, मनका, बाजीगर (विजय कर?) फलबरफल (कल्पराय कल?) सिन्दबाद । ये सब नाम जाहिज (सन् २५५ हि०) ने दिए है और इतने नाम लिखकर औरो के नाम के लिये आदि आदि लिखकर छोड़ दिए हैं; और लिखा है कि इनको यहिया बिन खालिद बरमकी ने भारत से बग़दाद बुलवाया था। ये सब चिकित्सक और वैद्य थे ।[१]

इब्न अबी उसैबअ ने उन वैद्यो में से मनका और बहला के बेटे का, जो शायद मुसलमान हो गया था जिसका नाम सालह था, उल्लेख किया है। इब्न नदीम ने एक और नाम इब्न दहन लिखा है; और यही तीनो बग़दाद मे उस समय के प्रसिद्ध वैद्य थे। एक दूसरे स्थान पर उन भारतीय पंडितो के नाम दिए गए हैं जिनके चिकित्सा और ज्योतिष के ग्रन्थों का अरबी में अनुवाद हुआ था। वे नाम इस प्रकार हैं-बाखर, राजा, मनका, दाहर, अनकू, जनकल, अरीकल, जब्भर, अन्दी, जबारी ।[१]

[१] किताबुल् बयान पृ० ४० (मित्र) ।

मनका

इब्न अबी उसैबअ ने अपनी तारीखुल् अतिब्बा में लिखा है कि यह व्यक्ति चिकित्सा शास्त्र का बहुत बड़ा पंडित था। एक बार हारूँ रशीद बहुत बीमार पड़ा। बगदाद के सब

चिकित्सक उसकी चिकित्सा कर के हार गए। तब एक आदमी ने भारत के इस चिकित्सक का नाम लिया। यात्रा का व्यय आदि भेजकर यह बुलया गया। इसकी चिकित्सा से खलीफा अच्छा हो गया। खलीफ़ा ने इसको पुरस्कार आदि देकर मालामाल कर दिया। फिर यह राज्य के अनुवाद विभाग में संस्कृत पुस्तकों के अनुवाद का काम करने के लिये नियत किया गया।[२] क्या हम इस मनका नाम को माणिक्य समझें?

सालेह बिन बहला

यह भी भारतीय चिकित्साशास्त्र का पंडित था। इब्न अबी उसैबअ ने इसको भी भारत के उन्हीं विज्ञ चिकित्सकों में रखा है, जो बग़दाद में थे। एक अवसर पर जब खलीफा हारूँ रशीद के चचेरे भाई को मूर्च्छा या मिरगी का रोग हो गया और दरबार के प्रसिद्ध यूनानी ईसाई चिकित्सक जिबरईल बनतीशू ने कह दिया कि यह अब नहीं बच सकता, तब जाफर बरमकी ने इस भारतीय चिकित्सक को उपस्थित किया और कहा कि इसी का इलाज होना चाहिए। खलीफा ने मान लिया; और इसने बड़े मार्के की चिकित्सा की ।[१]

[१] फ़ेहरिस्त इब्न नदीम चिकित्सा और ज्योतिषु के ग्रन्थों का प्रकरण ।

[२] तारीख़ुल् अतिब्बा; दूसरा खंड; पृ० ३३ (मित्र) और फेहरिस्त इब्न नदीम; पृ० २४५।

इब्न दहन

यह बरमकियों के चिकित्सालय का प्रधान था और उन लोगों मे से था, जो संस्कृत से अरबी मे अनुवाद करने के काम पर लगाए गए थे।[२] प्रोफेसर जखाऊ ने "इंडिया" नामक ग्रन्थ की भूमिका में इस दहन नाम का मूल रूप जानने का प्रयत्न किया है। उनकी जाँच का फल यह है कि यह नाम धन्य या धनन होगा। यह नाम कदाचित् इस लिये रखा गया

हो कि यह धन्वन्तरि शब्द से मिलता जुलता है, जो मनु के धर्मशास्त्र मे देवताओ का वैद्य बतलाया गया है।[३]

संस्कृत से अरबी में नीचे लिखी विद्याओ और शास्त्रो की पुस्तको का अनुवाद किया गया था - गणित ज्योतिषु, फलित ज्योतिष, चिकित्सा, नीति सम्बन्धी कथाएँ, राजनीति, खेल और तमाशे ।

गणित

अरबवाले स्पष्ट रूप से कहते हैं कि उन्होने १ से ९ तक के अंक लिखने का ढंग हिन्दुओ से सीखा,[४] और इसी लिये अरबवाले अंको को हिन्दसा और इस प्रणाली को हिसाब हिन्दी या हिन्दी हिसाब कहते हैं। यह प्रणाली अरबों से युरोप की जातियों ने सीखी थी, इसी लिये उनकी भाषाओ में इसका नाम अरब के अंक (Arabic Figures) है। उस ठीक समय का पता तो नहीं चलता जिस समय अरबों ने यह ढंग हिन्दुओं से सीखा था, पर समझा यही जाता है कि सन् १५६ हि० में सिन्ध से जो पंडित सिद्धान्त लेकर मन्सूर के दरवार में बग़दाद गया था, उसीने अरबों को यह ढंग सिखलाया था। मेरी समझ से ठीक बात यह है कि जिस सिद्धान्त का अनुवाद हुआ था, उसीके "तेरहवें और चौबीसवें प्रकरण में गणित और अंकों का उल्लेख है; और उसीके द्वारा यह ढङ्ग अरवों में चला था। अरवी में पहले अक्षरों में संख्याएँ लिखते थे । फिर यहूदियों और यूनानियों की तरह अबजद के ढंग से (जिसमें अ से १, ब से २, ज से ३, आदि का बोध होता है) संख्याएँ लिखने लगे थे। अब भी अरबों ज्योतिष में संक्षेप और शुद्ध लिखने के विचार से यही ढंग चलता है; और इसी ढंग से अरबी फारसी आदि में तिथि और सन् संवत् आदि लिखने की प्रथा है।

जो हो, पहले मुहम्मद बिन मूसा ख्वारिज्मी ने इस भारतीय हिसाव को अरबी साँचे में ढाला।[७] इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के ग्यारहवें संस्करण (Encyclopædia Britannica, XI Ed.) में अंको (Numeral) पर जो निवन्ध (उन्नीसवाँ खंड, पृ० ८६७) है, उसमें पुराने लेखों और हस्तलिखित पुस्तकों से लेकर पूर्वी अरबी, पश्चिमी अरबी और युरोप के अंकों के रूप लेकर दिए गए हैं। उसे एक ही बार देखने से पता लग सकता है कि हिसाब रखने का

यह ढंग भारत से चलकर अरब के रास्ते किस प्रकार आगे बढ़ा। अरबी मे मामूँ रशीद के दरबारी ज्योतिषी ख्वारिज्मी (सन् ७८०-८४० ई०) ने इन अको के स्वरूप ठीक किए, और वही रूप अन्दलुस के मार्ग से युरोप पहुँचे । युरोप से गणित की एक विशेष शाखा को एलगोरिथ्म, एलगोरिटेम और एलगोरिज्म (Algo- rithm, Algoritems, Algorism) कहते हैं। ये सब इसी अलखत्रारिज्मी के बिगड़े हुए रूप है।[५] अन्दलुसवाले इन्ही भारतीय अंको को हिसाबुल् गुबार कहते हैं (इसे संस्कृत मे धूलि-कर्म कहते हैं।) यह कदाचित् इस लिये कि हिन्दू लोग अपनी यह प्रणाली, जैसा कि अब तक देहाती पाठशालाओ मे दस्तूर है, जमीन या धूल पर लिखकर सिखाते थे । युरोप के अंक इन्ही "गुबारी" अंको से निकले हुए हैं।

[१] तारीख़ुल् अतिब्बा; दूसरा खंड, पृ० ३५ (मित्र) ।

[२] फ़ेहरिस्त इब्न नदीम, पृ० २४३ ।

[३] उक्त ग्रन्थ के अगरेज़ी अनुवाद की भूमिका, पृ० ३३ ।

[४] रसायल अखवानुस्सफा जो चौथी शताब्दी मे रचे गये थे। फ़स्ल फी मार्फत बिदायतुल् हरूफ व खुलासतुल् हिसाब बहाउद्दीन भामिली कृत (कलकत्ते का छपा हुआ) और मौलवी इस्मनुल्लाह कृत उसकी टीका और करफ़ुज़जुनून (चलपी) थौर मिलताहुस सयादत ताश्करीजादा इल्सुल् हिसाव धौर किताबुल्हिन्द बैरूनी पृ० ६३ (लन्दन में प्रकाशित)।

[७] तयकातुल् उममः; साइद अन्दलसी पृ० १४ (बेरूत) ।

[५] इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका १६ वाँ खंड; पृ० ८६७ ; दूसरा कालम

ये अंक अरब के नहीं, बल्कि बाहर के हैं, इसका एक प्रमाण यह भी है कि अरबी लिपि लिखने के ढंग के बिलकुल विपरीत ये बॉए से दहिने लिखे जाते हैं, लेकिन अरबवाले इन्हे पढ़ने के समय दाहिने से बाँए पढ़ते हैं। इब्न नदीम ने इन भारतीय अंको का सिन्धी अंक कहकर उद्धत किया है और हज़ार तक लिखने का ढंग बतलाया है। इससे यह भी पता चलता है कि अरबी मे यह ढंग सिन्धी पंडितो के द्वारा चला था।

अलख्वारिज्मी के बाद, जिसका समय हिजरी तीसरी शताब्दी और ईसवी नबी शताब्दी का आरम्भ है, मुसलमानो में भारतीय गणित का प्रचार करनेवाला दूसरा आदमी अली बिन अहमद नसवी (सन् ९८०-१०४० ई०) है, जिसने अलमुकन्नअ फिल् हिसाबिल हिन्दी (भारतीय गणित में कामना पूरी करनेवाली पुस्तक) लिखी। इसके बाद इस विषय की और भी पुस्तकें लिखी गई, यद्यपि इससे बहुत पहले अलख्वारिज्मी के ही समय में यूनानियों की अस्मातीकी (Arithmetic या गणित) अरबी भाषा में लिखी जा चुकी थी।[१] लेकिन फिर भी भारतीय गणित की प्रतिष्ठा और आदर में कोई कमी नहीं हुई। लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि भारतीय गणित सर्व साधारण में भी चल पड़ा था। प्रसिद्ध मुसलमान हकीम और दार्शनिक बूअली सैना (सन् ४२८ हि०) १०१५ ई०) ने लड़कपन में यह भारतीय हिसाब एक कुँजड़े से सीखा था, जो उसका बहुत अच्छा जानकार था।[२]

गणित और फलित ज्योतिष्

ऊपर कहा जा चुका है कि सन् १४५ हि० (सन् ७७० ई०) के लगभग सिन्ध से जो डेपुटेशन बग़दाद गया था,[३] उसके साथ - एक पंडित गणित ज्योतिष की एक पुस्तक लेकर गया था। संस्कृत में इस पुस्तक का पूरा नाम बृहस्पति सिद्धान्त है, जो अरबी में अस्सिंद हिन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद संस्कृत की एक दूसरी पुस्तक का अरबी से अनुवाद हुआ, जिसका अरबी नाम अरज- बन्द है और जिसका शुद्ध संस्कृत रूप आर्यभट्ट है । इसके बाद संस्कृत की तीसरी पुस्तक का अरबी मे अनुवाद हुआ, जिसका अधिक प्रसिद्ध नाम "अरकन्द" और कम प्रसिद्ध नाम "अहरकन" है और जिसका असल संस्कृत नाम खंडन खाद्यक है। जिस भारतीय पंडित के द्वारा पहले ग्रन्थ सिद्धान्त का सन् १५४ हि० मे अरबी मे अनुवाद हुआ था, बगदाद में दो अरव उसके शिष्य हुए थे। उनमे से एक का नाम इब्राहीम फिजारी है और दूसरे का याकूब बिन तारिक । इन दोनो ने सिद्धान्त को अरवी रूप दिया।

हिन्दुओ मे ग्रहो का जो आधार समय का विभाग है, जिसको संस्कृत मे अपने अपने ढंग से विभाग है, उसका "कल्प" कहते हैं। दूसरी पुरानी जातियो की तरह इनका भी

यही विश्वास था कि चन्द्र, सूर्य, शनि, बृहस्पति आदि सातो सितारे, जिनको अरब लोग "सबअ (सात) सैयारा" कहते हैं, सब के सब एक समय मे गोलसन्धि मे (जहाँ नाड़ी वृत्त, क्रान्तिवृत्त, पूर्वापरवृत्त और क्षितिजवृत्त इन चारो का सम्पात होता है) एक साथ उत्पन्न हुए और एक साथ उनकी गति आरम्भ हुई। अब यह अपनी अपनी चाल चल रहे है। फिर करोड़ो बरसों के बाद जब यह सातो उसी गोलसन्धि नामक विन्दु पर एकत्र हो जाते हैं, तब प्रलय होकर संसार का नाश हो जाता है और वह फिर से बनता है और फिर उससे गति का आरम्भ होता है। इन दोनो के बीच मे ज्योतिष के अनुसार जितने सौर वर्ष होते है, उन सब की संख्या का नाम "कल्प है। ब्रह्मगुप्त के हिसाब से एक कल्प मे ४ अरब, ३२ करोड़ वर्ष होते है, और फिर इन्ही से दिनो का हिसाब लगाया जा सकता है। अरबो ने इसी कल्प का नाम “सनी उस्सिद हिन्द" सिद्धान्त के वर्ष और दिनो का नाम "अय्यामुस्सिद हिन्द" रखा ।

[१] अँगरेज़ी ने इस विपय की सबसे अच्छी जानकारी एच० सुटर (H. Suter) साहब के "गणित" नामक निबन्ध में इन्साइक्लोपीडिया आाफ़ इस्लाम के खन्ड २२ (सन् १६१६ ई०) के पृ० ३१५ में है। अरबी में मुहम्मद बिन अहमद ख्वारिज्मी (सन् ३८१ हि०) की पुस्तक मफातीहुल उलूम में हिसाबुलू हिन्द के शीर्षक से दो तीन पृष्ठों में इसका विवरण है। देखो उसका पृ० १६३ (सन् १८६५ में लीडन में प्रकाशित) ।

[२] उयूनुल् अम्बा दूसरा खंड; पृ० २ (मित्र) ।

[३] तबकातुल् उमम; साइद अन्दलसी; पृ० ४६ (वेरूत)।

अरबों और करोड़ों बरसों का हिसाब लगाना बहुत कठिन होता था, इस लिये ईसवी पॉचवीं शताब्दी के अन्त में आर्यभट ने सरलता के विचार से कल्प के कई हजार भाग कर लिए और उसीके अनुसार गणना स्थापित की। इन्हीं भागों का नाम युग और महायुग है। इस सिद्धान्त का आर्यभट का जो ग्रन्थ है, उसको अरब लोग "अरजबहर" या "अरजबहज़" और युग को "सनी अरजबहज" अर्थात् आर्यभट के वर्ष कहने लगे। अरबों ने अस् सिंद हिन्द

और अरजबहर के असल संस्कृत अर्थ समझने में यह भूल की कि उन्होंने समझा कि इनसे इसी सिद्धान्त का अभिप्राय है। इस लिये उन्होंने भूल से अलसिंद हिन्द का अर्थ "अदूदहरुदाहर" अर्थात् अनन्त काल और अरजबज का अर्थ हजारवाँ भाग मान लिया। इस अन्तिम पुस्तक का अबुल्सन अहवाजी ने अरबी में अनुवाद किया था।

याकूब बिन तारिक ने सन् १६१ हि० में इसी पंडित से या और किसी आनेवाले पंडित से अरकन्द अर्थात् खंड या खंडीक की पद्धति सीखी । यह भी ब्रह्मगुप्त की ही रचना है; पर इसकी कुछ बातें सिद्धान्त से अलग हैं।

आरम्भ के अरब ज्योतिषियों में इन तीनों पुस्तकों में से सिद्धान्त का अधिक प्रचार हुआ। यद्यपि इसके कुछ ही दिनों बाद यूनानी बतलीमूस की "मजिस्ती" नामक पुस्तक का अरबी में अनुवाद हो गया; और मामू रशीद के समय में रसदखाना या वेधशाला भी बन गई और बहुत सी नई बातों का भी पता लग गया; लेकिन फिर भी बहुत दिनों तक अरब ज्योतिषी बगदाद से लेकर स्पेन तक इसी भारतीय सिद्धान्त के पीछे लगे रहे। उन्होंने इसके संक्षिप्त संस्करण बनाए, इस पर टीकाएँ लिखीं, इसकी भूलें सुधारों, इसमें नई बातें बढ़ाई आदि आदि । हिजरी पॉचवीं शताब्दी (ईसवी ग्यारहवीं शताब्दी) अर्थात् बैरूनी के समय तक यह क्रम चलता रहा।

मामूँरशीद के समय में ख्वारिज्मी ने जो सूची बनाई, उसमें भी यूनानी और ईरानी सिद्धान्तों की वृद्धि के साथ साथ मूल भारतीय सिद्धान्तो को भी उसने रहने दिया; और इसी लिये अपनी पुस्तक का नाम असू सिंद हिन्दुस् सगीर (अर्थात् छोटा सिद्धान्त) रखा।[१] इसी प्रकार हसन बिन सब्बाह, हसन बिन खसीब, फजल बिन हातिम तबरेजी, अहमद बिन अब्दुल्लाह मरूजी, इब्नुल अद्दमी, अन्दुल्लाह और अबू रैहान बैरूनी ने हिजरी तीसरी, चौथी और पॉचवी शताब्दी मे सिद्धान्त के संशोधन और पूर्ति के सम्बन्ध में बहुत कुछ काम किया और यूनानी सिद्धान्तों तथा अपनी निजी जॉच के साथ वे इसमे पैवन्द भी लगाते रहे ।

स्पेन मे सिद्धान्त की मुख्य मुख्य बाते हिजरी चौथी शताब्दी मे पहुँची। मुसलिमा बिन अहमद मजरीती (मजरीति या मेड्रिड के निवासी ; मृत्यु सन् ३९८ हि०; १००७ ई०) ने ख्वारिज्मी की सिंदहिन्द सगीर का संक्षेप किया। फिर स्पेन के अबुलकासिम असबग उपनाम बेह इब्नुससमह (मृत्यु सन् ४२६ हि०; १०३५ ई०) ने सिद्धान्त पर एक बहुत बड़ी टीका तैयार की। फिर अपना अपना पांडित्य दिखलाने के लिये लोग नई नई बाते ढूँढकर सिद्धान्त मे - बतलाई हुई बातो के परिणाम भी निकालते थे; जैसा कि स्पेन के इब्राहीम जरकाली ने इस्तरलाब या नक्षत्र-यन्त्र विषय की "सफह जरकालिया" नामकी पुस्तक में किया है। स्पेन के इन्ही अरबो के द्वारा सिद्धान्त का यह ग्रन्थ यहूद तक और फिर वहाँ से युरोप तक पहूँचा; और यूनानी विद्वान इब्राहीम बिन अजरा ने अपनी इब्रानी रचनाओ मे सिद्धान्त की कुछ बातो पर टिप्पणियों तैयार की।[२]

[१] किफ्ती पृ० १७८ (मित्र) ।

[२] सिधा हिन्द, अरजबहिन्द और अरकन्द का उल्लेख फेहरिस्त इब्न नदीम, मसऊदी किफ्ती और किताबुलू हिन्द, बैरूनी सभी मे है; और ये

अरबी में संस्कृत के पारिभाषिक शब्द

अरबों की ज्योतिष विद्या उनकी नई नई जाँचों और अन्वेषणों के कारण उन्नति की बहुत सी सीढ़ियाँ चढ़ी, फिर भी संस्कृत की एक त्याज्य और दो दूसरी ऐसी परिभाषाएँ उसमें रह गई हैं, जो अब तक यह बतलाती हैं कि अरबों में यह ज्योतिष विद्या किस मार्ग से आई । सिद्धान्त आदि नामों के सिवा अरबी ज्योतिष में संस्कृत का एक पुराना पारिभाषिक शब्द "कर्दजः" है, जिसका मूल संस्कृत रूप क्रमज्या है। अब इस कर्दजः शब्द का व्यवहार बहुत कम रह गया है, और बाद में अरबी में उसके लिये पारिभाषिक शब्द "वतर मुस्तवी" बना लिया गया है। दूसरा बचा हुआ पारिभाषिक शब्द, जिसका आज तक अरबी गणित और त्रिकोणमिति में व्यवहार होता है, "जैब” शब्द है, जिसे लोग भूल से अरबी का वही "जैब" समझते हैं, जिसका अर्थ पहनने के कपड़े में गला होता है।[१] यह

संस्कृत शब्द "जीवा" (ज्या) का अरबी रूप है। फिर इसी जेब शब्द से जेबुल् तमाम, जयूब मन्कूसः, जयूब मब्लूतः और मजीब आदि पारिभाषिक शब्द बने हैं, और इस प्रकार कट छुटकर अरबी साँचे में ढल गए है कि आज इनके सम्बन्ध मे इस बात का सन्देह भी नहीं हो सकता कि ये अरबी के सिवा किसी और भाषा से आए हुए शब्द से बने है।

सभी पुरतके मेरे सामने है, पर मिस्र के विश्वविद्यालय में सीनियर कोलो नलनियो नामक एक प्रसिद्ध इटालियन विद्वान् ने अरबों की ज्योतिषु विद्या के इतिहास पर चरबी में बहुत ही गवेषणापूर्ण व्याख्यान दिए थे। ये सब बातें उन्हीं व्याख्यानों में से अंक २१, २२ और २३ के व्याख्यानों मे से ली गई हैं। इनके सिवा साइद अन्दलसी के तबकातुल् उमम (बैरूत में प्रकाशित) के ५० वें पृष्ठ से से भी कुछ बातें लेकर बढाई, हैं।

[१] जैब शब्द का मुख्य अर्थ यही है। पहले अरबवाले कुरतों में गले के पास ही थैली भी लगाते थे जो अब बगल में या सामने छाती पर होती है और जेब कहलाती है। -अनुवादक

आखिरी शब्द "ओज" है जो ज्योतिष की परिभाषा मे ऊँचाई मे सब से ऊँचे विन्दु का नाम है। यह संस्कृत का "उच्च" शब्द है, जो अरबी मे जाकर "ओज" हो गया है।[१] बहुत दिनो से अरबी, फारसी और फिर उदू मे इस "ओज" शब्द का इतना अधिक व्यवहार होता है कि किसी को इसके भारतीय या संस्कृत होने का सन्देह कभी नहीं होता। यही कारण है कि शुद्ध अरबी शब्दो के कोपो में भी इसकी यह व्युत्पत्ति नही मिलती। इसकी बिलकुल ठीक ठीक उपमा अरबी के "जिन्स" शब्द के साथ दी जा सकती है, जो यूनानी शब्द "जीनस" का अरबी रूप है। लेकिन अरबी मे आकर यह जिन्स हो गया है, जिससे "मजानिसत" और "तजनीस" आदि कई रूप बन गए हैं, जो सब के सब प्रचलित हैं। लेकिन पुरानी अरबी में इस शब्द का कही पता नही चलता ।

ऐसे दो और भी शब्द है जो उल्लेख कर देने के योग्य हैं। हिन्दू विद्वानो ने नक्षत्रो की गति में याम्योत्तर रेखा का हिसाब लगाया था, जो पृथ्वी के बीचोबीच से उत्तर दक्षिण

जाती है। उनके विचार से बस्ती का यह आधा हिस्सा या मध्य भाग लंका टापू था, जिसे अरब लोग सरन्दीप कहते हैं और जो अब सीलोन कहलाता है। हिन्दुओ का विचार था कि लंका भूमध्य रेखा पर है। जिस विन्दु पर याम्योत्तर रेखा और भूमध्य रेखा दोनों आपस में एक दूसरे को काटती हैं, उसे अरब लोग कुब्बतुल अर्ज कहते हैं, जिसका अर्थ होता है पृथ्वी का गुम्बद । भारतवासी भूगोल में देशान्तर का हिसाब इसी लंका की भूमध्य रेखा से लगाते थे, और इसी लिये आरम्भिक अरब भूगोल-लेखकों ने लंका को कुब्बतुल अर्ज या पृथ्वी का गुम्बद कहा है।

[१] कुछ लोगों का मत है कि यह फारसी के "ओग" शब्द से निकला है, जैसा कि ख़्वारिज्मी ने मफ़ातीहुल उलूम पृ० २२१ (लीडन) में लिखा है; और असदी तूसी के प्राचीन फारसी कोप मे भी यह शब्द है। पर समझा यह जाता है कि स्वयं फ़ारसी मे भी यह शब्द संस्कृत से ही गया है।

भारतवासी यह समझते थे कि जो याम्योत्तर रेखा लंका में है, वही उज्जयिनी (मालवा की नगरी) से भी होकर जाती है; इस लिये सिद्धान्त में इसी उज्जयिनी से देशान्तर का हिसाब लगाया गया है। इसी लिये वे भी उज्जैन से देशान्तर का हिसाब निकालने लगे । अरबों ने इस उज्जैन को अपने उच्चारण के अनुसार "उजैन" कहा; और यह समझा कि यह "उजैन" ही पृथ्वी का गुम्बद या कुब्बतुल अर्ज है। फिर उजैन के "जे" अक्षर पर का विन्दु उड़ गया और वह "उरैन" हो गया; और यहीं से यही परिभाषा उत्पन्न हुई कि "उरैन" प्रत्येक माध्यमिक स्थिति का नाम है, जैसा कि प्रसिद्ध मुसलमान दार्शनिक शरीफ़ जुरजानी ने अपनी परिभाषाओंवाली पुस्तक "किताब तारीफ़ात" में लिखा है।' अरब के पुराने ज्योतिषियों ने एक और शब्द "बजमासः" का व्यवहार किया है। यह संस्कृत के "अधिमास" शब्द से निकला है, जिसका अर्थ अधिक मास या वह चन्द्रमास है, जो दो संक्रान्तियों के बीच में पड़ता है ।

[१] देखो उक्त व्याख्यान पृ० १५५-१६८ और टिप्पणियाँ । साथ ही देखो "सवाउस् सवील (मि० आर्नल्ड) से जेब" और "ओज" और तारीफ़ जुरजानी पृ० ७ (सन् १३०६ हि० में मिस्र में प्रकाशित ।)

कुछ लोग भूल से यह समझते हैं कि अरबी में गणित और अंकों या उनके सांकेतिक चिह्नो का जो हिन्दसा कहते हैं, उसका कारण भी यही है कि इनका हिन्द अर्थात् भारत से सम्बन्ध है। और आश्चर्य है कि विशेष विद्वत्ता होने पर भी एक अँगरेज विद्वान् भी जिसने मूसा ख्वारिज्मी की किताबुल् जन वल् मुकाबिला सन् १८३१ ई० मे लन्दन से प्रकाशित की है और जिसका नाम फ्रेडरिक रोसन (F. Rosen) है, इसी भ्रम में पड़ना चाहता है।[१] वास्तव मे यह फारसी का "अन्दाजा" शब्द है, जिसे यह अरबी रूप दिया गया है और जिसका अरबी में क्रिया का रूप "हन्दजः" और "इन्दसः" है। वास्तव मे यह इंजीनिरिंग या वास्तुविद्या के अर्थ मे है। पीछे से लोग भूल से फारसी और उर्दू मे "हिन्दसः” बोलने लगे और इससे संख्या आदि का अर्थ लेने लगे। और नही तो शुद्ध शब्द "हिन्दसः " नहीं, बल्कि "हन्दसः" है। इसी लिये अरबी मे "मुहन्दिस" इंजीनियर को कहते हैं, गणित जानने वाले को नहीं कहते ।

हिन्दू और आजकल की दो जाँचें

अरबो ने भारतीय ज्योतिषशास्त्र के जो सिद्धान्त अपने यहाँ लिए है, उनमे से दो बातें ऐसी हैं जो आजकल की जाँच में भी ठीक उतरी है। ब्रहमगुप्त ने वर्ष के ३६५ दिन, ६ घंटे, १२ मिनट और ९ सेकेड निश्चित किए है; और आजकल की जाँच से ३६५ दिन, ६ घंटे ९, मिनट ९६० सेकेड है। इसी प्रकार पृथ्वी की गति का प्रश्न है। आर्यभट और उसके पक्ष के लोग यह मानते थे कि पृथ्वी घूमती है; और इस सम्बन्ध में आर्यभट पर जो आपत्तियाँ की जाती हैं, ब्रहमगुप्त ने कहा है कि वे आपत्तियाँ ठीक नहीं हैं। और यही सिद्धान्त आजकल भी ज्यों का त्यों लोगों में माना जाता है।

[१] अल्जब वल् मुकाबिला; ख़्वारिज़्मी; अँगरेज़ी भूमिका पृ० १६६- ६६ (१८३१ लन्दन)।

[२] मफ़ातीहुत् उलूम, मुहम्मद ख़्वारिज़्मी; पृ० २०२ (लीढन) ।

चिकित्सा-शास्त्र

भारतवर्ष से अरबों को जो तीसरी विद्या मिली, वह चिकित्सा की है। चिकित्साशास्त्र की कुछ पुस्तकें उम्बी वंश के ही समय में सुरयानी और यूनानी भाषाओं के द्वारा अरबी भाषा में आचुकी थीं।[१] पर जब इराक में अब्बासी वंश का राज्य हुआ, तब इस विषय में और भी उन्नति हुई; और इसका आरम्भ, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस प्रकार हुआ कि हारूँ रशीद की चिकित्सा करने के लिये भारत से मनकः (माणिक्य) नामक वैद्य बुलवाया गया; और उसके इलाज से खलीफा अच्छा हो गया। इस प्रकार भारतीय चिकित्सा की ओर राज्य का ध्यान गया; और बरामका ने उसके प्रचार में बहुत कुछ काम किया। यहाँ तक कि बरामका ने अपने चिकित्सालय का प्रधान एक वैद्य ही बनाया था।[२] यहिया बिन खालिद बरमकी ने भेजा कि वह जाकर भारत की उन्होंने केवल यही नहीं किया, बल्कि अपना एक आदमी इस लिये भारत जड़ी बूटियाँ लावे ।[३] और एक वैद्य को सरकारी अनुवाद विभाग में इस लिये नियुक्त किया कि वह संस्कृत की चिकित्सा सम्बन्धी पुस्तकों का अरबी में अनुवाद करावे ।[४]

[१] उयूनुल् अम्बा फी तबकातुल् श्रतिब्या; तजकिरा मआसिर जवीययः

और मुख्तसरुद् दवल अनुल्फरज मलती; पृ० १६२ (बैरुत) ।

[२] फ्रेहरिस्त इब्न नदीम; पृ० २४५ ।

[३] उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ ।

[४] उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ ।

इसी प्रकार खलीफा मवफ्फिक बिल्लाह अब्बासी ने भी हिजरी तीसरी शताब्दी मे इस लिये कुछ आदमी भारत भेजे थे कि वे भारत की दवाओ की जाँच करें।[१] यह घटना जखाऊ ने इण्डिया की भूमिका में लिखी है; पर अरबी इतिहासो मे इस घटना पर स्वयं मेरी दृष्टि नहीं पड़ी है। हाँ, प्रसंगवश एक स्थान पर यह उल्लेख अवश्य मिला है कि खलीफा मोतजिद बिल्लाह अब्बासी (सन् २७९-८६ हि०) ने अहमद बिन खफी दैलमी को, जो गणित विद्या और तारों आदि की दूरी नापने की विद्या का पंडित था, कुछ बातो की जाँच करने के लिये भारत भेजा था।[२] फिर यह भी जानी हुई है कि खलीफा मोतकिद बिल्लाह का सिन्ध के साथ विद्या विषयक और दूसरी बातो मे सम्बन्ध स्थापित था । सन् २८० हि० के शब्वाल मास मे जब देवल (सिन्ध का बन्द्रगाह) में बहुत बड़ा चन्द्रग्रहण लगा और साथ ही भूकम्प आया, जिसमे डेढ़ लाख आदमी दबकर मर गए थे, तब खलीफा के समाचार भेजनेवालो ने तुरन्त यह समाचार खलीफा के दरवार से भेजा था।[३]

[१] अँगरेज़ी अनुवाद इडिया की भूमिका ज़खाऊ; पृ० ३०

[२] सवानह (जीवनी) हुसैन बिन मन्सूर हलाज; तबकात इब्न बाकूयः शीराज़ी मोसियो लूइस मैसिनन द्वारा सम्पादित, पृ० ४४ (पेरिस सन् १६१४ ई०) ।

[३] तारीखुस् खुलफा सुयूती; पृ० ३८० (कलकत्ता) ।

चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थों के अनुवाद

संस्कृत, की चिकित्साशास्त्र सम्बन्धी जिन पुस्तकों के अरबी से अनुवाद हुए है, उनमे से दो पुस्तके बहुत प्रसिद्ध हैं। एक तो सुश्रुत की पुस्तक है, जिसे अरब लोग "ससरो" कहते है। यह पुस्तक दस प्रकरणों में थी। इसमें रोगों के लक्षण, चिकित्सा और ओषधियों का विवरण है। यहिया बिन खालिद बरमकी की आज्ञा से मनका या माणिक्य ने इस लिये इसका अनुवाद किया था कि बरामका के चिकित्सालय में उसीके अनुसार चिकित्सा का काम हुआ करे। दूसरी पुस्तक चरक की है, जो भारत में चिकित्साशास्त्र का बहुत बड़ा ज्ञाता

और ऋषि हुआ है। इस पुस्तक का पहले फारसी में अनुवाद हुआ था। फिर अब्दुल्लाह बिन अली ने इसका फारसी से अरबी में अनुवाद किया था ।[१]

तीसरी पुस्तक का नाम इब्न नदीम में "सन्दस्ताक्क" और याकूबी की छपी हुई प्रति में सन्धशान है। इसी पुस्तक की एक और प्रति में "सन्धस्तान" है। इसका संस्कृत का रूप "सिद्धि स्थान" है।[२] इब्न नदीम ने अरबी में इसका अर्थ " खुलासा कामयाबी" और याकूबी ने "सूरत कामयाबी" (अर्थात् जिसके द्वारा सफलता या सिद्धि हो) बतलाया है। मेरी समझ में याकूबी का लिखना ठीक जान पड़ता है। जो हो; बगदाद के चिकित्सालय के प्रधान अधिकारी इब्न दहन ने इसका अनुवाद किया था ।[३]

चौथी पुस्तक का नाम याकूबी ने "निदान" बतलाया है। इब्न नदीम ने इसका उल्लेख नहीं किया। इसमें चार सौ चार रोगों के केबल लक्षण या निदान बतलाए गए हैं; उनकी चिकित्सा नहीं बतलाई गई है ।[४]

[१] इब्न नदीम; पृ० ३०३

[२] मूल मे सिद्धस्तान या सन्देसन दिया है, पर वास्तव में यह सन्धि स्थान है, जो आायुर्वेद के ग्रन्थों में चिकित्सा के प्रकरणों का नाम है- धनुवादक ।

[३] इब्न नदीम पृ० ३०२ और याकूबी खं० १ पृ० १०५ ।

[४] याकूबी सं०१ पृ० १०५।

एक और पुस्तक का भी अनुवाद हुआ था, जिसमें जड़ी-बूटियो के भिन्न भिन्न नाम थे। उसमे एक एक जड़ी के दस दस नाम दिए थे। सुलैमान बिन इसहाक के लिये मनका पंडित ने इसका अरबी मे अनुवाद किया था ।[१]

एक और पुस्तक थी जिसका विषय था कि भारतीय और यूनानी दवाओं में से कौन सी दवाएँ ठंढी है और कौन सी गरम हैं, किस दवा में क्या शक्ति और क्या प्रभाव है और वर्ष की ऋतुओ के विभाग मे क्या क्या अन्तर और मतभेद हैं। इस पुस्तक का भी अरबी मे अनुवाद हुआ था ।[२]

इब्न नदीम ने भारतीय चिकित्साशास्त्र की एक और पुस्तक का नाम अस्तानगर लिखा है, जिसका अनुवाद इब्न दहन ने किया था । नोकशनल (या नोपशनल?) नाम के एक वैद्य की दो पुस्तको के भी अनुवाद किए गए थे। उनमे से एक मे एक सौ रोगों और सौ ओषधियो का वर्णन था; और दूसरी पुस्तक मे रोगो के सन्देहो और कारणो आदि का वर्णन था ।

रूसा नाम की एक हिन्दू विदुषी की एक पुस्तक का भी अनुवाद हुआ था, जिसमे विशेषतः स्त्रियो के रोगो की चिकित्सा दी गई थी ।

एक पुस्तक गर्भवती स्त्रियो की चिकित्सा के सम्बन्ध में थी । जड़ी-बूटियो के सम्बन्ध की एक संक्षिप्त पुस्तक थी । एक पुस्तक नशे की चीजो के सम्बन्ध से थी ।[३]

[१] इव्न नदीम, पृष्ठ ३०३; और याकूबी खं० १, पृष्ठ १०५ ।

[२] याकूबी खं० १; पृष्ट १०५ ।'

[३] ऊपर की सात पुस्तकों का उल्लेख इब्न नदीम की पुस्तक के पृष्ठ ३०३ मे है।

मसऊदी ने चिकित्साशास्त्र की एक पुस्तक का नाम और वर्णन इस प्रकार लिखा है- "राजा कोरश के लिये चिकित्साशास्त्र की एक बड़ी पुस्तक लिखी गई थी, जिसमें रोगों के कारण, चिकित्सा, ओषधियों की पहचान और जड़ी-बूटियों के चित्र बनाए गए थे ।"[१]

पीनेवाली चीजों या पेय द्रव्यो में इब्न नदीम ने "अतर" का उल्लेख किया है। बहुत सम्भव है कि यह नाम अत्रि नामक वैद्य के नाम पर रखा गया हो । इब्न नदीम ने एक और पंडित का नाम सावबर्म दिया है ।[२] इसका शुद्ध रूप कदाचित् सत्यवर्मन् हो, जिसकी "सत्या" (सत्रा?) नामक पुस्तक का बैरूनी ने उल्लेख किया है।[३]

पुस्तकों आदि के अतिरिक्त संस्कृत और भारत के उन बचे हुए प्रभावों का भी उल्लेख करना है, जो अरबी चिकित्साशास्त्र में अब तक उपस्थित हैं।

इस प्रसंग में उन प्रभावों का उल्लेख नहीं है, जो भारत के मुसलमान बादशाहों के समय में अरबी चिकित्साशास्त्र पर पड़े थे। वह एक अलग विषय है। यहाँ हमारा अभिप्राय

उन प्रभावों से है, जो हिजरा चौथी शताब्दी तक अरबी चिकित्साशास्त्र पर पड़े थे। इस प्रकरण में सब से पहले तो वे दवाएं हैं, जो भारत से अरब गई और जिनकी जाँच के लिये बरामका और खलीफ़ाओं ने अपने आदमी भारत भेजे थे। इनमें से बहुत सी दवाओं के नाम केवल उनकी उत्पत्ति के स्थान के विचार से ही नहीं, बल्कि भाषा के विचार से भी भारतीय ही हैं; और कम से कम एक दवा ऐसी है, जिसका नाम भारत के सम्बन्ध से स्वयं इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद साहब के समय में अरब में सुनाई देता है। कस्त हिन्दी[१] और जंज बील (जरंजा बीरा या अम्बीर १) अर्थात् सोठ का शब्द स्वयं कुरान मे है। इस प्रकार की कुछ और दवाओ के नाम हमने "व्यापारिक सम्बन्ध के प्रकरण मे दिए है।

[१] **मसऊदी; पहला खंड; पृष्ठ १६२ (पेरिस)**

[२] **इब्न नदीम; पृष्ठ ३०५ ।**

[३] **ज़खाऊ की "इंडिया" नामक पुस्तक की भूमिका; पृ० ३३ ।**

अरबी मे दो शब्द सब से बढ़कर विलक्षण हैं; जिनमे से एक तो दवा का नाम है और दूसरा खाद्य पदार्थ का । दवा में इतरीफल है, जो इतना अधिक प्रसिद्ध है और प्रत्येक चिकित्सक और रोगी जिसका व्यवहार करता है। हिजरी चौथी शताब्दी मे मुहम्मद ख्वारिज्मी ने लिखा है- यह हिन्दी शब्द तिरीफल (त्रिफला) है। यह तीन फलों अर्थात् हरें, बहेड़े और ऑवले से बनता है।"[२] इसी प्रकार की एक और दवा का नाम अंबजात है । ख्वारिज्मी कहता है- भारत मे आम नाम का एक फल होता है। हरें में मिलाकर "अंबजात" बनाते है।" उसीको शहद, नीबू और सम्भवतः इसको गुडम्बा या आमो का अचार या मुरब्बा कहना चाहिए। लेकिन इन सव से बढ़कर विलक्षण शब्द "बहतः” (या भत्तः १) है, जिसके सम्बन्ध मे ख्वारिज्मी ने यह कहा है- "यह एक प्रकार का रोगियो' का भोजन है । यह सिन्धी शब्द है। यह दूध और घी मे चावल को पकाकर बनाया जाता है।"[३] आप समझे ? यह हमारा हिन्दुस्तानी भात है, जो अरबो के विचार से रोगियो के लिये एक हल्का भोजन होगा। अब आप इसको चाहे खीर समझिए और चाहे फीरीनी ।

[१] सहीह बुखारी, दूसरा खंड; पृ० ८४६ किताबुल्मरज़।

[२] मफातीहुल उलूम, ख्वारिज्मी; पृ० १८६ ।

[३] उक्त ग्रन्थ, पृ० १७७ ।

पशु-चिकित्सा (शालिहोत्र)

पशुओं की चिकित्सा के सम्बन्ध में शानाक या चाणक्य नामक पंडित की पुस्तक का अरबी में अनुवाद हुआ था।[१]

ज्योतिष और रमल

सभी लोग जानते हैं कि इन विद्याओं का भारत के साथ कितना अधिक सम्बन्ध है। अब्बासी वंश के दूसरे खलीफ़ा मन्सूर के ही समय से, जो सन् १४७ हि० में सिंहासन पर बैठा था, अरब में इन विद्याओं का प्रचार हुआ था। इस प्रकार की बातों में मन्सूर को बहुत अनुराग था। जब उसने बगदाद नगर बनवाया था, तब उसकी हर एक चीज कुंडली खींच खींचकर बनाई गई थी। पहले दरबार में ईरानी ज्योतिषियों की प्रधानता थी। फिर हिन्दू ज्योतिषियों ने वहाँ अपना अधिकार जमाया। जान पड़ता है कि मन्सूर के ही समय में इस विद्या की भारतीय पुस्तकों का अरबी में अनुवाद हुआ था इन ज्योतिषी पंडितों में से अरबी में सबसे प्रसिद्ध नाम कनका पंडित का है। इब्न अबी उसैबा ने लिखा है कि यह एक प्रसिद्ध चिकित्सक और वैद्य था ।[२]

जखाऊ की जाँच के आधार इस नाम का भारतीय रूप कंकनाय या कनकनाय

(कनकनाम?) होगा, क्योंकि इस नाम का एक प्रसिद्ध वैद्य भारत में पहले हो चुका है, जिसका मत भारतीय औषधो के सम्बन्ध में प्रामाणिक माना जाता है।[३]

[१] उक्त ग्रन्थः पृ० १६७ ।

[२] उयूनुल् अम्बा फ़ी तबकातुल् अतिब्बा; दूसरा खंड; पृष्ठ ३३ (मित्र)।

[३] "इंडिया" नामक पुस्तक की भूमिका पृ० ३२ ।

इब्न नदीम ने अरबी से इस पंडित की चार पुस्तको का उल्लेख किया है'-[१]

(१) किताबुन नमूदार फ़िल् अअमार-आयुष्य के वर्णन की पुस्तक ।

(२) किताब असरारुल् मवालीद - उत्पत्तियो या जन्मो के भेद या जातक ।

(३) किताबुल् किरानातुल् कबीर - बड़े क्रिरान या बड़े लग्न के वर्णन की पुस्तक ।

(४) किताबुल् किरानातुल् सगीर - छोटे लग्न के वर्णन की पुस्तक ।

इब्न अबी उसैबा का कहना है कि ये पुस्तके आयुर्वेद या चिकित्साशास्त्र की हैं; पर इब्न नदीम ने इसका उल्लेख ज्योतिष् की पुस्तको के साथ ही किया है। सम्भव है कि इसमे दोनो ही विषय हो; क्योकि पुराने चिकित्साशास्त्र मे ज्योतिष की भी बहुत सी बातें होती थी। इब्न अत्री उसैबा ने इसकी और भी दो पुस्तको के नाम बतलाए हैं-[२]

(५) किताब फ़ित्तवहहुम- मेस्मेरिज्म के सम्बन्ध मे ।

(६) किताब फ़ी इहदासुल् आलम बद्दौर फ़िल् क़िरान संसार की घटनाएँ और ग्रहो के लग्नो मे चक्र ।

यही लेखक मुसलमान नजूमी या ज्योतिषी अबू मअशर बलनी (सन् २७२ हि० ८८६ ई०) के आधार पर लिखता है- "भारत के सब पंडितों के मत से यह कनका ज्योतिषशास्त्र का सबसे बड़ा पंडित है।"

[१] इब्न नदीम की पुस्तक; पृ० २७० ।

[२] उयूनुल् अम्बा फी तबकातुल् अतिब्बा; दूसरा खंड; पृ० ३३ (मित्र) ।

अतारद बिन मुहम्मद नाम का एक मुसलमान ज्योतिषी था, जो कदाचित् हिजरी दूसरी शताब्दी में हुआ था। इसने भारतीय जफर (स्वरौदय?) के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी थी।[१] इसके सिवा इब्न नदीम ने तीन और हिन्दू ज्योतिषियों के नाम लिए हैं।[२]

(१) जौदर हिन्दी (भारतीय) - इसकी पुस्तक का नाम "किताबुल् मवालीद" (उत्पत्तियों की पुस्तक या जातक) है।

(२) नहक या नायक (नहक) हिन्दी । इसकी पुस्तक का नाम असरारुल् मसायल (प्रश्नों का रहस्य) है।

(३) सिंहल (संजहल या संझल) हिन्दी । इसको पुस्तक का नाम किताबुल् मवालीदुल् कबीर (उत्पत्तियों की बड़ी पुस्तक या बड़ा जातक; बृहज्जातक) है। ज्योतिष के प्रकरण में बैरूनी ने भी सिंहल का नाम लिया है।[३]

भारत की किसी भाषा से एक ऐसी पुस्तक (सामुद्रिक) का भी अरबी में अनुवाद हुआ था, जिसमें हथेली की लकीरें और हाथ देखकर हाल बताने की विद्या का वर्णन था।[४]

इसके सिवा भारतीय रमल के सम्बन्ध में जजरुलू हिन्द नाम की भी एक पुस्तक है।[५]

[१] **इब्न नदीस पृ० २७८ ।**

[२] **उक्त ग्रन्थ; पृ० २७१।**

[३] **किताबुल हिन्द; पृ० ७६ ।**

[४] **इब्न नदीम; पृ० ३१४ ।**

[५] **उक्त ग्रन्थ; पृ० ३१४ ।**

सांपों की विद्या (गारुडी विद्या)

भारत के लोग साँपो के प्रकार जानने और उनके काटे की झाड़ हूँक और जन्तर मन्तर करने के लिये प्रसिद्ध हैं। और यहाँ इसका नाम सर्प-विद्या है। राय नामक एक पंडित की लिखी हुई इस विद्या की एक पुस्तक का अरवी से अनुवाद हुआ था, जिसमे सॉपो के भेदों और विषों का वर्णन था।[१] अरबी मे एक और भारतीय पडित को पुस्तक का उल्लेख है जो इसी विद्या पर थी ।[२]

[१] **उक्त ग्रन्थ, पृ० ३०३**

[२] **उयूनुल् अम्बा फ्री तबकातुल् अतिब्बा; पृ० ३३ (मित्र)**

विष-विद्या

इस विद्या के भी भारतवासी बहुत बड़े पंडित होते थे । जकरिया कज़वीनी ने अपनी आसारुल् बिलाद नामक पुस्तक मे हिन्द या भारत के प्रकरण में वेश (विष) नामक एक जड़ी का उल्लेख किया है; और इसके द्वारा राजाओ का आपस मे मित्रता के छल से एक दूसरे को मारने की विलक्षण कथा लिखी है। यह "वेश" हिन्दी का विष है, जिसका अर्थ जहर है। जो हो, राजाओ को अपनी रक्षा करने और अपने प्राण बचाने के लिये इस विद्या का ज्ञान रखने की बहुत आवश्यकता हुआ करती थी। युद्ध-विद्या के सम्बन्ध मे अरबी में चाणक्य या शानाक पंडित की जो पुस्तक है, उसका नाम पहले आ चुका है। उसका अन्तिम प्रकरण "भोजन और विष" के सम्बन्ध मे था। जान पड़ता है कि इसके सिवा इसकी कोई और पुस्तक भी थी, जिसमे विशेष रूप से विषो का ही वर्णन था और जो हिजरी सातवी शताब्दी (ईसवी तेरहवी शताब्दी) तक अरबी भाषा में मिलती थी। क्योकि इब्न अबी उसैबाअ ने सन् ६६८ हि० (सन् १२७० ई०) में इस पुस्तक का पूरा वर्णन इस प्रकार लिखा है- "इस पुस्तक में पाँच प्रकरण हैं। यहिया बिन खालिद बरमकी के लिये मनका या माणिक्य पंडित ने अबू हातिम बलखी की सहायता से फ़ारसी में इसका अनुवाद किया था। फिर अब्बास बिन सईद जौहरी ने खलीफा मामूँ रशीद (सन् २१८ हि०) के लिये इसका दोबारा अनुवाद किया था।[१] इब्न अदीम की सूची में इसी प्रकार की एक और पुस्तक का नाम मिलता है, [२] जिसका अरबी में अनुवाद हुआ था । पर उस पुस्तक के मूल लेखक का उसमें नाम नहीं दिया गया है।

संगीतशास्त्र

जाहिज (सन् २५५ हि०) का कथन ऊपर दिया जा चुका है, जिसमें उसने भारतोय संगीत की प्रशंसा की है और विशेष रूप से एक तारे का उल्लेख किया है। बगदाद के ग्रन्थों

में भारत की संगीत विद्या पर किसी पुस्तक का नाम नहीं मिलता। पर स्पेन के एक विद्वान् इतिहास-लेखक क़ाजी साइद अन्दलसी (सन् ४६२ हि० ; १०७० ई०) ने लिखा है- "भारत की संगीत विद्या की नाफर नाम की एक पुस्तक हम को मिली है, जिसका शब्दार्थ है- "बुद्धिमत्ता के फल" और जिसमें रागों और स्वरों का वर्णन है।"[३] आश्चर्य नहीं कि यह यह फारसी का नौ-बर शब्द हो, जिसका अर्थ है- नया फल ; और फ़ारसी अनुवाद के द्वारा यह पुस्तक अरबी भाषा में भी हो गई हो। पर नाफर शब्द के सम्बन्ध में हमारे एक हिन्दू मित्र का कहना है कि यह शब्द "नाद" होगा, जो संस्कृत में शब्द या आवाज़ को कहते हैं।

[१] **उक्त ग्रन्थ; और पृ० ।**

[२] **इब्न नदीस; पृ० ३१७ ।**

[३] **तबक़ातुल् उमम; क़ाज़ी साइद अन्दलसी; पृ० १४ (वैरुत) ।**

महाभारत

पेरिस की लाइब्रेरी में मुजम्मिल उत्तवारीख नाम की फारसी भाषा की एक पुस्तक है जो भारत के प्राचीन इतिहास के सम्वन्ध मे है और जिसमे महाभारत की बहुत सी कथाएँ हैं। इस पुस्तक की भूमिका मे लिखा है कि संस्कृत (हिन्दुवानी) भाषा से अबू सालह विन शुऐब ने अरवी से इसका अनुवाद किया था। फिर सन् ४१७ हि० मे अबुल्हसन अली जिबिल्ली ने, जो किसी दैलमी अमीर के पुस्तकालय का प्रबन्धकर्त्ता था, इसका अरबी मे अनुवाद किया। ईलियट साहब ने इसकी कुछ संक्षिप्त बाते दी हैं।[१]

युद्ध-विद्या और राजनीति

भारतीय भापा (संस्कृत या पाली) से इस विद्या की हिन्दू पंडितो की दो पुस्तको का अरबी मे अनुवाद हुआ था। उनमे से एक का नाम अरब लोग "शानाक" बतलाते हैं; और दूसरे का वाखर या बाझर । सम्भवतः पहला नाम चाणक्य हो और दूसरा व्याघ्र । भारतीय चाणक्य या शानाक की पुस्तक (अर्थशास्त्र) का विषय यह है- "युद्ध की व्यवस्था और राजा को कैसे आदमी चुनने चाहिए; सैनिको की व्यवस्था; और भोजन और विष।"[२] याझर या व्याघ्र की पुस्तक मे तलवारो की पहचान, उसके गुण और लक्षण आदि बतलाए गए हैं।[३] संस्कृत से एक और पुस्तक का अरबी मे अनुवाद हुआ था, जिसका नाम अद्बूल मुल्क अर्थात् “राज्य की प्रणालियाँ या ढंग" है। इस पुस्तक के अरबी अनुवादक का नाम अबू सालह बिन शुऐब है। उसके समय का पता नहीं है। इस समय उसका केवल फारसी अनुवाद मिलता है। यह अनुवाद सन् ४१७ हि० में अबुल्सन बिन अली जिबिल्ली ने किया था, जो एक दैलमी अमीर के पुस्तकालय का प्रबन्धकर्ता था।[१]

[१] ईलियट कृत भारत का इतिहास; पहला खंड; पृ० १०० ।

[२] इब्न नदीम; पृ० ३१५ ।

[३] उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ ।

कीमिया या रसायन

पुरानी कीमिया या रसायन का मूल और उद्गम चाहे जो हो, पर इस विद्या की एक हिन्दू विद्वान् की पुस्तक के अनुवाद का पता इब्न नदीम में मिलता है; [२] और एक प्रसिद्ध अरब रसायनिक जाबिर बिन हयान की एक पुस्तक "खातिफ" का भी इसी भारतीय सम्बन्ध के सहित उल्लेख है।[३] परन्तु इस भारतीय विद्वान् का नाम बहुत ही सन्दिग्ध है।

तर्कशास्त्र

इब्न नदीम की फेहरिस्त (सन् ३७७ हि०) में एक अरबी पुस्तक का, जिसका भारतीय (संस्कृत) भाषा से अनुवाद हुआ था, इस प्रकार उल्लेख है-

"किताब हुदूद मन्तिक्कुहिन्द [४] (भारत के तर्क शास्त्र की सीमाएँ)। परन्तु याकूबी ने, जो इब्न नदीम से सौ बरस पहले हुआ है, इस पुस्तक का उल्लेख तर्क और दर्शन की पुस्तकों के अन्तर्गत इस नाम से किया है- "किताब तूफाफी इल्म हुदूदुल् मन्तिक [५] (तोफा (टोपा) की पुस्तक, तर्क की सीमाओं की विद्या पर) - यहाँ प्रश्न यह है कि इस मन्तिक शब्द से तर्क या न्याय (लॉजिक) का अभिप्राय है; या मन्तक शब्द के पारिभाषिक अर्थ "बोलने और भाषण करने" आदि का अभिप्राय है, जो उस शब्द का शब्दार्थ है; और उस पुस्तक मे केवल कहानियों और कथाएँ आदि थीं या उसमे नीति और सदाचार आदि की बाते थी; और इस नाम का यह अभिप्राय था कि मनुष्य के बोलने की सीमाएँ बतलानेवाली पुस्तक; अर्थात् मनुष्य को कहाँ वोलना चाहिए और कहाँ न बोलना चाहिए; और किस प्रकार बोलना चाहिए । इब्न नदीम ने इस पुस्तक का उल्लेख नीचे लिखे शीर्षक के अन्तर्गत किया है-उन भारतीय पुस्तको के नाम, जो कथा और कहानी की हैं।" इससे जान पड़ता है कि यह पुस्तक तर्कशास्त्र या न्याय की नही थी ।

[१] **ईलियट; पहला खंड; पृ० ११२ ।**

[२] **इब्न नदीम; पृ० ३५३ ।**

[३] **उक्त ग्रन्थ; पृ० ३५६ ।**

[४] **उक्त ग्रन्थ: पृ० ३०५।**

[५] **याकूबी; पृ० १०५ ।**

अलंकारशास्त्र

जाहिज (सन् २५५ हि०) ने अपनी किताबुल् बयान बत्तबईन नामक पुस्तक मे लिखा है[१] - "जिस समय यहिया बिन खालिद वरमकी ने बहुत से हिन्दू पंडितो को बुलवाया था, उस समय मुअम्मिर ने उनमे से एक पंडित से पूछा था- "भारतवासी उत्कृष्ट भाषण किसको कहते हैं ?" उसने कहा "मेरे पास इस विषय पर एक छोटा सा निबन्ध है; पर मैं उसका अनुवाद नही कर सकता और न यह विद्या जानता हूँ।" मुअम्मिर का कहना है कि मैं वह संक्षिप्त निबन्ध लेकर अनुवादको के पास गया। उन्होने उसका यह अनुवाद किया। इसके बाद जाहिज ने इस निबन्ध का संक्षेप एक पृष्ठ मे दिया है जिसमे यह बतलाया गया है कि वक्ता या भाषण करनेवाले को कैसा होना चाहिए और किस अवसर पर कैसी बातें कहनी चाहिए ।[२]

[१] किताबुल् बयान बत्तबईन; पहला खंड, पृ० ४० (मित्र) ।

[२] सम्भव है कि इसमें अलंकारशास्त्र की कुछ बाते हों - अनुवादक ।

इन्द्रजाल

भारत की यह बहुत प्रसिद्ध और पुरानी विद्या है। अरबी पुस्तकों में जहाँ भारत की विशेषताएँ बतलाई गई हैं, वहाँ इस देश के करतबों, बाजीगरों और जादूगरों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। इब्न नदीम कहता है- "भारतवासियों का जादू और मन्त्र पर बहुत विश्वास है।" फिर आगे चलकर कहता है- “भारतवासी तवहुम की विद्या के बहुत बड़े जानकार होते हैं और इस विद्या पर उनकी पुस्तकें हैं, जिनमें से कुछ का अरबी में अनुवाद हुआ है।" तवहहुम की विद्या से शायद इसका उसी विद्या से अभिप्राय है, जिसे आजकल मेस्मरिज्म कहते हैं।[१] याकूबी ने इसका यह आशय लिखा है- "अपने मन में किसी प्रकार का विचार रखकर (दूसरे को) उसीके अनुसार विश्वास दिलाया जाय और वैसा ही हो।"[२] साथ ही यह भी लिखा है कि केहन नाम के एक राजा ने इस विद्या का आविष्कार किया था ।

इब्न नदीम एक हिन्दू लेखक का उल्लेख करता है, जिसका नाम उसकी पुस्तक के सम्पादक से भी नहीं पढ़ा गया और उसने उसी प्रकार लकीर बनाकर उसे छोड़ दिया है। देखने में वह "सीसा हिन्दी" जान पड़ता है। फिर लिखता है- "यह पुराने लोगों में है और इसका नजरबन्दी का ढंग भारत के ढंग का सा है।" इसकी एक पुस्तक है जिसमें तवहहुम (मेस्मरिज्म) वालों का सा ढंग रखा गया है।[३]

[१] **अल् फेहरिस्त; पृ० ३०६ ।**

[२] **याकूबी; पहला खंड; पृ० ६७ ।**

[३] **इब्न नदीम पृ० ३१२ ।**

कथा कहानी

इस विषय की भारत की कई पुस्तको का अनुवाद अरबी में हुआ था, जिनमे से दो के नाम “सिन्दवाद हकीम (पंडित) की पुस्तक" हैं। इसकी दो प्रतियों हैं - एक छोटी और दूसरी बड़ी। इस पुस्तक के सम्बन्ध मे कुछ लोगो का विचार है कि यह ईरानियो की बनाई हुई है। पर इब्न नदीम कहता है- "सच यह है कि यह भारत की बनी हुई है। यह हो सकता है कि कुछ दूसरी पुस्तको की तरह पर इस पुस्तक का भी पहले फारसी में अनुवाद हुआ हो; और फिर यह फारसी से अरबी मे आई हो, और इस लिये लोगो को यह धोखा हुआ हो कि यह ईरानियो की बनाई हुई है।[१]

कहानियो की प्रसिद्ध “अल्फ लैला " नाम की पुस्तक में सिन्दद्वाद के नाम की दो कहानियाँ हैं, जिनमे से एक मे सिन्दवाद नाम के व्यापारी की जल-यात्रा की और दूसरे मे स्थल-यात्रा की विलक्षण और अद्भुत घटनाएँ बतलाई गई है। इस सिन्दबाद शब्द के ही कारण कुछ लोगों को यह धोखा हुआ[१] कि वह भारतीय कहानी यही है। पर यह बात ठीक नहीं, क्योकि एक तो यह हकीम सिन्दबाद की[२] कहानियाँ है, और अल्फ लैला सिन्दवाद नामक व्यापारी की कहानियाँ हैं। और दूसरे अल्फ लैला मे सिन्दबाद की यात्रा की जो कहानियाँ है, वह हिन्दू भावो और परिस्थितियो के बिलकुल अनुकूल नहीं हैं। फिर मसऊदी

ने[१] इस कहानी के अंग ये लिखे हैं- “सात मन्त्रियों, एक गुरु एक लड़के और एक रानीवाली कहानी ।" यह बात अल्फ लैला की सिन्दबाद वाली कहानी पर ठीक नहीं बैठती ।

[१] रसायल शिवली; पृ० २६३ (पहला संस्करण) अनुवादों का प्रकरण ।

[२] फेहरिस्त ; पृ० ३०५, पंक्ति २ और २० याकूबी; पहला खंड, पृ० १०५ ।

इसके सिवा भारत की कुछ और कहानियों का भी अरबों ने अपनी भाषा में अनुवाद कराया था, जिनमें से एक "दीपक हिन्दी की कहानी" है। इसमें एक स्त्री और पुरुष की कथा है। एक हजरत आदम की भूमि पर आने की कहानी है।[२] यह पता नहीं चलता कि इस कहानी से देववाणी (संस्कृत) की किस कहानी का अभिप्राय है। इसी प्रकार एक राजा की कहानी है, जिसमें लड़ने और तैरने का वर्णन है। एक और कहानी में दो भारतीयों का वर्णन है, जिनमें से एक उदार दाता और दूसरा कंजूस था। दोनों की उदारता और कंजूसी का मुकाबला किया है, और अन्त में राजा का निर्णय दिया है।[३] एक और पुस्तक का भी अनुवाद हुआ था, जिसमें त्रिया-चरित्र का वर्णन था। इसके रचयिता का नाम राजा कोष लिखा है।[४]

एक और पुस्तक इल्मुल् हिन्द (हुक्म उल् हिन्द?) का भी पता चलता है, जिसका पहले गद्य में अनुवाद हुआ था। फिर अब्बान कवि[५] ने इसे पद्य में लिखा था। भारत की कई कथाओं और कहानियों के उल्लेख इखवानुस्सफा के निबन्धों में मिलते हैं।

तारीख मुरूजुज्ज ज़हब; मसऊदी; पहला खंड; पृ० १६२ (लीडन) ।

[२] फ़ेहरिस्त इब्न नदीम; पृ० ३०५ ।

[३] उक्त ग्रन्थ; पृ० ३१६।

[४] तारीख याकूबी; पहला खंड पृ० १०५ ।

[५] इब्न नदीम; पृ० ११६ सम्भवतः यह वही पुस्तक कलेला दमना (पंच तंत्र) है, जिसका उल्लेख आगे चलकर थाता है।

सदाचार और नीति

पुराने विद्वानो की यह प्रथा थी कि वे सदाचार, नीति और बुद्धिमत्ता की बाते कथाओ, कहानियो और उदाहरणो आदि के द्वारा बतलाया करते थे और कुत्तो, चूहो, विल्लियो और कौओ के मुँह से मनुष्यो को समझाते थे। संस्कृत की एक विशेष पुस्तक, जो फारसी और अरबी मे इस दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध हुई, कलेला दमना है, बैरूनी के अनुसार जिसका संस्कृत नाम पंचतन्त्र है। इस्लाम के प्रचार से ईरान के सासानी बादशाहो के समय इस पुस्तक का संस्कृत से फारसी मे अनुवाद हुआ था। फिर अब्दुल्लाह बिन मुकफ्फा ने हिजरी दूसरी शताब्दी मे इसे अरबी रूप दिया था। अरबी मे इस पुस्तक ने इतनी प्रसिद्ध प्राप्त की और बादशाहो तथा अमीरो ने इसका इतना अधिक आदर किया कि इसके अरबी से फारसी मे, फारसी से अरबी मे, पद्य से गद्य में और गद्य से पद्य मे कई अनुवाद होते रहे और कई प्रतियाँ बनती रही और अनुवादक, कवि तथा-लेखक लोग इसके अनुवाद, कविता और गद्य लेखन मे अपना कौशल दिखा दिखाकर मुसलमान बादशाहो से बड़े बड़े पुरस्कार पाते थे। हिजरी दूसरो शताब्दी के अन्त मे जब अरबी के अब्बान नामक एक कवि ने इसका अरबी पद्य मे अनुवाद करके हारूँ रशीद के मन्त्री जाफर बरमकी की सेवा में उपस्थित किया, तब उसने उसको एक लाख दरहम पुरस्कार दिया ।[१] अरबी भाषा से इस पुस्तक के संसार भर की भाषाओ मे अनुवाद हुए। युरोप, अफ्रिका और एशिया की कोई ऐसी शिक्षितो की भाषा नहीं है, जिसमे इसका अनुवाद न हुआ हो इस पुस्तक के अनुवादों और प्रतियों के उलट-फेर का स्वयं एक अच्छा इतिहास है। उर्दू में स्व० डाक्टर सैयद अली बिलग्रामी ने सन् १८९१ ई० में अली- गढ़ मे मुस्लिम एजुकेशनल कान्फ्रेंन्स की बैठक में इस विषय पर बहुत छान बीन करके एक बड़ा व्याख्यान दिया था। इसके सम्बन्ध में इस विषय का दूसरा लेख इस पुस्तक के लेखक का है, जो अलीगढ़ की मन्थली मैगजीन (Monthly Magazine) मासिक पत्रिका में कदाचित् सन् १९०५ ई० में या उसके एक आध बरस आगे पीछे प्रकाशित हुआ था ।

[१] किताबुल् बुज़रा वल् किताब जहुशियारी । (सन् १६२६ मे वियाना श्रास्ट्रिया से प्रकाशित) पृ० २५६ ।

इस पुस्तक के लेखक का नाम वेद्या पंडित बतलाया गया है; और जिस राजा के लिये यह लिखी गई थी, उसका नाम दावशलीम बतलाया गया है। राजाओं और महाराजाओं को जिन बातों के जानने की आवश्यकता होती है, वे सब बातें पशुओं ओर पक्षियों आदि की कहानियो के रूप में दस प्रकरणों में दी गई हैं। ऐसा जान पड़ता है कि जिस राजा का नाम दावशलीन बतलाया गया है, वह गुजरात का राजा था। क्योंकि हिजरी चौथी शताब्दी (ईसवी दसवीं शताब्दी) के अरब यात्री इब्न हौकल ने गुजरात के राजा वल्लभराय का नाम लेकर लिखा है- "उदाहरणोंवाली पुस्तक (किताबुलू अम्साल वाला) राजा ।"[१] और अरबी में उदाहरणोवाली पुस्तक यही कलेला दमना समझी जाती है। याकूबी ने लिखा है कि राजा दावश- लीन के समय में बेदपा पण्डित ने यह पुस्तक लिखी थी।[२] और फरिश्ता में लिखा है कि जिस समय सुलतान महमूद ने गुजरात पर चढ़ाई की थी उस समय गुजरात का जो राजा राजगद्दी पर से हटाया गया था, उसके वंश का नाम बोदा बशलीन था ।

[१] सफरनामा इब्न हौक्ल; पृ० २२७ ।

[२] पहला संड; पृ० ६७ ।

प्रो० ज़खाऊ की भूल

इण्डिया नामक पुस्तक की भूमिका मे प्रो० जखाऊ ने इब्न नदीम के आधार पर "बेदपा फिल् हिकमत" (बुद्धिमत्ता के सम्बन्ध मे बेदपा की पुस्तक) का नाम लिया है; और अपनी समझ से जांच करके यह बतलाया है कि वेदपा वास्तव मे वेद व्यास हैं जो वेदान्त के आचार्य और प्रवर्त्तक थे। इस लिये बुद्धिमत्ता के सम्बन्ध में वेदपा की जो पुस्तक है वह वेदान्त है। फिर इस भ्रमात्मक अनुमान पर एक और अनुमान खड़ा कर लिया है कि

मुसलमानो मे एकेश्वर- वाद या ईश्वर के एक होने के सम्बन्ध मे जो सिद्धान्त है, वह इन्ही वेद व्यास के वेदान्त के अनुवाद से आया है।[1] हम यह मानते है कि बाद के सूफी सम्प्रदाय के मुसलमानो पर वेदान्त का प्रभाव पड़ा था ; पर हम यह नहीं मान सकते कि इतने दिनो पहले ही अरबों और मुसल- मानो को वेदान्त का किसी प्रकार का ज्ञान न था। पहले के मुसलमान सूफियो पर के एकेश्वरवाद पर एलेक्जेंड्रिया के नव-अफलातूनी दर्शन का प्रभाव अवश्य पड़ा है। जो हो, यहाँ इस सिद्धान्त के इतिहास से हमारा कोई मतलब नहीं है, बल्कि इब्न नदीम के इस वाक्य से पूर्वी विद्याओ के उक्त विद्वान् को जो भ्रम हुआ है, हम वह भ्रम दूर करना चाहते हैं।

ज्ञान और उपदेश की जो बातें बुद्धिमत्ता और चतुराई के उदाहरणो और कहानियो आदि के द्वारा समझाई जाती है, उन्हे अरबी में "हिकमत" कहते हैं। बेदपा की पुस्तक से यहाँ उसी कलेला दमना का अभिप्राय है, जिसका बनानेवाला उसके फारसी अनुवाद के आरम्भ में बेदपा पंडित बतलाया गया है[2] और जिसमे कहानियो और उदाहरणों के द्वारा ज्ञान और बुद्धिमत्ता की बातें बतलाई गई हैं। और इसी लिये इब्न नदीम ने बेदपा की इस हिकमतवाली पुस्तक का नाम कथाओं और कहानियों के प्रकरण में लिया है, दर्शन के प्रकरण में नहीं लिया है।

[1] **"इडिया की भूमिका ; पृ० ३३ ।**

[2] **याकूबी, पहला खड, पृ० ६७ ।**

जो हो, यह वह महत्वपूर्ण पुस्तक है जिसकी बातें भारतवासियों के मस्तिष्क से निकली हैं और जो अरबो के प्रयत्न से संसार के कोने कोने में फैल गई है। बैरूनी लिखता है- "अब्दुल्लाह बिन मुकपफा ने जो मजूसियो या अग्निपूजकों के "मानी" नामक सम्प्रदाय का अनुयायी था, मूल पुस्तक के अनुवाद में अपने विचारों और धार्मिक विश्वास के अनुसार कई जगह पाठ बदले हैं। मैं हृदय से यह चाहता था कि मुझे इसकी मूल पुस्तक पंचतन्त्र का शुद्ध और ज्यों का त्यों अनुवाद करने का अवसर मिलता।"[1] पर जान पड़ता है कि

बैरूनी को ऐसा अनुवाद करने का अवसर नहीं मिला। इस पुस्तक का अरबी में बहुत प्रचार है; और वह अब तक कहीं कहीं बालकों को पाठ्य पुस्तक के रूप में पढ़ाई जाती है।

[१] किताबुल हिन्द; पृ० ७६ (लन्दन) ।

भारतीय ज्ञान और बुद्धिमत्ता की दूसरी पुस्तक का नाम “बोज आसफ व बलोहर" है। इसकी प्रसिद्धि तो कलेला दमना से कम है, पर इसका महत्व और श्रेष्ठता उससे कही बढ़कर है। इब्न नदीम ने इसका उल्लेख उन भारतीय कहानियों के प्रकरण में किया है, जिनका अरबी में अनुवाद हुआ था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बोज़ आसफ से बुद्ध का अभिप्राय है। पुरानी फारसी में "दाल" या "द” के स्थान पर "जाल" या "ज" लिखते थे। इस लिये बोद आसफ की जगह बोज आसफ हो गया। इस शब्द के अन्त में जो "सफ" है, वह जखाऊ के कहने में अनुसार "सत्व" है। बोधिसत्व का फारसी में बोजासफ हो गया है। कुछ विशेष अवसरो पर "वाव" या "व" जैसे रोमन की, अरवी में "फे" या "फ" हो जाता है। बलोहर शब्द का मूल जखाऊ साइब पुरोहेतर या पुरोहित समझते है। इस पुस्तक मे बुद्ध के जन्म और शिक्षा आदि की कथा है; और बतलाया गया है कि किस प्रकार संयोग से एक घटना हो जाने के कारण संसार से उनका मन हट गया था। इसका समाचार पाकर सरन्दीप से किस प्रकार एक योगी व्यापारी के भेस मे इनके पास आया था और गुरु शिष्य दोनो मे सृष्टि के गूढ़ रहस्यो के सम्बन्ध मे कथाओ, कहानियो, उपमाओ और उदाहरणो आदि के रूप मे ऐसी बाते और प्रश्नोत्तर हुए थे, जिनसे बुद्ध का सन्तोष हो गया था। अरबी से यह पुस्तक अनेक भाषाओ में फैली और धार्मिक क्षेत्रो मे लोगो ने इसे इतना अधिक पसन्द किया कि ईसाई लोग यह कहने लगे कि यह तो हमारे ही सम्प्रदाय के एक महात्मा की बनाई हुई है।

मुसलमानो के एक सम्प्रदाय ने इस पुस्तक के बड़े अंश को लेकर यह कहना आरम्भ किया कि यह तो हमारे एक इमाम का बनाया हुआ है। इखवानुस सफा नाम की पुस्तक हिजरी चौथी शताब्दी से बनी थी । उसमे कुछ तो धर्म की बाते है और कुछ दर्शन

की; और इस दृष्टि से वह बहुत महत्व की पुस्तक है कि वह विचारशीलो की एक विशेष शाखा की पुस्तक है और एक गुप्त सभा के सदस्यों ने इस ढङ्ग से लिखी थी कि मानो इसमे बहुत ही गुप्त और रहस्य की बातें है। इस्लाम के एक सम्प्रदाय के लोग इसे अपना एक बड़ा धर्म-ग्रन्थ समझते है। बोजासफ और बलोहर की इस पुस्तक के कई अध्याय इस इखवानुस सफा से मिला लिए गए हैं। प्रायः तीस बरस हुए, बिहार के स्वर्गीय मौलवी अब्दुल गनी साहब वारिसी ने अरबी से बहुत ही सीधी और बढ़िया उदू मे इसका अनुवाद किया था। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब इस पुस्तक का यह उर्दू अनुवाद छपा और वह मेरे प्रिय अभिभावक के पास आया, तब मैं अरबी की साधारण पस्तकें पढ़ता था।

मैंने अपने अभिभावक से इस पुस्तक के देखने की इच्छा प्रकट की। पर उन्होने यह कह कर पुस्तक नहीं दी कि तुम इसे पढ़कर संसार से विरक्त हो जाओगे और लिखना पढ़ना छोड़ दोगे । उनकी यह बात सुनकर मेरी इच्छा और भी बढ़ गई और मैं उसे पाने के लिये "अपराध" तक करने को तैयार हो गया। रात को जब वे सो गए, तब मैं उनके टेबुल पर से चुपचाप वह पुस्तक उठा लाया । सवेरा होते होते मैंने उसे समाप्त कर दिया और फिर ले जाकर वहीं टेवुल पर रख दिया। उस दिन से आजतक मैं उस पुस्तक को संसार की उन बहुत थोड़ी और चुनी हुई पुस्तकों में समझता हूँ जो पापियों के हृदयों पर भी प्रभाव डालकर उनमें घर कर लेती हैं। उसमें कुछ ऐसे प्रभावशाली उदाहरण भी हैं, जो हमको आज ईसा मसीह के वचनों में मिलते हैं; और हम नहीं कह सकते कि ये मोती पहले किस समुद्र के तल से निकले है ।

अन्त में हम उन दो मुसलमान विद्वानों के सम्बन्ध की भी कुछ बातें बतला देना चाहते हैं जो भारतवर्ष में सैर करने के विचार से नहीं बल्कि यहाँ की विद्याओ और गुणों की गंगा से लाभ उठाने के लिये आए थे और सफल मनोरथ होकर यहाँ से लौटे थे ।

तनूखी

इनमें से पहला व्यक्ति शेख मुहम्मद बिन इस्माईल तनूखी है। सम्भवतः इसका समय हिजरी तीसरी शताब्दी (ईसवी नवीं शताब्दी) होगा। यह ज्योतिषशास्त्र का प्रसिद्ध

पंडित था। यहाँ से यह अपने शास्त्र के बहुत से अद्भुत ज्ञान लेकर लौटा था[१] । दुःख है कि इस विद्वान् के सम्बन्ध की कुछ विशेष बातो का पता नहीं चलता। यदि स्पेन का मुसलमान इतिहास-लेखक काजी साइद इसका उल्लेख न करता, तो शायद लोग इसका नाम भी न जान सकते ।

[१] तबकातुल् उमम; काजी साइद अन्दलसी; पृ० ५६ (वैरून); प्रसवारलू टुकमा; फफूनी; पृ० ८५ (मिस्त्र) ।

बैरूनी

दूसरा विद्वान प्रसिद्ध पंडित और गणितज्ञ ख्वारिज्म (आधुनिक खीवा) का रहनेवाला अबू रैहान बैरूनी है। इस विद्वान को भिन्न भिन्न जातियो के विचारो, धार्मिक विश्वासो और सिद्धान्तो आदि के जानने का बहुत शौक था। इस लिये इसकी बनाई हुई पुस्तको मे से शायद ही कोई ऐसी पुस्तक हो जिससे इसके इस शौक का पता न चलता हो। इसमे कोई सन्देह नहीं कि भारत में आने से पहले भी इसने भारतवर्ष और उसकी विद्याओ के सम्बन्ध मे पुराने ग्रन्थकारो के द्वारा बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उसके समय तक अरबी विद्याएँ और मुसलमानो के विद्या विषयक अन्वेपण अपनी चरम सीमा तक पहुँच गए थे। इन लोगो ने हिन्दुओं, ईरानियो और यूनानियो से जो विद्याएँ सीखी थी, उनकी इन्होने बहुत अधिक उन्नति भी की थी। इन्होने बहुत से भ्रमात्मक सिद्धान्तो के भ्रम दूर किए थे, और उनमे जो दोष इन्हे दिखाई दिए थे, वे भी इन्होने निकाल दिए थे। बैरूनी को नई नई बाते जानने का बहुत शौक था, और केवल, इसी शौक के कारण उसने भारतवर्ष की अनेक विद्याएँ सीखी थी ।

अभी स्पष्ट रूप से यह पता नहीं चलता कि वह भारतवर्ष मे कब आया था और यहाँ कितने दिनो तक रहा था और कहाँ कहाँ घूमा था। हाँ, लोग यह जानते हैं कि वह सन् ४०८ हि० मे ख्वारिज्म से ग़जनी आया था, और सन् ४२३ हि० मे ग़जनी मे ही उसने अपनी किताबुल् हिन्द नाम की पुस्तक पूरी की थी। इससे तीन वर्ष पहले सन् ४२० हि० में

सुलतान महमूद गजनवी की मृत्यु हो चुकी थी। अब ऐसा जान पड़ता है कि वह सन् ४०८ हि० से सन् ४२२ हि० तक अर्थात् प्रायः बारह तेरह बरस तक यहाँ रहा था। फ़ारसी में दुर्रतुल अख़बार नाम की एक पुस्तक है जिसमें विज्ञान और दर्शन का इतिहास है। यह पुस्तक अली बिन जैद बेहक़ी (मृत्यु सन् ५६५ हि०) की अरबी पुस्तक ततिम्मा सफवानुल् हिकमत का अनुवाद है। उस पुस्तक में लिखा है- "इसने (बैरूनी) भारत में चालीस बरस बिताए थे।" यदि यह समय ठीक हो[१] तो मानों इसने पहले पहल सन् ३८३ हि० में यहाँ पैर रखा था, और उस समय तक ग़ज़नवी वंश का अस्तित्व भी नहीं था। पर बैरूनी के जीवन की और घटनाओं के सनों से मिलान करने पर इसका इतना पहले भारत में आना ठीक नही जान पड़ता । यद्यपि भारत में इसने पंजाब और सिन्ध से आगे यात्रा नही की, [२] पर किताबुलू हिन्द में इसने भारत का जो भूगोल दिया है, उसमें उसने पूरे भारत को नाप दिया है, और क़ानून मसऊदी नाम की दूसरी पुस्तक में, जो इसके थोड़े ही बरसों बाद लिखी थी, भारत के सभी बड़े बड़े नगरों के देशान्तर और अक्षांश दिए है।

[१] यह पुस्तक फ़रवरी १६२६ ई० से लाहौर की थोरिएन्टत कालिज सैगज़ीन के परिशिष्ट रूप में प्रकाशित होने लगी है। मूल पुस्तक पर उसका नाम केवल "दरविलाद" लिखा है। पर सम्पादक ने उक्त "ततिम्मा" से लेकर इस नाम के बाद "हिन्द" शब्द बढ़ा दिया है।

[२] किताबुल् हिन्द; पृ० ११ (लन्दन) ।

जो, हो, भारत में वह उस समय आया था, जब इस देश में सुलतान महमूद की चढ़ाइयों के कारण हलचल मची हुई थी। पर ठीक उसी समय विद्या और गुण का यह दूसरा सुलतान बहुत ही शान्ति और सुख से अकेला विद्या-विपयक विजय प्राप्त करने मे लगा हुआ था और इस राजनीतिक लड़ाई भिड़ाई और उपद्रव से मन ही मन कुढ़ रहा था।[१] जैसा कि डाक्टर जखाऊ ने लिखा है, उसने किताबुलू हिन्द लिखकर एक तो मुसलमानो को यह सौभाग्य प्रदान किया कि उनके धर्म के एक व्यक्ति ने ऐसी पुस्तक लिखी जिसने

यूनानी राजदूतो और चीनी यात्रियो के भारत सम्बन्धी वर्णनो को पुराना और रद्दी कर दिया; और दूसरी ओर भारत पर यह एहसान किया कि उसकी पुरानी संस्कृति, पुरानी विद्याओ और पुराने विचारो को संसार में स्थायी रहने दिया।

उस समय भारत को अपनी विद्याओ के सम्बन्ध मे जो अभिमान था, उसके विषय मे बैरूनी की एक बात याद रखने के योग्य है। वह लिखता है - "हिन्दुओ को अपने सिवा और लोगो का कुछ भी ज्ञान नहीं है। उनका यह पक्का विश्वास है कि हमारे देश के सिवा संसार मे और कोई देश नहीं है और न कोई दूसरी जाति इस संसार मे बसती है, और न हमारे सिवा और किसी के पास कोई विद्या है। यहाँ तक कि जब उनका खुरासान या फारस के किसी विद्वान का नाम बतलाया जाता है, तब वे उस नाम बतानेवाले को मूर्ख और अयोग्य समझते है।" फिर कहता है-"यदि ये लोग दूसरी जातियो से मिलें जुलें, तो उनका यह भ्रम दूर हो सकता है।" फिर कहता है- “पुराने समय के हिन्दू पंडित ऐसे नहीं थे। वे दूसरी जातियो से भी लाभ उठाने में कमी नहीं करते थे।

वराह मिहिर कहता है कि यूनानी या यवन लोग चाहे अपवित्र और म्लेच्छ हो, पर फिर भी उनकी विद्या के कारण उनका आदर करना चाहिए।" आगे चलकर बैरूनी कहता है- "जब तक मैंने भारतवासियो की भाषा नही सीखी थी, तब तक तो मैं उनके सामने शिष्यों की तरह बैठता था। पर जब मैंने उनकी भापा कुछ कुछ सीख ली और मैं उन्हें ज्योतिष् तथा गणित के नए नए सिद्धान्त और नई नई बातें बतलाने लगा, तब वे चकित हो गए और स्वयं मुझ से सीखने लगे और आश्चर्य से पूछने लगे कि तुम किस पंडित के शिष्य हो? फिर जब मैं उनकी विद्या सम्बन्धी योग्यता की त्रुटियाँ दिखलाने लगा तब वे मुझे जादूगर और परोक्षदर्शी समझने लगे और मुझे "विद्यासागर" कहने लगा।"[१]

[१] **बैरूनी की किताबुलू हिन्द की भूमिका ।**

बैरूनी सब से बड़ा काम यह किया कि हिन्दुओं और मसलमानों के बीच विद्या विषयक दूत का काम किया। उसने अरबों और ईरानियों को हिन्दुओं की विद्याओं का ज्ञान

कराया और हिन्दुओं को अरबों तथा ईरानियो के नए नए अन्वेषणों से परिचित कराया। उसने अरबी जाननेवालों के लिये संस्कृत से और संस्कृत जाननेवालो के लिये अरबी से पुस्तको का अनुवाद किया, और इस प्रकार उसने वह ऋण चुकाया जो भारत का बहुत दिनों से अरवी भाषा की विद्याओं और विज्ञानों पर चला आता था । उसने भारत के सम्धन्ध में तीन प्रकार की पस्तकें लिखीं। एक अरबी से संस्कृत में दूसरी संस्कृत से अरबी में और तीसरी भारतीय विद्याओं और सिद्धान्तों की छान बीन और जाँच पड़ताल के सम्बन्ध में।

बैरूनी ने भारतवासियों के लिये जो पुस्तकें लिखीं, उनकी सूची इस प्रकार है-

(१) भारतवर्ष के ज्योतिपियों के प्रश्नों के उत्तर ।

(२) काश्मीर के पंडितों के दूस प्रश्नों के उत्तर और उनके सन्देहों का विवरण ।

(३) इस्तरलाब या नक्षत्रयन्त्र पर एक निबन्ध ।

(४) बतलीमूस की "मजस्ती" का अनुवाद ।

(५) उक्लैदिस या यूक्लिड की समस्याएँ।

(६) गणित ज्योतिष् पर एक पुस्तक ।

[१] **किताबुल् हिन्द; पृ० १२ ।**

इसने दूसरे प्रकार की जो पुस्तक अरबी जाननेवालो के लिये लिखी थी, वे इस प्रकार हैं-

(१) किताबुल् हिन्द, भारतवासियों के विश्वासो, विद्याओ और
अन्वेषणो का संक्षिप्त वर्णन ।

(२) ब्रह्मगुप्त के पुस्तक का अरबी में अनुवाद ।

(३) ब्रह्मगुप्त के ब्रह्म (स्फुट) सिद्धान्त का अनुवाद ।

(४) चन्द्र ग्रहण और सूर्य ग्रहण के सम्बन्ध मे भारतीय अन्वेषणो का अनुवाद ।

(५) भारत की अंक विद्या की पुस्तक ।

(६) गणित सिखलाने के लिये भारत के चिह्नों का वर्णन ।

(७) भारतीय त्रैराशिक का अनुवाद ।

(८) सांख्य का अनुवाद ।

(९) पतंजलि का अनुवाद ।

(१०) वराह मिहिर की लघुजातक नामक पुस्तक का अनुवाद ।

(११) बसुदेव के फिर से संसार में आने के सम्बन्ध मे एक निबन्ध । (इससे कदाचित् लेखक का अभिप्राय श्रीकृष्ण के अवतार से है ।) आदि आदि ।

तीसरे प्रकार की पुस्तके ये हैं-

(१) सिद्धान्त आर्यभट और खंडाखंड आदि भारतीय ज्योतिष् की पुस्तको को संस्कृत से अरबी मे जो अनुवाद हुए थे, उन अनुवादो में अनुवाद को अथवा मूल मे लेखको से जो भूलें हुई थीं, एक पुस्तक से वे भूले इसने ठीक की थी ।

(२) सिद्धान्त पर पॉच सौ पृष्ठों की एक पुस्तक लिखी थी, जिसका नाम "जवामि उल् मौजूद व खवातिरुल् हुनूद" है।

(३) एक निबन्ध इस विषय पर लिखा था कि भारत में अंकों के लिखने की जो प्रथा है, उससे अरबी में अंक लिखने की प्रथा अधिक शुद्ध है।

(४) एक पुस्तक में भारत के ज्योतिष्सम्बन्धी सिद्धान्तों की भूलें सुधारी थीं। उसका नाम था "फिल् इरशाद इला तसहीहिल् मबादी अलल् नमूदारात ।" कानून मसऊदी के पाँचवें प्रकरण में बैरूनी ने भारत के नीचे लिखे नगरों का अक्षांश और देशान्तर बतलाया है- लोहारो (लाहौर), ओस्तान (अवस्थान, जो काश्मीर का राज नगर था ।) नेपाल (कहता है कि यह भारत और तिब्बत के बीच में एक रक्षित स्थान है।), वैहिन्द (यह सिन्ध की तराई में भारत का एक प्रसिद्ध नगर था ।), स्यालकोट, मुलतान, तेज (बलोचिस्तान का बन्दरगाह), सोमनाथ, नहलवाला (नहरवाला), खम्भात, विहार, (मालवा) उज्जैन, भड़ौच (मध्य भारत में) कालिंजर, माहोरा (मथुरा), कन्नौज (कहता है कि कन्नौज का राज्य देश के मध्य भाग से है। यहाँ बड़े बड़े राजाओं की राजधानी थी। यह गंगा के पश्चिम है।), मारी

(यह कन्नौज के राज्य की आजकल की राजधानी है।) ग्वालियर का किला, लोबरानी, देबल (सिन्ध का बन्दरगाह), खजुराहा, अयोध्या, वनारस (बनारस; कहता है कि यह पवित्र नगर है और आजकल यहीं हिन्दुओं की सब विद्याओं का केन्द्र है।), लंका टापू, जमकोट, तंजौर, सिंहलदीप, मनकरी (महानगरी)।

भारत में बैरूनी ने एक और बहुत बड़ा काम यह किया था कि पृथ्वी की गति नापी थी। अरबों में मामूँ रशीद ने हिजरी तीसरी शताब्दी के आरम्भ में पृथ्वी की गति की नाप कराई थी। अब उस बात को दो सौ बरस बीत चुके थे। बैरूनी को इस प्रकार की बातों की जाँच करने का बहुत शौक था। पर इस काम के लिये ख्वारिज्म या अफगानिस्तान मे उसको ऐसा मौके का मैदान नहीं मिला था। सयोग से भारत से उसको ऐसा मैदान मिल गया, जिसके एक ओर पहाड़ भी था। इस लिये उसने इसी मैदान में अपने हन्दसी (इजीनियरी) के हिसाब से पृथ्वी के घेरे का हिसाब लगाया था।[१]

ज्योतिष और आकाश के नक्षत्रो की विद्या के सम्बन्ध में मुसलमानों पर भारत और संस्कृत का जो ऋण था, वह ऋण उन्होने अकबर और मुहम्मद शाह के समय में चुकाया था। "जीचअलगबेगी" नाम की एक पुस्तक थी, जिसमे वे सब बातें दी हुई थीं जो मुसलमानो ने आकाश के नक्षत्रो के सम्बन्ध से जॉच करके जानी थी; और मरागा नामक स्थान मे तैमूर वंश की जो वेधशाला थी, उसमे जिन नई बातो का पता लगा था, उनका भी उस पुस्तक मे वर्णन था। अकबर ने उस पुस्तक का संस्कृत में अनुवाद कराया था।[२] फिर मुहम्मद शाह के समय से जब राजा जयसिह ने दिल्ली, वनारस और जयपुर में वेधशालाएँ बनवाई, तब अरबी की ज्योतिष विद्या की अच्छी अच्छी पुस्तको का संस्कृत में अनुवाद कराया था ।[३]

[१] कानून मसऊदी। इसकी हाथ की लिखी प्रति मैने अलीगढ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के पुस्तकालय मे देखी थी ।

[२] आईन अकबरी ।

[३] सबहतुल् मरजान फी तारीखे हिन्दोस्तान; आज़ाद बिलग्रामी ।

गम्भीर खेल

विद्या और विज्ञान की ठोस पारिभाषिक वाते और विषयों के विवेचन सुनते सुनते शायद उपस्थित सज्जनो की तबीयत घबरा गई होगी; इस लिये अन्त मे खेल की बिसात बिछाता हूँ, जिसमे थोड़ी देर तक कहनेवाले और सुननेवाले दोनों का जी बहले । संसार में दो खेल बहुत प्रसिद्ध हैं- एक शतरंज और दूसरा चौसर । ये दोनों ही खेल भारतवासियों के दिमाग से निकले हैं। अरब लेखकों में से सब से बढ़कर याकूबी ने इस विषय पर लिखा है। उसने बतलाया है कि ये कोरे खेल ही नहीं हैं, बल्कि गणित और नक्षत्र विद्या के सूक्ष्म सिद्धान्तों पर इसका आधार है फिर उसने इन सिद्धान्तों का विवेचन करते हुए बतलाया है कि यह विसात वास्तव में समय के परिवर्त्तन का चित्र है। चौसर की बिसात, चौसर के चिह्नों और चौसर के खेल में आकाश की राशियों, ३६० दिनों, हर दिन के २४ घंटों, १२ घंटे के दिन और १२ घंटों की रात का पूरा चित्र है।

शतरंज का आधार कुल ६४ घरों, फिर ३२, फिर १६, फिर ८ और फिर ४ घरों पर है। लेकिन गणित के इन दाँव-पेचों के सिवा इस बात पर बहुत ही कम विचार किया गया है कि ये दोनों खेल भारत की दो धार्मिक या दार्शनिक विचार-धाराओं (शाखाओं) की सूचक हैं। चौसर इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य सब प्रकार से विवश है और आकाश तथा नक्षत्रों के चक्कर जो कुछ चाहते हैं, वही उससे कराते हैं। संसार क्षेत्र में कोई आदमी स्वयं अपनी इच्छा और विचार से पैर नहीं उठाता, बल्कि वह कोई और ही है, जो उससे बलपूर्वक पैर उठवाता है। हमारा लाभ और हानि किसी दूसरे के हाथ में है। इसके विरुद्ध शतरंज इस बात का प्रमाण है कि संसार में जो कुछ होता है, वह मनुष्य अपने प्रयत्नों का ही फल है। सफलता और विफलता, दौड़ धूप पर निर्भर है। का और किसी प्रकार दोनों उसकी बुद्धि, उसकी हार और जीत, विचार, समझ बूझ और तात्पर्य यह कि संसार की जिन समस्याओं निर्णय नहीं हो सकता, ये दोनों खेल उन समस्याओं के विद्वत्तापूर्ण निर्णय हैं।

यक़ूबी ने लिखा है कि पहले एक पंडित ने चौसर बनाकर एक राजा की भेंट की थी; और इसके द्वारा भाग्य और मनुष्य की परवशता के सिद्वान्त की पुष्टि की थी। इसके बाद एक दूसरे पंडित ने शतरंज बनाकर राजा को भेंट की, जिससे यह सिद्ध होता था कि

मनुष्य के हाथ मे ही सब कुछ है; वह जो चाहे, वह कर सकता है। मतलव यह कि इन दोनो खेला ने यह सिद्ध कर दिया कि जिस प्रकार मनुष्य अपने गम्भीर तर्कों और दार्शनिक विचारो की सहायता से भाग्य और पराक्रम के प्रश्न का निपटारा नहीं कर सका है, उसी प्रकार खेलो के तर्कों से भी वह प्रकृति के इस खेल का पता नहीं लगा सकता ।

शतरंज का खेल निकालनेवाले ने राजा बारानी (इस सम्वन्ध के दो प्रवदा है) से जो पुरस्कार माँगा था वह भी हिसाब का एक बहुत ही विलक्षण खेल है। उसने यह पुरस्कार माँगा था कि शतरंज के पहले खाने या घर मे गेहूँ का एक दाना रखा जाय, दूसरे मे दो दाने रखे जायँ, तीसरे मे चार और चौथे में आठ रखे जायें; और इसी प्रकार हर खाने या घर में उससे पहले के घर के दानो से दूने दाने रखे जायँ, और इस प्रकार सत्र घर पूरे कर दिए जायँ । यो देखने मे राजा को यह पुरस्कार बहुत साधारण जान पड़ा; पर जब इसका हिसाब लगाया गया, तब इतनी बड़ी रकम हो गई कि उतनी रकम देना राजा के बस का काम नही था । याकूबी और मसऊदी ने इसका पूरा हिसाब लगा कर बतलाया है।[१] यदि वह पूरा पूरा हिसाब यहाँ दिया जाय, तो यह खेल की बिसात गणित की पाठशाला हो जायगी ।

[१] इसका पूरा वर्णन याकूबी के पहले खड के पृ० ६८-१०५ में दिया है। साथ ही देखो मसऊदी, पहला खंड; पृ० १६० (लीडन) ।

ये दोनो खेल हिजरी पहली शताब्दी से ही ईरान से अरब पहुँच चुके थे; और इनमे से चौसर तो शायद इससे भी और पहले ही पहुँच चुकी थी; क्योंकि हदीसों में इसका नाम आया है। और इसके बाद दूसरी शताब्दी में शायद अब्बासी वंश के शासन के समय शतरंज का भी अरब में प्रचार हुआ था। इस सम्बन्ध में इस्लाम के बड़े बड़े विद्वानों की हिजरी दूसरी शताब्दी की सम्मितियाँ मिलती हैं। स्वयं शतरंज शब्द के सम्बन्ध में ईरानवालों का यह कहना है कि यह शब्द हमारे यहाँ का है और इसका मूल हश्तरंज है।[१] क्योंकि इसमें आठ खाने या घर होते हैं। पर यह ईरानियों की खुली जबरदस्ती है।

शतरंज नाम भी भारतवासियों का ही रखा हुआ है। इसका मूल चतुरंग[२] (चार अंगोंवाला) है। फिर यद्यपि इसको मोहरो का नाम शाह (बादशाह), फरजीन (वजीर), और प्यादा आदि रखकर ईरानियों ने उसपर अधिकार कर लिया है, लेकिन फिर भी दो चीजें ऐसी बची हुई हैं जिनसे यह बात पूरी तरह से सिद्ध हो जाती है कि यह खेल भारत का ही है। ये दोनों चीजें हाथी और रुख हैं। हाथी तो खैर भारत का चिह्न ही है; पर रुख नाम की सवारी भी, जिसका संस्कृत रूप रथ है, भारत के बाहर नहीं मिल सकती। जाँच करनेवाले बड़े बड़े विद्वानों का कहना है कि चतुरंग के खेल का उल्लेख रामायण आदि में भी मिलता है।[३] ईरानियों के सिवा यूनानियों, रूमियों, मिस्रियो या यलियों आदि दूसरी पुरानी जातियो ने भी इस खेल पर अपना अधिकार जतलाया; पर जाँच के न्यायालय में भारत के सिवा और किसी का अधिकार नहीं माना गया।[४] साथ ही यह बात भी भूल नहीं जानी चाहिए कि चाहे पहले ईरान में इसका नाम हश्त-रंज रहा हो और चाहे भारत में चतुरंग रहा हो, पर अरबी ने इन्ही अक्षरो को उलट फेरकर अपनी भाषा मे जो नाम (शतरंज) रखा, वही नाम इस समय ईरान में भी है और भारत मे भी ।

[१] याकूबी; पहला खंड; पृ० १०१ (लीडन)।

[२] सवाउस् सवील फी सारफतिल् मौलिद बद्दखील; प्रो० (अब डाक्टर) आर्नल्ड ।

[३] देखो एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका ६ठा खंड पृ० १०० "चेस" (Chess) शब्द ।

[४] उक्त ग्रन्थ, खंड और पृष्ठ ।

धार्मिक सम्बन्ध

लेखक और ग्रन्थ जिनका आधार लिया गया है

इस विषय में जो बातें कही जायँगी, वे उन सब ग्रन्थों से तो ली ही गई है, जिनके नाम पहले आ चुके है; उनके सिवा नीचे लिखी और चार नई पुस्तकें भी हैं।

(१) हिजरी दूसरी शताब्दी में यहिया बिन खालिद बरमकी ने भारतवर्ष के सब धर्मों का एक विवरण तैयार कराया था, जिसे संक्षिप्त करके इब्न नदीम ने अपनी किताबुलू फेहरिस्त में मिला लिया था। इस समय संसार में उसका यही संक्षिप्त रूप मिलता है।

(२) बैतुल् मुकद्दस अर्थात् जेरूसलम के एक अरब विद्वान्, दार्शनिक, व्याख्याता और इतिहास-लेखक मुतहहर बिन ताहिर मुकद्दसी (सन् ३३५ हि०) ने किताबुल्बदअ वत्तारीख नाम की एक बहुत अच्छी पुस्तक लिखी थी, जो उसके स्मारक स्वरूप है। यह पुस्तक सन् १८९९ ई० में पेरिस छः खंडो में प्रकाशित हुई थी। इसमें एक प्रकरण भारत के धर्मों के सम्बन्ध में भी है।

(३) तीसरी चीज़ अब्बुल् अब्बास ईरान शहरी की किताबु इयानात है, जिसकी मूल प्रति तो इस समय कहीं नहीं मिलती, पर जिसके उद्धरण बैरूनी की किताब उल् हिन्द में हैं। इसमें अधिकतर बौद्धों के सम्बन्ध की बातें थीं।

(४) इन सब से बढ़कर महत्व की पुस्तक अब्दुलकरीम शहरिस्तानी (सन् ४६९-५४९ हि०) की "मिलल व नहल" है, जो कई बार युरोप, मिस्र और बम्बई में छप चुकी है। 7

इनके सिवा अब्दुल काहर बग़दादी (सन् ४२९ हि०; १०३७ ई०) की मिस्र में छपी हुई “अल् फिरक बैनल् फिरक" (इस्लामी सम्प्रदायों का इतिहास), और मुर्त्तजा जैदी की किताबुल् मोतजिला से, जिसे प्रो० आर्नल्ड ने हैदराबाद के दायरतुल् मआरफ से प्रकाशित कराया था, कई भिन्न भिन्न विषय लिए गए हैं।

अरब और तुर्क, अफगान तथा मुग़ल विजेताओं में अन्तर

आगे बढ़ने से पहले एक बात की ओर पाठकों का ध्यान दिलाना आवश्यक जान पड़ता है। भारत मे जो तुर्क, अफगान और मुग़ल विजेता आए, वे सब मुसलमान थे; इस लिये उनकी सभी कार्रवाइयो का जिम्मेदार इस्लाम समझा जाता है। पर हमे सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जो तुर्क विजेता भारत में आए थे, उनके कुछ खास अफसरो या पदाधिकारियो को छोड़कर और लोग जाति की सामूहिक दृष्टि से इस्लाम के प्रतिनिधि नहीं थे और न उनके राजकीय सिद्धान्तो का इस्लाम की शासन प्रणाली या शासन

सिद्धान्तो के साथ कोई सम्बन्ध था। उनके अधिकतर तुर्क पदाधिकारी नए बनाए हुए मुसलमान दास थे, जो इस्लाम के शान्ति और युद्ध के नियम शायद जानते भी नहीं थे।

जिस देश में आकर ग़जनवी वंश का राज्य स्थापित हुआ था, वह देश इस्लामो राज्य की सीमाओं का सब से आखिरी कोना था । वहाँ इस्लाम ने अभी अच्छी तरह पैर भी नही जमाया था । सुल्तान मह मूद की सेना में जो सिपाही भरती होकर आए थे, वे राजनी, खिलजी, तुर्की और अफगानो के भिन्न भिन्न वंशो या दलो के थे। उसकी सेना से कुछ हिन्दू भी मिले हुए थे।[१] तुर्क कबीलो की यह दशा थी कि वे प्रायः मुसलमान नही थे। वे दासो के रूप मे हज्जारो का संख्या में बिकते थे और बादशाह या अमीर लोग उनको मोल लेकर और मुसलमान बनाकर सेना में भरती करते थे। अथवा वे लोग आप लूट मार करने की इच्छा से मध्य एशिया से निकलकर इस्लामी देशो में चले आते थे, मुसलमान होकर भिन्न भिन्न बादशाहों या अमीरों की सेना में भरती होते थे और आगे चलकर सेना में बड़े बड़े पद पाते थे, यहाँ तक कि बादशाह भी बन जाते थे। अलप्तगीन और सुबक्तगीन, जिन्होंने इस गजनवी राज्य की जड़ जमाई थी, इसी प्रकार के तुर्क दास थे। सुलतान गोरी के उत्तराधिकारी अल्तमश आदि भी थे। इसके कुछ ही बरसों के बाद जिन सलजूकी तुर्को ने विशाल सलजू की राज्य स्थापित किया था, वे इसी समय में इस्लामी देश में आकर मुसलमान हुए थे। सुलतान महमूद की सेना की भी यही दशा थी। तुर्किस्तान और ट्रान्स-काकेशिया के तुर्क रजाकार[१] आकर उसकी सेना में मिल गए थे, जिनमें से अधिक लोग प्रायः उसी समय मुसलमान हुए थे ।[२]

[१] कामिल इब्न असीर, नवाँ खड; पृ० १३५ (बरेल, लीडन, सन् १८६२ ई०)

मुगल उस समय तक मुसलमान ही नहीं हुए थे। वे हिजरी सातवीं शताब्दी तक काफिर समझे जाते थे। अलाउद्दीन खिलजी (मृत्यु सन् ७१६ हि०) के समय तक सेना में मुग़ल लोग मुसलमान बनाकर नौकर रखे जाते थे। अलाउद्दीन खिलजी की आज्ञा से एक बार एक ही समय में चौदह पन्द्रह हजार नए बनाए हुए मुसलमान सिपाही मारे गए थे ।[३]

[१] **तारीख फरिश्ता ; पहला खंड; पृ० २१-३२ (नवलकिशोर प्रेस)**

[२] **उक्त ग्रन्थ और खंड; पृ०**

[३] **उक्त ग्रन्थ और खंड; पृ० २४ (नवलकिशोर) १२० (नवल किशोर)**

यद्यपि अफगानों के बड़े बड़े नगरों में इस्लाम फैल गया था, पर स्वयं अफ़ग़ान अभीतक मुसलमान नहीं हुए थे और वे काफिर ही समझे जाते थे।[१] यद्यपि खास काबुल का बादशाह हिजरी तीसरी शताब्दी के आरम्भ में अर्थात् राजनवियों से सौ बरस पहले मुसलमान हुआ था, [२] लेकिन अफगानो के प्रायः कबीले या दल महमूद गजनवी के ही समय मे मुसलमान होने लगे थे ।[३]

इनके सिवा गोरी कबीले हिजरी चौथी शताब्दी के मध्य तक, अर्थात् ग़ज़नवियो की उत्पत्ति के बाद तक, मुसलमान नहीं हुए थे।[४] और सुलतान महमूद से पहले उस समय तक उन प्रान्तो मे न तो इस्लामी पाठशालाएं थी न इस्लामी शिक्षाओ का प्रचार हुआ था और न मुसलमान विद्वान फैले थे। इन्ही सब कारणो से उन जातियो के उस समय के रंग ढंग, युद्ध सम्बन्धी सिद्धान्तो और शासन-प्रणाली को इस्लामी नहीं कहा जा सकता ।

इसके विरुद्ध जो अरब विजेता एक सौ बरस के अन्दर ही अन्दर एक ओर शाम की सीमा पार कर के मिस्र और उत्तरी अफ्रिका के रास्ते स्पेन तक पहुँच चुके थे और दूसरी ओर इराक के रास्से से खुरासान तक और ईरान तथा तुर्किस्तान पार कर के एक ओर काशगर और दूसरी ओर सिन्ध तक जीत चुके थे, ऐसे लोग थे जिनमे इस्लाम की शिक्षाओ का पूरा पूरा प्रचार था। युद्ध के सम्बन्ध मे इस्लाम के जो नियस थे, उनका वे पूरा पूरा पालन करते थे। कही कही अफसरो में कुछ ऐसे वृद्ध भी थे जो इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद साहब के साथ भी रह चुके थे; और ऐसे तो बहुत से लोग थे जिन्होंने उनके समय में होने का सौभाग्य प्राप्त किया था। इस लिये उन लोगों का आचार व्यवहार और शासन की प्रणाली तथा सिद्धान्त खैबर से आनेवाली जातियों के सिद्धान्तो आदि से बिलकुल अलग थे।

[१] **कामिल इब्न असीर; नवाँ खड; पृ० २१८ ।**

[२] **फुतू हुल् बुल्दान; बिलाजुरी, पृ० ४०२ (लीडन) ।**

[३] **कामिल इब्न असीर; नवाँ खंड; पृ० २१८ (लीडन) ।**

[४] **इब्न होकल का यात्रा विवरण; पृ० ३६३ । कामिल इब्न असीर; नवाँ खंड पृ० १५६; (लीडन) और तारीख बैहकी; पृ० १२७ (कलकत्ते से प्रकाशित) ।**

सन् ९३ हि० में कुतैबा ने समरकन्द जीता था। उस समय उसके आस पास के प्रान्तों के रहनेवाले लोग बौद्ध थे। कतीबा ने किसी कारण से (कदाचित् आर्थिक कठिनता के कारण) विवश होकर उन बौद्धों की मूर्त्तियों को जलाकर उनसे सोना और चॉदी निकालना आवश्यक समझा। पर इसके लिये उसने उन मूर्त्तियों को जबरदस्ती तोड़कर जला नहीं दिया, बल्कि सफ़ाई के साथ सन्धि की शर्तों में एक शर्त यह भी रख ली थी कि उन मूत्तियों पर मुसलमानों का अधिकार हो जायगा और वे उसे जिस प्रकार चाहेंगे, काम में ला सकेंगे। दूसरे पक्ष ने यह बात मान भी ली थी। पर जब मूत्तियों को जलाने का समय आया, तब तुर्क बादशाह ने कहा कि मुझ पर आपका उपकार है; इस लिये मैं पहले से ही आपको सचेत कर देना चाहता हूँ कि आप इन मूर्तियों को न जलावें । क्योकि इनमें से कुछ मूत्तियां ऐसी हैं जो यदि जलाई जायँगी, तो अवश्य ही आपका नाश हो जायगा । क्रुतैबा ने कहा कि यदि ऐसा है, तो मैं इन्हें स्वयं अपने हाथ से जलाऊँगा। इसके बाद उसने आप ही अपने हाथ से उन मूर्तियो में आग लगाई; और जब उसका कोई बुरा फल नहीं हुआ, तब बहुत से तुर्कों का मूर्त्ति-पूजा पर से विश्वास हट गया और वे मुसलमान हो गए ।[१]

[१] **इस ऐतिहासिक घटना का विस्तृत वर्णन तारीख तबरी, खंड ८, पृ० १२४६ (लीडन) और कासिल इब्न** असीर**, खंड ४, पृ०४०४ (लीडन) में है। और आख़िर का अंश फुतूहुल् बुल्दान, बिलाजुरी (लीडन) पृ० ४२१ में है।**

युद्ध मे संयोग से जो कुछ विशेष घटनाएँ हो जाती हैं या अवसर आ जाते हैं, उनको छोड़कर अबूचक्र, उमर, उस्मान और अली इन खलीफाओ और मुहम्मद साहब के साथियो के समय मे जिन लोगो से कोई समझौता या सन्धि हुई, उनके उपासना-मन्दिरो को कभी अरबो ने ठेस भी न लगने दी । ईरान के अग्निमन्दिर उसी प्रकार प्रज्वलित रहे। पैलेस्टाइन, शाम, मिस्त्र और इराक के मन्दिर, जो मूर्तियो से पटे पड़े थे, उसी प्रकार शखो की ध्वनियों से गूंजते रहे, यद्यपि ये नए बनाए हुए मुसलमान तुर्क विजेता उनसे अधिक दीन इस्लाम के जोशीले गाजी और शरा के सच्चे माननेवाले नहीं थे और न हो सकते थे।

मुसलमानो को छोड़कर यदि दूसरी जातियो से अरब लोग जजिया लेते थे, तो उसके सिवा वे उनसे केवल उपज पर खिराज या राजकर ही लेते थे। इन दोनो करो के सिवा वे उन लोगो से और कोई कर या महसूल नही लेते थे। पर तुर्क, अफगान और मुगल लोग अपनी धार्मिकता के आवेश में आकर मुसलमानो के सिवा दूसरी प्रजा से जो जजिया वसूल करते थे, उसके साथ ही वे और तरह के उससे दसगुने महसूल या कर अपनी मुसलमान और गैर- मुसलमान प्रजा से लेते थे। पर इस्लाम के शासन सिद्धान्तो में, जिसे अरब लोग बराबर मानते रहे और जिनपर वे बहुत दिनो तके चलते रहे, केवल दो ही प्रकार के महसूल या कर थे। मुसलमानो से जकात (सम्मत्ति का कुछ अंश) और अश्र (पैदावार का दसवाँ भाग) और गैर-मुसलमानो से जजिया और खिराज ।

वास्तविक बात यह है कि इस्लाम ने संसार की समस्त जातियो को चार भागो मे बाँटा था (१) मुसलमान (२) अहले किताब या धार्मिक ग्रन्थोवाले; अर्थात् वे लोग जो किसी ईश्वरीय धार्मिक शिक्षा या सम्प्रदाय के माननेवाले हैं, जिसका उल्लेख कुरान मे है।

(३) अहले किताब मुशाबह (अहले किताब के तुल्य) ऐसी जातियाँ जो यह कहती तो हैं कि हम किसी 'ईश्वरीय धार्मिक शिक्षा के अनुसार चलती हैं, पर जिनका कुरान मे नाम नहीं आया है। इस लिये वे जातियाँ निश्चित रूप से अहले किताब तो नहीं मानी जा सकती, पर उनके सम्बन्ध में इस प्रकार का अनुमान अवश्य होता है। और

(४) कुफ्फार या वह जातियों जो किसी ईश्वरीय धार्मिक शिक्षा के अनुसार नहीं चलतीं। इस्लाम ने अपने इस्लामी शासन में बिना जाति और देश का विचार किए समस्त

मुसलमानो के समान अधिकार माने हैं। अहले किताब के सम्बन्ध मे यह कहा गया है कि जजिया चुकाने के बाद उन्हें मुसलमानों के सब प्रकार के अधिकार प्राप्त होते है। उनका जबह किया हुआ जानवर खाया जा सकता है; उनकी लड़कियो से मुसलमान लोग निकाह कर सकते हैं; और उनके जीवन, धन, सम्पत्ति, धर्म और मन्दिरों आदि की रक्षा का राज्य जिम्मेदार होता है। तीसरे वर्ग अर्थात् अहल किताब के तुल्य लोगो को भी सब प्रकार के राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते हैं; और वे केवल अहले किताब के समान ही नहीं बल्कि स्वयं मुसलमानों के भी समान होते हैं। उनके सम्बन्ध में केवल यही बन्धन है कि मुसलमान उनका जबह किया हुआ जानवर नहीं खायँगे और न उनकी लड़- कियो से निकाह कर सकेंगे। जब किसी दूसरी जाति पर इस्लाम का राज्य स्थापित हो, तब इस आधार पर सबसे पहला कर्त्तव्य यह है कि यह देखा जाय कि वह जातिं इन चार विभागो से किस विभाग में आती है। पर दुःख है कि खैबरवाली जातियाँ अन्त तक इस बात का निर्णय न कर सकीं।

एक ओर तो ये लोग हिन्दुओं से जजिया लेने के लिये आग्रह करते थे, जो केवल अहले किताब या कुरान में लिखी हुई जातियों और उनके तुल्य तीसरे वर्ग की जातियो से लिया जा सकता था; और दूसरी ओर वे उनके मन्दिरों और धार्मिक अधिकारों की रक्षा का वचन नही देते थे, जजिया लेने के बाद जिसका वचन देना और जिसकी रक्षा का भार लेना आवश्यक हो जाता था। यहाँ तक कि सुलतान अलाउद्दीन खिलजी (सन् ६९६ हि०) के समय तक भी इस बात का निर्णय नहीं हो सका था कि हिन्दुओ की गिनती ऊपर के चार विभागो में से किस विभाग में की जाय।[१] और यह सारी दुर्दशा इसी प्रकार की दो-रुखी कार्रवाई के कारण होती थी। पर अरब लोगों ने ज्योही सिन्ध मे पैर रखा, त्योही इस बात का तुरन्त निर्णय कर दिया कि इस्लामी राज्य मे हिन्दुओ का स्थान इन चारो विभागो में से किस विभाग में है।

अरब विजेता हिन्दुओं को अहले-किताब के तुल्य समझते थे ।

सिन्ध को जीतता हुआ जब अरब सेनापति मुहम्मद बिन कासिम सिन्ध के प्रसिद्ध नगर अलरोर (अलोर) मे पहुँचा, तब नगर- निवासियो ने कई महीनो तक चढ़ाई करनेवालो का बहुत जोरो से सामन किया। पर पीछे से मेल कर लिया और उसमे दो शर्तें सामने रखी । एक तो यह कि नगर के किसी आदमी की हत्या न की जाय; और दूसरी यह कि हमारे मन्दिरो पर किसी प्रकार की विपत्ति न आने पावे। मुहम्मद बिन कासिम ने जब इन शर्तों को मंजूर किया, तब जो शब्द लिखे थे, उनका आशय इस प्रकार है-

"भारतवर्ष के मन्दिर भी ईसाइयो और यहूदियो के उपा- सना-मन्दिरो और मजूसो या अग्निपूजकों के अग्निमन्दिरो के ही समान हैं।".

[१] तारीख फीरोजशाही; जियाए बरनी; पृ० २६०-६१ (कलकत्ता) और तारीख तरिश्ता ; पृ० ११० (नवल किशोर) ।

सिन्ध के सब से पुराने अरबी इतिहास के फ़ारसी अनुवाद चचनामे में यह घटना इस प्रकार लिखी गई है-

"मुहम्मद बिन क़ासिम ने बरहमनाबाद (सिन्ध) के लोगों की प्रार्थना मान ली और उनको आज्ञा दी कि वे सिन्ध के इस इस्लामी राज्य में उसी हैसियत में रहें, जिस हैसियत में इराक़ और शाम के यहूदी, ईसाई और पारसी रहते हैं।"[१]

इस प्रकार एक अरब विजेता ने स्पष्ट रूप से इस बात की घोषणा कर दो थी कि हिन्दुओं को मुसलमानों के राज्य में वही अधिकार प्राप्त हैं, जो इस्लामी क़ानून के अनुसार प्रायः किसी स्वर्गीय धार्मिक शिक्षा के अनुयायी लोग या अहले किताब को प्राप्त है। उसने उनके मन्दिरों को भी वही स्थान दिया था, जो इस प्रकार के अहले-किताब या उनके तुल्य जातियों के मन्दिरों या उपासनागृहों को इस्लाम के क़ानून के अनुसार प्राप्त है। सिन्ध की विजयो के इतिहासो से पता चलता है कि अरब विजेताओ ने अपनी शर्तों का पूरा पूरा ध्यान रखा था। बौद्ध धर्म के एक अनुयायी ने एक अवसर पर एक हिन्दू राजा को परामर्श दिया था-

"हम भली भाँति जानते हैं कि मुहम्मद क़ासिम के पास हज्जाज का इस आशय का आज्ञापत्र है कि जो शरण माँगे उसको शरण दो । इस लिये हमको विश्वास है कि आप यह उचित समकेंगे कि हम उससे सन्धि कर लें; क्योकि अरब लोग ईमानदार हैं और एक बार जो कुछ निश्चय कर लेते हैं, उसका सदा पालन करते हैं।"[२]

[१] **चचनासा; ईलियट पहला खंड; पृ० १८६ ।**

[२] **चचनामा; ईलियट पहला खंड; पृ० १५६ ।**

सिन्ध का पहला स्थान देबल का बन्दरगाह था, जिसपर अरबा ने आक्रमण किया। वहाँ का सबसे ऊँचा भवन बौद्धों का मन्दिर था। मुहम्मद क़ासिम ने किलेवालो को नगर का फाटक खोलने पर विवश करने के लिये मन्दिर के सबसे ऊँचे कँगूरे पर, जो बाहर से दिखलाई पड़ता था, तोप का गोला फेंका। पर जब नगर का फाटक खुल गया, तब उसने वह मन्दिर नष्ट नहीं किया। यहाँ तक कि बौद्धों के नष्ट हो जाने के बाद भी हिजरी तीसरी शताब्दी तक यह मन्दिर बचा था। खलीफा मोतसिम (सन् २१८-२७ हि०) के समय में इसका एक भाग जेलखाने के काम में लाया गया था ।[१] मुहम्मद कासिम ने स्वयं इस नगर मे अपनी अलग मसजिद बनवाई थी।[२] इसी प्रकार जब उसने नैरूँ भी जीत लिया, तब वहाँ भी मन्दिर के सामने अपनी अलग मसजिद बनवाई ।[३]

[१] **बिला जुरी; पृ० ४३७।**

[२] **उक्त ग्रन्थ और पृ० ।**

[३] **चचनामा; इलियट; पृ० १५८ ।**

सुलतान का मन्दिर

इसी प्रकार मुलतान का विशाल मन्दिर भी, नगर पर अरबो का अधिकार हो जाने के बाद भी बल्कि अरबो के तीन सौ बरसो के शासन काल मे भी, ज्यो का त्यो बना रहा और तीन शताब्दियो तक बराबर अरब यात्री उसे देखने के लिये बहुत शौक से जाते थे।

जिस अन्तिम व्यक्ति ने इसका वर्णन किया है (बुशारी) वह सन् ३७५ हि० के लगभग इसे देख गया है। अरबवालो ने इस मन्दिर से राज- नीतिक और आर्थिक दोनो प्रकार के लाभ उठाए। राजनीतिक लाभ तो यह उठाया कि जब कोई राजा मुलतान पर चढ़ाई करने की तैयारी करता था, तब अरब अमीर उसको यह कहकर डरा देता था कि यदि तुमने इधर आने का विचार किया, तो हम यह मन्दिर मिट्टी मे मिला देंगे। यह सुनकर चढ़ाई करनेवाले लोग रुक जाते थे। और आर्थिक लाभ यह उठाया कि सारे भारत से लोग इस मन्दिर में दर्शन करने के लिये आते थे; और यहाँ आकर दक्षिणा और भेंट आदि चढ़ाते थे । अरब अमीर वह धन अपने खजाने में रख लेते थे और उसीसे इस मन्दिर के सब खर्च चलाते थे और पुजारियों के वेतन आदि चुकाते थे ।[१]

अरब यात्रियों ने मुलतान के इस मन्दिर का पूरा पूरा वर्णन किया है। इस मन्दिर में बहुत अधिक चाँदी और सोना था। लोग दो दो सा अशर्फियों का अगर यहाँ जलाने के लिये भेजते थे; और वह अगर पुजारी लोग अरब व्यापारियों के हाथ बेच डालते थे ।[२] इस मन्दिर की मूत्ति भी बहुत अधिक बहुमूल्य थी। उसकी दोनों आँखों की जगह पर बहुमूल्य रत्न जड़े थे और सिर पर सोने का मुकुट था ।[३] तात्पर्य यह कि प्रायाः सन् ३७५ हि० तक अरब अमीरों के शासनकाल में यह मन्दिर ज्यों का त्यो बचा था, बल्कि पूरी रौनक पर था। पर जब अबू रैहान बैरूनी सन् ४०० हि० के बाद यहाँ आया तब उसने देखा कि इस मन्दिर के स्थान पर जामा मसजिद बनी हुई है। इस परिवर्त्तन का कारण उसने यह लिखा है-

[१] इस्तख़री के आधार पर मुअजमुल् बुल्दान; याक़ूत; आठवाँ खंड; पृ० २०१ (मिस्त्र)।

[२] अबूज़ैद सैराफ़ी का सफ़रनामा (यात्रा-विवरण); पृ० १३० । प्रसिद्ध है ।

[३] सफरनामा बुशारी मुकद्दसी जो अहसनुत् तकासीम के नाम से पृ० ४८३ (लीडन)।

"जब मुहम्मद बिन क़ासिम ने मुलतान जीत लिया, तब उसने देखा कि इस नगर की इतनी बसती और धन सम्पत्ति का कारण यही मन्दिर है। इस लिये उसने उस मन्दिर

को ज्यों का त्यों छोड़ दिया और उसकी मूत्ति के गले में गौ की हड्डी बाँधकर[१] मानो अपनी ओर से इस बात का प्रमाण दे दिया कि मैने यह मूत्त और मन्दिर किसी श्रद्धा या धार्मिक विश्वास के कारण नहीं छोड़ रखा है। उसने मुसलमानो के लिये अलग जामा मस्जिद बनवाई। फिर जब मुलतान पर करमती (शीआ मुसलमानो का एक मार्गच्युत सम्प्रदाय) लोगो का अधिकार हुआ, तब जल्म बिन शैबान ने यह मन्दिर तोड दिया और पुजारियो को मार डाला। इसकी इमारत को, जो ईंट की थी और ऊँची जगह पर थी, जामा मसजिद बना दिया; और पहलो (मुहम्मद बिन कासिमवाली) जामा मसजिद में इस लिये ताला लगा दिया कि वह उसके विरोधी सम्प्रदाय उमैयावालो की बनवाई हुई थी और उससे इन लोगो की भारी शत्रुता थी। फिर जब सुलतान महमूद ने मुलतान जीत कर क़रमतियो को नष्ट कर दिया, तब इस जामा मसजिद को बन्द कर के फिर असली मुहम्मद बिन क़ासिमवाली जामा मसजिद खुलवा दी और अब उस मन्दिर की जगह खाली मैदान है।"[२]

इस सम्बन्ध में बिलाजुरी ने, जो हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त मे था, एक विलक्षण बात यह लिखी है कि लोग इस मूर्ति को हजरत अयूब की मूत्ति समझते थे (पृ० ४४) ।

[१] न्धि की विजयों के सम्बन्ध में जितनी पुस्तकें हैं, उनमें से किसी में इस घटना का उल्लेख नहीं है। न जाने बैरूनी ने यह घटना कहाँ से ली है।

[२] किताबुलू हिन्द; बैरूनी ; पृ० ५६ ।

अधिकार और सम्मान

सिन्ध के जीते जाने के बाद कुछ ब्राह्मण मिलकर मुहम्मद बिन कासिम के पास गए थे। मुहम्मद कासिम ने उन लोगो का अच्छा आदर किया। ब्राह्मणों ने उससे यह कहा कि हिन्दुओं में जैसा दस्तूर है, हमारी जाति का स्थान और सब जातियों से ऊँचा रखा जाय। जाँच करने के बाद मुहम्मद क़ासिम ने इन लोगों की यह बात मान ली और इनको राज्य के सब पदों पर स्थान दिया। ब्राह्मणों ने इसके लिये बहुत धन्यवाद दिया; और गाँव गाँव घूमकर अपने हाकिमों के गुण गाए; और उन्हें जो अधिकार मिले थे, उनके लिये सब जगह उनकी बहुत प्रशंसा की।[१]

जज़िया

अरब अमीर ने सब जगह इस बात की घोषणा कर दी थी कि जो चाहे, मुसलमान हो कर हमारा भाई बन जाय; और जो चाहे, वह जजिया देकर अपने धर्म का पालन करे। इस प्रकार कुछ लोग तो मुसलमान हो गए और कुछ अपने पुराने धर्म पर चलते रहे ।

चचनामा में लिखा है-

"उनमें से जो लोग मुसलमान हो गए थे वे गुलामी और जजिया आदि से बचे रहे। पर जो लोग अपने धर्म पर बने रहे, उनके तीन विभाग किए गए। पहले विभाग के अर्थात् धनवान लोग से ४८ दिरम, दूसरे विभाग के या साधारण लोगों से २४ दिरम और तीसरे विभाग के या गरीब लोगों से १२ दिरम लिए गए। जो लोग मुसलमान हो गए, उनके लिए यह कर माफ कर दिया गया; और जो लोग अपने बाप दादा के धर्म पर बने रहे, उन्होंने जजिया दिया। पर फिर भी उनकी जमीन जायदाद उनसे नहीं ली गई और वह सब ज्यों की त्यों उन्हीं के पास रहने दी गई।"[२]

[१] **चचनामा; ईलियट; पृ० १८२-८४ ।**

[२] **चचनामा; इलियट; पृ० १८२ ।**

आजकल के हिसाब से एक दिरम अधिक से अधिक साढ़े तीन आने के बराबर होता है। इस लिये धनवानो से यह कर दस रुपये, साधारण लोगो से पाँच रुपये और गरीबो से ढाई रुपये साल के हिसाब से लिया गया होगा; और इस्लाम में इस सम्बन्ध मे जो नियम है, उसके अनुसार स्त्रियाँ, बच्चे, बुड्ढे, राजकर्मचारी, पुजारी और शरीर से असमर्थ और न कमानेवाले लोग इस कर से बचे रहे होगे। और मुसलमानो से जजिया के बदले ढाई रुपए सैकड़े जकात ली जाती होगी। इसके सिवा जमीन की उपज मे से मुसलमानो से उसका दसवाँ भाग और दूसरे धर्मवालो से निश्चित खिराज या लगान लिया जाता होगा। बस इन दोनो करो के सिवा अरबवालो के राज्य मे और कोई कर नहीं था।

हिन्दू और मस्जिद

अरबो के इस अच्छे व्यवहार का हिन्दुओ पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। जब हिजरी दूसरी शताब्दी मे एक स्थान पर से अरबो का राज्य हट गया और फिर उसपर हिन्दुओ का अधिकार हो गया, तब उन्होने मुसलमानो की मसजिद को नही छेड़ा। मुसलमान उसमें नित्य नमाज़ पढ़ते थे और जुमे या शुक्र के दिन नियम के अनुसार अपने खलीफा का नाम लेते थे।[१]

इसके सिवा हिजरी चौथी शताब्दी के अरब यात्री इस्तखरी और इब्न हौकल लिखते हैं कि खम्भायत से चैमूर तक के इलाके हैं जो भिन्न भिन्न राजाओ के राज्य में, पर हर नगर मे और हर जगह मुसलमान बसे हुए हैं ओर उनकी मसजिदें हैं, जहाँ वे लोग इकट्ठ होकर नमाज पढ़ते हैं। हिन्दू राजाओ के शासनकाल मे खम्भात नगर की जामा मसजिद के टूटने और फिर से बनने का मनोरंजक वर्णन आगे किया जायगा ।

[१] **फुतूहुल् बुल्दान ; बिला, जुरी; पृ० ४४६, (लीडन)**

हिन्दू धर्म की जाँच

आपस के इस मेल जोल का यह फल हुआ कि अरबों को इस बात की जाँच पड़ताल का शौक होने लगा कि हिन्दू धर्म में क्या क्या बातें हैं। इस लिये यहिया बरमकी ने, जो सन् १७० से १९० हि० तक मन्त्री था, एक आदमी को विशेष रूप से इस लिये भारत भेजा कि वह यहाँ की दवाओ और यहाँ के धर्मों का हाल लिखकर ले जाय । उस समय बग़दाद की यह अवस्था थी कि वह सभी धर्मों और विश्वासों का अखाड़ा बना हुआ था। अब्बासी वंश के नलीफाओं और कुछ दर्शन-प्रेमी अमीरों के दरबारों में बराबर धार्मिक जलसे और शास्त्रार्थ हुआ करते थे। कुछ दिन और समय निश्चित होते थे, जिनमें इस प्रकार के जलसे होते थे; और हर एक धर्मवाले को इस बात का अधिकार होता था कि वह अपने धर्म के पक्ष की बातें सब लोगों के सामने कहे, इस्लाम पर आपत्तियों करे और उनके उत्तर सुने । इन जलसों और शास्त्रार्थों में मुसलमान लोग सब से आगे रहते थे और बरामका का वंश विशेष रूप से उन लोगों का संरक्षण करता था। सम्भव है कि इसी लिये भारतवर्ष के धर्मो के सम्बन्ध में भी जानकारी रखने की आवश्यकता हुई हो ।

जो आदमी इस काम के लिये हिन्दुस्तान भेजा गया था, उसने जो कुछ हाल लिखा था, वह इस समय ज्यों का त्यों नहीं मिलता । पर इब्न नदीम ने, जिसने अपनी पुस्तक इस घटना के ७०-८० बरस बाद लिखी थी, एक ऐसे लेख का वर्णन किया है, जो प्रसिद्ध अरब दार्शनिक याकूब बिन इसहाक्क़ किन्दी के हाथ का लिखा हुआ था और जिसपर सन् ३४९ हि० की तारीख पड़ी हुई थी। उस लेख में यह समाचार लिखा हुआ था कि यहिया बरमकी ने एक आदमी को भारत के धर्मों की जाँच करने और उनका हाल जानने के लिये वहाँ भेजा था। उसका शीर्षक था- "भारत के धर्म और धार्मिक विश्वास ।" उसके नीचे संक्षेप मे इस सम्बन्ध की कुछ बातें लिखी हुई थी। इससे अनुमान होता है कि यह उसी आदमी के लिखे हुए हाल का संक्षेप है ।

उस लेख मे सब से पहले गुजरात के राजा बल्लभराय की राजधानी महानगर के मन्दिर का हाल लिखा है। कहा है कि इसमें सोने, चॉदी, लोहे, पीतल, हाथीदाँत और सब प्रकार के बहुमूल्य पत्थरों और रत्नों की बीस हजार मूर्तियाँ हैं। इसके सिवा सोने की एक

मूर्त्ति है जो बारह हाथ ऊँची है और जो सोने के सिंहासन पर बैठी हुई है। यह सिंहासन गुम्बद के आकार के साने के एक कमरे मे है। यह कमरा सफेद मोतियो और लाल, हरे, पीले और नीले रंग के रत्नो से जड़ा हुआ है। साल में एक बार इसका मेला होता है, राजा स्वयं वहाँ पैदल जाता और आता है। उसके आगे साल मे एक दिन बलि दी जाती है और लोग उसपर अपने प्राण भी निछावर करते है- अपने आपको भी बलि चढ़ाते हैं। इसके बाद मूलस्तान (मुलतान) की मूर्त्ति का वर्णन है और फिर दूसरी मूर्त्तियो का हाल लिखा है। फिर भारत के कुछ सम्प्रदायो और उनकी मूर्त्तियो का वर्णन है।

(१) सब से पहले सम्प्रदाय का नाम "महाकालिया" बतलाया है, जो महाकाली को पूजते हैं। महाकाली के चार हाथ होते हैं, नीला रंग होता है, सिर पर बाल होते है, दाँत निकले हुए होते हैं; पेट खुला होता है, पीठ पर हाथी की खाल पड़ी रहती है, जिससे लहू की बूंदे टपकती रहती हैं। एक हाथ मे अजगर, दूसरे मे डंडा और तीसरे में आदमी का सिर होता है; और चौथा हाथ ऊपर उठा हुआ होता है। उसके दोनो कानो मे दो सॉप और शरीर मे दो अजगर लिपटे हुए होते हैं। सिर पर खोपड़ियों की हड्डियों का मुकुट और गले में उन्हीं हड्डियों की माला होती है।

(२) दूसरे सम्प्रदाय का नाम “अद्दनियकतियः अल् अदतबकतियः” (आदित्यभक्त) दिया है और कहा है कि ये लोग सूरज (आदित्य), की पूजा करते हैं। इसका स्वरूप यह है कि एक गाड़ी है, जिसमें चार घोड़े जुते हैं। उसके ऊपर एक मूर्त्ति है। वे लोग उसीकी पूजा करते हैं और उसकी परिक्रमा करते हैं; उसके आगे धूप सुगन्धित द्रव्य आदि जलाते हैं और बाजे बजाते हैं। उसके नाम से बहुत सी जायदादें छोड़ी हुई हैं। मन्दिर और सम्मत्ति का प्रबन्ध करते हैं। बहुत से पुजारी हैं जो उस चारों ओर से रोगी लोग यहाँ आते हैं और अपनी समझ में वे यहाँ से अच्छे होकर जाते हैं।

(३) तीसरा सम्प्रदाय "चन्दर ये लोग चन्द्रमा की पूजा करनेवाले हैं। भक्तयः" (चन्द्रभक्त) है। इसकी मूर्त्ति का रथ चार हंसों से चलता है। मूर्त्ति के हाथ में एक बहुत बड़ा लाल होता है, जिसको चन्दर केत (चन्द्रकेतु) कहते हैं। चौदहवीं रात (पूर्णिमा) को, जो चन्द्रमा के पूर्ण होने का दिन है, व्रत रखते हैं। उस रात को उसकी पूजा करते हैं और उस

देवता के पास नैवेद्य, मद्य और दूध लाते हैं। चाँद की पहली (प्रतिपदा) और चौदहवीं (पूर्णमा) को छतों पर चढ़कर उसके दर्शन करते हैं और मन्त्र पढ़ते तथा प्रार्थना करते हैं।

(४) चौथे सम्प्रदाय का नान "बकरन्तनिया" है।[१] इस सम्प्रदाय के लोग अपने आपको सिक्कड़ों में बाँधे रहते हैं, सिर और दाढ़ी के बाल मुँड़ाते हैं, केवल एक लँगोटी पहनते हैं और सारा शरीर नंगा रखते है। जो कोई इनके सम्प्रदाय मे आता है, उससे कहते हैं कि तुम्हारे पास जो कुछ है, वह सब पहले दान कर दो ।

[१] इस शब्द का मूल रूप और इस सम्प्रदाय का कुछ वर्णन आगे चलकर "भिक्षु" शब्द के अन्तर्गत आवेगा। दूसरी पुस्तकों में बकरन्तियः की जगह बेकर जैन लिखा है। बुज़र्ग विन शहरयार ने इनका नाम बेकुर

(५) पॉचवे सम्प्रदाय का नाम गंगा जात्रा (गंगा-यात्री) है। इस सम्प्रदाय के लोग सारे भारत में फैले हुए हैं। इनके यहाँ यह माना जाता है कि मनुष्य जितने पाप करता है, वह सब आकर गंगा में स्नान करने से घुल जाते हैं।

(६.) छठे “राजपूतिया" (राजपूत) हैं। इनका धर्म राजाओं की सहायता करना है। यह समझते हैं कि राजा के लिये प्राण देना ही भक्ति है।

(७) एक और सम्प्रदाय है, जिसके लोग बाल बढ़ाते हैं और उनको बट कर मुँह पर जटा बनाकर डाल लेते हैं मुँह के चारों ओर बाल बिखरे हुए होते हैं। ये लोग शराब नहीं पीते और एक पहाड़ पर यात्रा करने जाते हैं। ये लोग स्त्रियो को देखकर भागते हैं और बस्ती मे नही आते ।[१]

इब्न नदीम के समय या उसके कुछ ही आगे पीछे (सन् ३७५ हि०) जेरूसलम के एक अरबवक्ता मुतहहिर[२] ने किताबुल् बिदअ वत्तारीख नामकी एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें इसका और भी विस्तार पूर्वक वर्णन है। वह वर्णन इस प्रकार है-

या बेकोर बतलाया है (पृ० १५५) । और बैरूनी ने इनको महादेव का उपासक या पूजन करनेवाला कहा है। देखो किताबुल् हिन्द; पृ० ५८ ।

[१] किताबुल् फ्रेहरिस्त; इब्न नदीम; पृ० ३४५-४६ ।

[२] हानी खलीफा ने कहा है कि इस पुस्तक का लेखक अबू जैद अहमद बिन सहल बलखी है। पेरिस संस्करण के सम्पादक ने पहले के कई खंडों पर तो बलखी का नाम लिखा है, पर फिर इसे भूल मानकर और इसकी शुद्धि कर के मतहहिर बिन ताहिर का नाम लिखा है।

"भारत में नौ सौ सम्प्रदाय हैं, पर उनमें से केवल निन्नानवे का हाल मालूम है; और ये सब पैंतालिस धर्मो के अन्तर्गत हैं; और ये सब भी चार सिद्धान्तों में ही परिमित हैं। इनके असल मोटे विभाग दो ही हैं-समनी (बौद्ध) और बरमहनी (ब्राह्मणधर्म)। समनी लोग या तो ईश्वर को नहीं मानते और या ऐसे ईश्वर को मानते हैं, जिसको कुछ भी करने का अधिकार नहीं है। ब्राह्मण धर्मवालों के तीन विभाग हैं। एक विभाग तो यह मानता है कि ईश्वर एक है; और पाप और पुण्य दोनोंका फल मिलता है; पर वह यह नहीं मानता कि इस संसार में कोई ईश्वर का भेजा हुआ रसूल या दूत भी आता है। दूसरा विभाग पुनर्जन्म के सिद्धात पर पुण्य और पाप का फल मिलना मानता है; पर न तो वह ईश्वर की एकता मानता है और न रसूल या ईश्वरीय दूत का सिद्धान्त मानता है।"[१]

इसके बाद लेखक ने भारतवासियों की विद्या सम्बन्धी योग्यता का संक्षिप्त वर्णन किया है। फिर यह बतलाया है कि पुराने समय में जब भारत में अभियोग या मुकदमे होते थे, तब लोग अपनी सचाई का किस प्रकार प्रमाण देते थे । (इससे लेखक का अभिप्राय "दिव्य" से है।) जैसे गरम लोहे को छू लेना आदि आदि । इसके बाद कहता है-

[१] चौथा खंड; पृ० ६-१६ (पेरिस) तीसरे सम्प्रदाय का वर्णन छूट गया है।

"मुसलमानों को ये लोग अपवित्र समझते हैं। मुसलमान इनकी जिस चीज को छू दें, उसे फिर ये नहीं छूते । गौ को ये लोग माता के समान पूज्य मानते हैं। जो कोई गौ के प्राण लेता है, उसे ये लोग प्राण दंड देते हैं। जिसकी स्त्री न हो, वह किसी दूसरे आदमी की स्त्री के साथ सम्भोग कर सकता है, जिसमे वश चलता रहे।[१] जिसकी स्त्री हो, वह यदि किसी दूसरी स्त्री के साथ बुरा काम करे, तो उसके लिये उसे प्राण-दंड दिया जाता है। जब इनमे से कोई आदमी मुसलमान के हाथ पडकर फिर लौटकर इनके यहाँ जाता है, तब उसको मारते नहीं, बल्कि उसके सारे शरीर को मूडकर उससे प्राश्यश्चित्त करते है। (इसका वही ढंग लिखा है जो अब भी होता है अर्थात् गौ की कुछ चीजो को मिलाकर पिलाना) जहाँ बहुत पास का सम्बन्ध होता है, वहाँ ये लोग ब्याह नहीं करते । ब्राह्मण लोग शराब को भी हराम समझते हैं और मारे हुए पशु के मांस को भी ।"

इसके बाद हिन्दू देवताओं और उनके भिन्न भिन्न उपासकों का वर्णन दिया है और हर देवता का रूप बतलाया है। फिर महादेव, काली, महाकाली और लिग पूजा आदि का हाल लिखा है; और इसके बाद दो नए सम्प्रदायों का हाल बतलाया है जिनमे से एक का नाम जल भक्तियः (जल भक्त) दिया है और कहा है कि ये लोग जल की पूजा करते है। दूसरे का नाम अगनीहोतरियः (अग्निहोत्री) दिया है, जो आग की पूजा करते है। ऋषियो का भी वर्णन किया है और कहा है कि ये लोग ध्यान और समाधि लगाकर अपनी बाहरी इन्द्रियो को बिलकुल व्यर्थ कर देते हैं, उनको अपना काम करने के अयोग्य बना देते हैं; और समझते हैं कि हम इस संसार के पदार्थों से जितना ही अलग होगे, हममें उतनी ही आत्मा की शक्ति बढ़ेगी। अन्त में योगियों और अपने आपको बलिदान देनेवालों का वर्णन किया है।

[१] यहाँ लेखक का अभिप्राय नियोग से है; पर जान पड़ता है कि उसने नियोग का ठीक ठीक रूप नहीं समझा था; और इसी लिये इस प्रकार बिगाड़- कर उसका वर्णन किया है। - अनुवादक ।

ब्राह्मणो के विषय में लिखा है कि - "ये लोग गौ की पूजा करते हैं और गंगा के उस पार जाना पाप समझते हैं। इनके यहाँ किसी दूसरे को अपने धर्म मे लेने की आज्ञा नही है।" अन्त में यह लेखक लिखता है-

जो लोग क़यामत (मुसलमानों और ईसाइयों के विचार के अनुसार न्याय का अन्तिम दिन) और रसूल या ईश्वरीय दूत (कदाचित् अवतार से तात्पर्य है) को नहीं मानते, वे भी पाप और पुण्य के फल के रूप को पुनर्जन्म के रूप में मानते हैं; और मूर्ति- पूजा का यह कारण बतलाते हैं कि ईश्वर तो ज्ञान और इन्द्रियों से ऊपर या परे है और इन्द्रियों से उसका स्वरूप नहीं जाना जा सकता; इसी लिये एक मध्यस्थ की आवश्यकता होती है।

इसके बाद संसार भर के धर्मों की जाँच करनेवाले प्रसिद्ध अब्दुलकरीम शहरिस्तानी का नाम आता है, जिसका समय सन् ४६९ हि० से ५४९ हि० तक है। इसने मतहहिर मुकद्दसी का वर्णन और भी विस्तार से उधृत किया है; और एक नए सम्प्रदाय बरगसबगियः (वृक्ष भक्त) का वर्णन किया है, जो वृक्षों की पूजा करता है।[१]

अबू रैहान बैरूनी ने किताबुलू हिन्द के ग्यारहवें प्रकरण में भारत के सभी धर्मों का वर्णन किया है। साथ ही सब देवताओं के स्वरूप और वर्णन दिए हैं; और स्वयं मूर्त्ति पूजा के तत्त्व का भी विवेचन किया है; और लिखा है- "यह मूर्त्ति पूजा भारत के केवल साधारण और मूर्ख लोगों का धर्म है; और नही तो पढ़े लिखे हिन्दू ऐसा नहीं मानते। फिर गीता के कुछ श्लोक लिखे हैं, जिनमें से एक का अभिप्राय यह बतलाया है- "बहुत से लोग मुझको छोड़कर दूसरों को पूजते हैं। मैं उनकी परवाह नहीं करता ।" फिर श्रीकृष्ण जी का एक वचन लिखा है, जिसमें उन्होने अर्जुन से कहा है कि जो लोग चन्द्रमा और सूर्य आदि की पूजा करते हैं, मैं उनसे अप्रसन्न रहता हूँ।"

[१] **मिलल व नहल; दूसरा खंड; अन्तिम प्रकरण ।**

अब सात समुद्र पार स्पेन देश के रहनेवाले एक अरब लेखक काजी साइद (मृत्यु सन् ४६२ हि०; १०७० ई०) का "ईमान चिलग़ैब" नामक प्रकरण देखिए । वह अपनी पुस्तक

तबकातुल् उमम मे, जिसमें सारे संसार की सभ्य जातियो की विद्याओ का इतिहास लिखा है, कहता है-

"हिन्दू जाति की दूसरी सभी जातियाँ सदा से गुणों की खान और बुद्धिमत्ता का स्रोत समझती रही हैं। उनका ईश्वरीय ज्ञान ईश्वर की एकता के सिद्धान्त से पवित्र है। उनमे अनेक सम्प्रदाय है। कुछ लोग ब्राह्मण है, कुछ नक्षत्रो की पूजा करते हैं। कुछ लोग सृष्टि को सादि और कुछ अनादि मानते हैं। नत्री और रसूल को नहीं मानते । पशुओ की हत्या करना और उनको कष्ट देना बुरा समझते है।" इसके उपरान्त लेखक ने इस बात पर दुख प्रकट किया है कि स्पेन से भारत बहुत दूर है और इस लिये वहाँ की अधिक वाते मुझे नही मालूम हैं। इसके बाद विद्याओ, विज्ञानों और सिद्धान्तो का वर्णन किया है, जो अरवी के द्वारा भारत से स्पेन तक पहुंचे थे।[१]

[१] **तकबक्तातुल् उमम ; पृ० ११-१५ (बैरूत)**

अरब यात्रियो ने भारत की धार्मिक बातों का जो वर्णन किया है, उसमे अधिकतर मुलतान और सिन्ध के मन्दिरो का ही हाल है। जैसे यह कि मुलतान की प्रसिद्ध मूर्ति लकड़ी की थी, उसके ऊपर लाल खाल लिपटी थी, उसकी दोनो आँखो की जगह दो लाल थे और सिर पर सोने का मुकुट था।[१] बैरूनी ने बतलाया है कि यह सूर्य देवता की मूत्ति थी, और इसी लिये इसका नाम अदित (आदित्य या सूर्य) था।[२]

दूसरी बात, जिसका इन अरब यात्रियों ने बहुत घृणा के साथ वर्णन किया है, वह उन मन्दिरों का हाल है, जिनमें देव-दासियाँ रखी जाती थीं। इस प्रकार के मन्दिरों का हाल अधिकतर दक्षिण भारत के यात्रियों ने किया है।[३] पर मुकद्दसी जो सन् ३७५ हि० में भारत आया था, लिखता है कि इस प्रकार के मन्दिर सिन्ध में भी थे ।[४]

तीसरी बात जिसका इन यात्रियो ने बहुत अधिक वर्णन किया है, लोगों का अपने आपको बलिदान कर देना है। इस बलिदान का इन लोगों ने ऐसा हाल लिखा है कि जिसको

पढ़कर शरीर के रोएँ खड़े हो जाते हैं। गंगा में डूबकर प्राण देना तो साधारण सी बात है। इसके सामने सती होनेवाली स्त्रियो का भी वर्णन कम है।

[१] देखो अहसनुन् तकासीम; मुकद्दसी; पृ० ४८३; और आसारुल बिलाट; कज़्वीनी; पृ० ८१ आदि भूगोल की पुस्तके ।

[२] किताबुल हिन्द; पृ० ५६ (लन्दन) ।

[३] सुलेमान सौदागर का यात्रा-विवरण और अबूजैद सैराफी; पृ० १३० ; (पेरिस) ।

[४] अहसनुन् नकासीन; पृ० ४८३ ।

अबूजैद सैराफी कहता है- "इन लोगों का पुनर्जन्म पर इतना विश्वास है कि अपने आप को जलाना चाहता है, तब राजा से आज्ञा लेता है और फिर बाजारों में घूमता है। दूसरी ओर खूब आग सुलगाई जाती है और झाँझ बजाई जाती है। उसके सम्बन्धी उसके चारों ओर इकट्ठे हो जाते हैं। फिर फूलों का एक मुकुट बनाकर, जिसमें जलती हुई आग रखी रहती है, उसके सिर पर रख देते हैं, जिससे सिर की खाल जलने लगती है। वह उसी तरह खड़ा रहता है और फिर धीरे धीरे चलकर चिता में कूद पड़ता है।" एक और बात यह कही गई है कि एक आदमी बहुत बड़ी छुरी से अपना कलेजा आप फाड़कर और हाथ डालकर अन्दर से अपना हृदय निकाल लेता है और ये सब काम बहुत ही धैर्य और शान्ति से करता है।[१]

सबसे बढ़कर भीषण दृश्य का चित्र इब्नुल् फकीह ने खीचा है। वह लिखता है- "मुलतान में एक आदमी एक मन्दिर में आया । वह अपने सिर और उँगलियों पर तेल मे भीगी हुई रूई लपेटे हुए था। वहाँ पहुँचकर उसने उस रूई मे आग लगा दी और वे जलती हुई बतियाँ उसके शरीर तक पहुँच गई और वह उसी प्रकार धैर्य तथा शान्ति के साथ जलकर राख हो गया।"[२]

[१] अबूजैद का यात्रा-विवरण ; पृ० ११५-१८ ।

[२] आसारुल् बिलाद; कज़वीनी; १० ८१ ।

ब्राह्मण और समनी इब्राहीम और खि.ज़्र

मुतहहिर मुकद्दसी (सन् ३३५ हि०) ने हिन्दुओ के सव सम्प्रदायो को दो भागो मे बाँटा है। और दूसरे का समनियः बतलाया है। उसने एक का नाम ब्रह्मनियः पर विलक्षण बात यह है कि कुछ अरब लेखको को ब्राह्मण शब्द के रूप की समानता देखकर उससे इतना अनुराग हुआ कि उन्होने यह मान लिया कि ब्राह्मण वास्तव मे हजरत इब्राहीम को माननेवाले हैं; इसी लिये इनको ब्राह्मण कहते हैं। पर शहरिस्तानी ने यह भ्रम दूर किया और बतलाया कि इस शब्द का सम्बन्ध ब्रह्म से है, इब्राहीम से नहीं है। ब्राह्मण के विरोधी दूसरे दल का जो नाम समनियः है, वह वास्तव में अरबी मे बौद्धो का नाम है। इस सम्बन्ध में विस्तृत बातें आगे चलकर कही जायँगी। बौद्ध लोगों का यह विश्वास है कि महात्मा बुद्ध समय समय पर मनुष्यों का रूप धारण करके इस संसार में आते रहे हैं; इस लिये कुछ अच्छे विचारवाले लोगों ने समानता देने के लिये यह कहना आरम्भ कर दिया कि यह वही बुद्ध हैं, जिन्हें मुसलमान लोग खित्र कहते हैं।[१]

दो जातियों के बीच इस प्रकार का सम्बन्ध और समानता उस समय स्थापित करने की आवश्यकता होती है, जिस समय दोनों में किसी प्रकार का समझौता होता है और मेल होता है। ये दोनों उदाहरण यही सिद्ध करते है कि किसी समय हिन्दुओं और अरब मुसलमानो मे इसी प्रकार का समझौता और मेल था ।

इस्लाम के पैग़म्बर का आदर करनेवाला
एक हिन्दू राजा

सन् १४७ हि० में जब मन्सूर अब्बासी के समय में अली के वंश के उत्साही सैयदों ने राज्य स्थापित करने का विचार किया, तब सिन्ध में भी उसका प्रबन्ध होने लगा। पर पाँसा उलट गया और उन अली के वंश के सैयदो को सफलता नहीं हुई। उस समय उन्हें

एक ऐसी जगह की जरूरत हुई, जहाँ वे लोग शरण ले सकते । भारत के मुसलमान वाली ने, जो उन सैयदों से सहानुभूति रखता था, उनसे कहा कि आप लोग घबरायँ नहीं। यहाँ एक राजा है जो ईश्वर के रसूल मुहम्मद साहब का बहुत आदर करता है। आप लोग उसके पास चले जायँ । जब वे लोग वहाँ गए, तब राजा ने बहुत अच्छी तरह उनका स्वागत किया और वे लोग बहुत सुख से वहाँ रहने लगे ।[२]

[१] **देखो मिलल व नहल; शहरिस्तानी ।**

[२] **कामिल इब्न असीर; वाकआत सन् १४७ हि० ।**

समनियः

अभी ऊपर समनियः धर्म का वर्णन आया है। वहाँ कहा गया था कि अरब लोग बौद्धो को समनियः कहते थे। मैं बहुत दिनो तक जाँच पड़ताल करने के बाद और बहुत सी बातो की जानकारी प्राप्त करके तब इस सिद्धान्त पर पहुँचा हूँ।

सबसे पहले इस सम्प्रदाय का नाम अब्दुलकादिर बग़दादी (जिसकी मृत्यु सन् ४२९ हि०; १०३७ ई० मे हुई थी) की किताबुल् फरक बैनलू फिरक मे इस प्रसंग मे दिखलाई दिया कि इस्लाम के मोतजिला नामक बुद्धिमान् सम्प्रदाय के निजाम नाम के एक बड़े इमाम पर उसने यह झूठा अभियोग लगाया है कि उसने नबी को न मानने का सिद्धान्त ब्राह्मणों से सीखा है और यह सिद्धान्त समनियः से सीखा है कि इस बात का कभी निर्णय नही हो सकता कि सत्य क्या है और मिथ्या क्या है; क्योकि दोनो ही पक्षो में बहुत बलवान तर्क होते है। फिर मुर्तजा जैदी की किताबुल् मोतजिला नामक पुस्तक में पढ़ा- "भारत के समनियः ने हारूँ रशीद के पास इस्लाम पर यह आपत्ति कहला भेजी।" इस वाक्य से मेरा ध्यान इस बात पर गया कि इस सम्प्रदाय का सम्बन्ध भारत से है। इसके बाद सिन्ध के सम्बन्ध की बातो की जाँच करते समय समनियः शब्द अनेक बार मिला। मैं ने यह भी देखा कि प्रोफेसर मूलर आदि के आधार पर ईलियट साहब लिखते हैं कि इस शब्द से बौद्धमत वालों का अभिप्राय है और इस शब्द का मूल संस्कृत रूप "श्रमण" है।

ईलियट साहब यह भी कहते हैं कि यूनानी यात्रियो और इतिहास-लेखको ने भी इनको सरामिनीस, सरमीनिया और सिमूनी आदि लिखा है।[१] ईलियट साइब के इस वर्णन से कुछ तो और आगे पता चला; पर उसके बाद इब्न नदीम की किताबुल् फेहरिस्त ने इस गूढ़ शब्द का अर्थ बिलकुल साफ कर दिया, जिससे मेरा पूरा सन्तोष हो गया; और मुझे यह भी पता चल गया कि यूनानियों में यह नाम किस प्रकार आया।

[१] **ईसियट कृत्त इंडिया; पहला खंड; पृ० ५०६।**

समनियः की जाँच

हम्जा अस्फहानी ने अपनी पुस्तक तारीख मुलूकुल् अर्ज (पृथ्वी के राजाओं का इतिहास) सम् ३५० हि० में या उसके लगभग लिखी थी। यह ईरान और खुरासान के इतिहास की ऐसी पुस्तक है, जो प्रामाणिक मानी जाती है। यह अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखता है[१] -

"संसार में पहले दो ही धर्म या सम्प्रदाय थे-एक समनियन और दूसरे कैल्डियन (कैल्डियावाले)। समनियन लोग पूरब के देशों में थे। उनमें से कुछ बचे हुए लोग अब भी भारत में कहीं कहीं और चीन में हैं। खुरासानवाले इनको बहुवचन रूप में शमनान और एक वचन रूप में शमन कहते हैं।"

इससे यह पता चल गया कि अरबों ने बौद्धों का यह नाम खुरासानियों से सुना और वही उनमें चल गया। इस्फाहानी के इस वर्णन के साथ इब्न नदीम (सन् ३७५ हि०) का नीचे लिखा वर्णन मिलाना चाहिए, जिसमें बहुत सी जानने योग्य बातें भरी हैं-

[१] **तारीख मुलूकुल् अर्ज ; पृ० ७ (बरलिन) ।**

"मैंने एक खुरासानी के हाथ का लिखा हुआ लेख पढ़ा था, जिसने खुरासान के पुराने समय की और फिर अपने समय की बहुत सी बातें लिखी थीं। यह एक नियमावली के रूप

में था। उसमें लिखा था कि समनियः के पैग़म्बर का नाम बोज आसफ था और पुराने समय मे इस्लाम से पहले ट्रान्स-काकेशिया के लोग इसी धर्म के अनुयायी थे। समनियः शब्द संस्कृत के समनः से निकला है। ये लोग संसार में रहनेवाले सभी लोगो और धर्मों के माननेवालों से अधिक उदार होते हैं। इसका कारण यह है कि इनके पैग़म्बर (मत के प्रवर्तक) बोज आसफ ने इनका यह बतलाया है कि सत्र से बड़ा पाप जो नहीं करना चाहिए और जिसका मनुष्य को कभी विश्वास न रखना चाहिए, यह है कि काई अपने मुँह से "नहीं" न कहे। ये लोग इसी उपदेश पर चलते हैं और "नहीं" कहना इनकी दृष्टि में "शैतान" का काम है और इनका धर्म "शैतान" को दूर करना है।"[१]

यह अक्षरशः बौद्धमत का चिन्न है। ऊपर कहा जा चुका है कि बोज आसफ शब्द बोधिसत्व से निकला है। लोग यह भी जानते हैं कि इस्लाम से पहले मध्य एशिया का धर्म बौद्ध था। इस वर्णन को पढ़ने के बाद इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि समनियः और बौद्ध दोनों एक हैं।

समनियः के सिद्धान्त

अब्दुलकादिर बग़दादी (सन् ४२९ हि०; १०३७ ई०) ने प्रसंगवश समनियः के एक सिद्धान्त का वर्णन किया है, जिसको अरबी परिभाषा मे "तकाफओ अदिल्ला" कहते हैं और जो एक प्रकार से "लाअद्दिया" अग्नास्टिक[२] (Agnostic) सम्प्रदाय के सिद्धान्त से मिलता जुलता है इस सिद्धान्त का मतलब यह है कि संसार मे सत्य और मिथ्या दोनों इस प्रकार मिले जुले हैं कि हर एक वस्तु के अस्ति और नास्ति (हाँ और नहीं) दोनों अंग हो सकते हैं; और दोनों में से न तो किसी को गलत कह सकते हैं और न ठीक कह सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह सिद्धान्त बुद्ध के कुछ उपदेशों में हैं; पर सब से बढ़कर स्पष्ट रूप में यह जैनियों के यहाँ मिलता है।

बौद्धधर्म का दूसरा सिद्धान्त, जिसपर उस मत का आधार है, यह है कि संसार या जीवन के दुःखों, दोषों या विपत्तियों से छुटकारा मिले । इस दुःख, दोष और विपत्ति को ही इब्न नदीम ने "शैतान" कहा है, जो सब दोषो का केन्द्र है। और उसने यह भी कहा है

कि समनियः का धर्म शैतान को दूर करना है; अर्थात् दोषों और दुःखा से छुटकारा पाना है।

[१] अन् फेहरिस्त; इब्न नदीम; पृ० ३४५ ।

[२] अग्नास्टिक उन लोगों को कहते हैं, जो ईश्वर के अस्तित्व या सृष्टि की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध मे यह समझकर कुछ भी विचार नही करते कि

शहरिस्तानी ने जो हिजरी पाँचवीं शताब्दी के अन्त (ईसवी ग्यारहवीं शताब्दी) में हुआ था, समनियः की जगह "बुद" शब्द का व्यवहार किया है; और ऐसा जान पड़ता है कि उसे इस धर्म की पूरी जानकारी थी। वह कहता है- "बुद" (बुद्ध) से उस अस्तित्व का अभिप्राय है जो न तो जन्म लेकर प्रकट होता है, न खाता है, न पीता है, न वृद्ध होता है और न मानो निर्वाण के बाद की अवस्था का वर्णन है। न ब्याह करता है, मरता है।" यह इसके बाद इसने गौतम बुद्ध के उपदेशों का इस प्रकार वर्णन किया है कि मनुष्य दस प्रकार के पापों से बचे और दस कर्त्तव्यों का पालन करे (यम और नियम)। उसने इनमें से हर एक का वर्णन किया है और लिखा है कि जहाँ तक मैं इनके सिद्धान्तों को जानता हूँ, इनमें सृष्टि के अनादि होने- और पूर्व जन्म के किए हुए पाप और पुण्य का फल भोगने से कोई मतभेद नहीं है।[१]

इन सब विषयों में ठीक तरह से कुछ भी जाना नहीं जा सकता। वे केवल भौपदार्थों और बातों का विवेचन करते और उन्हीं पर विश्वास रखते हैं।- अनुवादक ।

मुतहहरि बिन ताहिर ने अरबी भूगोल की किसी किताबुल् मसालिक (यह इब्न खुर्दाजबा वाली किताबुल् मसालिक नहीं है, जिसकी रचना हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त या चौथी शताब्दी के आरम्भ से हुई थी) नाम की पुस्तक से लेकर और इब्न नदीम ने कन्दी के सिवा किसी और के लेख से ज्यों का त्यो एक उद्धरण दिया है, जिसका आशय

इस प्रकार है- "समनियः मे दो सम्प्रदाय हैं। एक तो वह जिसका यह विश्वास है कि बुद्ध ईश्वर का पैग़म्बर (दूत) था; और दूसरे लोगो का यह विश्वास है कि बुद्ध स्ययं - ईश्वर था, जो अवतार लेकर इस संसार मे प्रकट हुआ था ।"[२] वास्तव में इसका अभिप्राय उस मतभेद से है कि बौद्ध मत में ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं। इस मत का एक सम्प्रदाय ईश्वर के नाम से किसी का अस्तित्व नही मानता; और दूसरा ईश्वर का अस्तित्व मानता है। वास्तव मे बात यह है कि स्वयं बुद्ध ने यह सिद्धान्त बिलकुल गड़बड़ी मे रखा है और उसे कुछ भी स्पष्ट नही किया। हिजरी चौथो शताब्दी के अन्त मे मुहम्मद ख्वारिज्मी कहता है- “समनियः लोग मूर्त्तिपूजक हैं। वे लंकावाले प्रसिद्ध चरणचिह्न और पुनर्जन्म को मानते हैं; और यह भी मानते हैं कि पृथ्वी सदा नीचे की ओर जा रही है। उनके पैगम्बर का नाम बोज आसफ है, जिसका भारत में ही जन्म हुआ था। ये लोग भारत और चीन में बसते हैं। कैल्डियन लोग भी अपना सम्बन्ध इसीसे बतलाते हैं।"[१]

[१] मिलल व नहल, शहरिस्तानी, में "मजाहिब हिन्द" (भारत के धर्म) का प्रकरण ।
[२] इब्न नदीम; पृ० ३४७; और किताबुल् बदअवत्तारीख; । चौथा
खंड; पृ० १६ ।

प्रसिद्ध अरब इतिहास-लेखक और यात्री मसऊदी (सन् ३३३ हि०) चीन के सम्बन्ध में लिखता है-

"इनका धर्म पहले लोगो का धर्म है और यह एक मत है, जिसका नाम समनियः है। इनकी पूजा का ढङ्ग वही है जो इस्लाम से पहले कुरैश का था। ये लोग मूर्तियों को पूजते हैं और प्रार्थना करते समय उन्हीं की ओर मुँह करते हैं। इनमें से जो लोग समझदार हैं, वह यही समझते हैं कि मूर्त्ति प्रायः वैसी ही है जैसा मुसलमानों के लिये किबला है। असल नमाज या उपासना ईश्वर की है। और जो लोग ना समझ हैं, वे उन मूर्त्तियों को ही ईश्वर के समान मानते हैं और उनको पूजते हैं।"[२]

बुद्ध का स्वरूप

संसार के सभी मार्ग दिखलानेवालों और धर्म चलानेवालों में शायद एक बुद्ध ही ऐसे महात्मा हैं, जिनका स्वरूप और आकृति उनकी मूर्तियों के कारण हजारों बरस बीत जाने पर भी संसार के सामने अब तक रखी हुई है; और अजायबखानों के द्वारा तो संसार के कोने कोने में पहुँच गई है। अरबवाले भी बुद्ध की आकृति और स्वरूप जानते थे। इब्न नदीम ने नीचे लिखे शब्दों में उनका चित्र खींचा है।[३]

[१] **मफ़ातीहुल् उल्म ; ख़्वारिज़्मी; पृ० ३६ (लीडन)**

[२] **तारीख़ मसऊदी; मुरूजुज़ ज़हब पहला खंड; पृ० २१६८ (लीडन) ।**

[३] **इब्न नदीम; पृ० ३४७ ।**

"एक आदमी एक सिंहासन पर बैठा है। चेहरे पर बाल नही हैं। ठुड्डी नीचे झुकी है। कुछ कुछ मुस्कराहट है। उँगलियाँ कुछ खुली और कुछ बन्द हैं।"

बुद्ध की एक मूर्त्ति बग़दाद भी गई थी। इब्न नदीम ने उसे देखा था। उसपर एक लेख भी खुदा हुआ था।[१]

बौद्ध मत का विस्तार

अरबवाले यह वात अच्छी तरह जानते थे कि बौद्धमत किन किन देशो मे फैला हुआ था। अभी ऊपर कहा जा चुका है कि इब्न नदीम जानता था कि खुरासान और ट्रान्स काकेशिया में इस्लाम का प्रचार होने से पहले बौद्धधर्म था। इसी प्रकार वे लोग यह भी जानते थे कि चीन मे भी यही धर्म है और वह भारत से वहाँ गया था। प्रायः अरब यात्रियो ने यह बात कही है। जिस सबसे पहले अरब यात्री का यात्रा विवरण हमे मिलता है, वह सुलैमान सौदागर (सन् २३७ हि०; ८३७ ई०) है। वह अपने यात्रा-विवरण मे लिखता है-

"चीन के धर्म का मूल भारत मे है; और चीनवाले कहते हैं कि हमारे लिये ये बुद्ध की मूर्तियाँ भारत ने ही बनाई हैं। इन दोनो देशो के लोग पुनर्जन्म का सिद्धान्त तो मानते हैं, पर दूसरी साधारण बातो मे इनमे मतभेद है ।"[२]

इसी प्रकार दक्षिण भारत और टापुओ मे भी वे इस धर्म के प्रभाव देखते थे ।

[१] इब्न नदीम, पृ० १६ ।

[२] सुलैमान सौदागर का यात्रा-विवरण पृ० ५७ (सन् १८११ मे पेरिस में छपा हुआ)

भिक्षु

अबू जैद सैराफी ने हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त में दक्षिणी भारत, टापुओं और चीन का हाल लिखा था। का वर्णन करता है और उनका नाम बेकर जी शायद भिक्षु शब्द की खराबी है। इस शब्द वह बौद्ध साधुओं बतलाता है। यह का रूप तो भिक्षु शब्द के रूप के समान है ही; इसके सिवा उसने जो वर्णन किया है, वह भी भिक्षुओं के ही वर्णन के समान है। वह लिखता है-

"भारत में एक सम्प्रदाय है, जिसका नाम बेकर जैन है। वे लोग नंगे रहते हैं। उनके बालों की लटें इतनी बड़ी होती हैं कि वे फैलकर उनका नंगापन छिपा देती हैं। उनके नाखून बहुत बड़े बड़े होते हैं। वे उन्हें कटाते नहीं, चाहे वे टूट जायँ । वे सदा नगर नगर घूमा करते हैं। उनमें से हर एक की गरदन में आदमी की खोपड़ी डोरी में बँधी हुई पड़ी रहती है। जब उनको अधिक भूख लगती है, तब वे किसी के द्वार पर खड़े हो जाते हैं। एक मकानवाला बहुत प्रसन्नता से जल्दी जल्दी पके हुए चावल लेकर आता है और उनको भेंट करता है। वे उसी खोपड़ी में लेकर वह चावल खा लेते हैं। जब उनका पेट भर जाता है, तब नगर से लौट जाते हैं; और फिर केवल भूख लगने पर निकलते हैं।"[१]

[१] अबूज़ैद सैराफ़ीका यात्रा-विवरण (सफ़रनामा); पृ० १२७-२८ ।

बुज़ुर्ग बिन शहरयार नाविक ने सन् ३०० हिजरी में सरन्दीप से गुजरते समय इस प्रकार के साधुओ को देखा था । उसने भी उनका ऐसा ही चित्र खींचा है और उनका नाम बेकोर बतलाया है। उसने लिखा है कि ये लोग गरमी में बिलकुल नंगे रहते है और केवल चार अंगुल की लँगोटी बाँधते हैं। जाड़ों में ये चटाई ओढ़ते हैं और तरह तरह के रंगों के टुकड़ों को जोड़कर एक कपड़ा सी लेते हैं और उसीको पहनते हैं। ये अपने शरीर पर जली हुई हड्डी की राख मलते हैं और गले मे आदमी की खोपड़ी लटकाए रहते हैं। ये दूसरो को परिणाम की शिक्षा देने और अपनी दीनता जतलाने के लिये उसी खोपड़ी से खाते हैं।[१]

पर बैरूनी ने इस प्रकार के साधुओ को महादेव का उपासक कहा है और इनका रूप भी इसी से मिलता जुलता बतलाया है। वह भी लिखता है कि ये लोग गले में रुडमाला डालकर जंगल जंगल घूमा करते थे ।[२]

योगी

योगियो और संसारत्यागी साधुओ के हाल भी इन पुस्तको में लिखे हैं। पर इनमे से सबसे अधिक विलक्षण घटना वह है, जो सुलैमान सौदागर ने ईसवी नवीं शताब्दी के मध्य मे अपनी आँखों देखी थी। वह कहता है

"भारत मे ऐसे लोग भी हैं, जो सदा पहाड़ों और जंगलो में घूमा करते है और लोगो से बहुत कम मिलते जुलते है। जब भूख लगती है, तब वे लोग जंगल के फल या घास पात खा लेते हैं।' उनमें से कुछ लोग बिलकुल नंग धडंग होते हैं। हाँ, चीते की खाल का एक टुकड़ा अवश्य उनपर पड़ा रहता है। मैंने इसी प्रकार के एक आदमी को धूप मे बैठे हुए देखा था। सोलह बरस बाद जब मैं फिर उसी ओर से गया; तब भी मैने उसको उसी प्रकार और उसी दशा में बैठे हुए पाया। मुझे आश्चर्य होता था कि धूप की गरमी से उसकी आँखें क्यो न बह गई।"[३]

[१] अजायबुल् हिन्द ; बुज़ुर्ग बिन शहरयार; पृ० १५५ (लीडन) ।

[२] किताबुल् हिन्द, पृ० ५८ ।

[३] सफरनामा सुलैमान सौदागर; पृ० ५०-५१ ।

समनियः और इस्लाम

समनियः के साथ मुसलमानों के सम्बन्ध खुरासान, तुर्किस्तान और अफगानिस्तान से आरम्भ होते हैं और धीरे धीरे भारत तक बढ़ते चले आते हैं। यहाँ तक कि बल्ख के नवविहार (नौ बहार) के पुजारी बरमकियों से लेकर इन देशों के साधारण बौद्धों ने भी मुसलमान होने में अधिक आगा पीछा नहीं किया। यही दशा हमें सिन्ध में भी दिखाई पड़ती है। हिजरी पहली शताब्दी (ईसवी सातवीं शताब्दी) के अन्त में अर्थात् सिन्ध की विजय के कुछ ही वर्षों के बाद, उम्मिया सम्प्रदाय के धर्मनिष्ठ खलीफा उमर बिन अब्दुल अजीज ने जब सिन्ध के लोगों के नाम मुसलमान हो जाने के लिये पत्र भेजा, तब बहुत से राजा मुसलमान हो गए ।'

इसी प्रकार मलाबार, मालदीप और कुछ दूसरे टापुओं में भी हमें यही बात दिखाई देती है। हमने इस प्रकार की बहुत सी घटनाओं का अपने "हिन्दोस्तान में इस्लाम" नामक लेख में विस्तार सहित वर्णन किया है जो आगे दिया गया है, इस लिये उन बातों को यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

[१] फ़ुतूहुल् बुल्दान; बिलाजुरी। "फ़तह सिन्ध" (सिन्ध की विजय) का प्रकरण ।

समनियः और हसरियः

ऊपर एक जगह यह कहा जा चुका है कि प्रसिद्ध दार्शनिक और वक्ता निज़ाम मोतजली पर, जो हिजरी दूसरी शताब्दी के अन्त (ईसवी आठवीं शताब्दी) में हुआ था, और खलीफा मामूँ रशीद का गुरू था, उसके शत्रुओं ने कुछ झूठे अभियोग लगाए थे। उनमें से

एक अभियोग यह भी था कि वह जवानी में मजूसियो और समनियो के साथ रहा था और "तकाफओ अदिल्ला" का सिद्धान्त उसने समनियो से सीखा था। साथ ही एक सूची भी दी गई है कि अमुक सिद्धान्त अमुक सम्प्रदाय से और अमुक सिद्धान्त अमुक सम्प्रदाय से सीखा था। जो हो; यह बात कई पुस्तको मे एक ही तरह से लिखी गई है। पर केवल एक शब्द में हर जगह नया पाठ है। सब से पुरानी पुस्तक, जिसमे मुझे ये बातें मिली हैं अब्दुल कादिर बगदादी (मृत्यु सन् ४२९ हि०; १०३७ ई०) की किताबुल फरक बैनल् फिरक है। इस पुस्तक में यह शब्द समतियः (सभनियः) लिखा है। पर एक प्रामाणिक हदीस जाननेवाले और इतिहास लेखक ने, जिसका नाम समआनी है और जिसकी मृत्यु सन् ५६२ हि० से हुई थी, यह लेख ज्यो का त्यो उद्धत किया है। पर उसमे समनियः की जगह पर "इसरियः" लिखा है, जैसा कि उसकी किताबुल् अन्साय की उस पुरानी प्रति में है, जिसे गब मेमोरियल, लन्दन ने सन् १९१२ ई० में जिकोग्राफ के द्वारा ज्यो का त्यो छापा है।

इसरियः नाम के किसी सम्प्रदाय का अभी तक पता नहीं चला है। और शायद इसी लिये किसी ने इसको दहरिया कर दिया है, जैसा कि मौलाना शिब्ली के "इल्मुल् कलाम" के उद्धरण में है। पर यह पाठ स्पष्ट और सार्थक है। इस समनियः और हसरियः के अन्तर पर मैं बहुत देर तक विचार करता रहा और अन्त मे ईश्वर की कृपा से एक परिणाम पर पहुँच कर मुझे पूरा सन्तोष हो गया। वास्तव में समथनी की प्रति में जो इसरियः शब्य है, वह मूल में खियारियः था। इस खिजरियः शब्द के "खे" और "ज्वाद" पर की दोनों विन्दियों लेखको ने उड़ा दी हैं, जिससे खिजरियः का इसरियः हो गया। इस परिणाम तक पहुंचने में बीच के जिस सम्बन्ध ने सहायता दी. वह इमाम समआनी के समय के वार्शनिक और हदीस के पंडित शहरिस्तानी का यह विचार था कि - "बुद्धके विषय में जो बातें कही जाती हैं, यदि वह ठीक हों, तो वह बुद्ध उस खिज़्र से मिलते जुलते हैं जिनका अस्तित्व मुसलमान ज्योतिषी और मेस्मराइजर मानते और बतलाया करते हैं।[१] इससे यह पता चला कि बुद्ध को खिज़्र मानकर लोगों ने बौद्ध मतवालों का नाम खिजरियः रख लिया था। इसीसे समआनी ने निजाम के वर्णन में इस मतवालों का नाम निजरियः लिख दिया। इसी आधार पर बग़दादी का समनियः और समआनी का खिजरियः कहना एक ही बात है।

मुहम्मिरा

अरबी पुस्तकों में बौद्धों का एक तीसरा नाम मुहम्मिरा भी है, जिसका अर्थ है लाल कपड़े पहननेवाले ।[२] या तो इससे गेरुए रंग से अभिप्राय हो और या केसरिया रंग से। इस धर्म के साधु इसी रंग से पहचाने जाते थे ।

[१] मिलल व नहल; शहरिस्तानी; तीसरा खंड; पृ० २४२ मिलल व नहल की इब्न हजन वाली टीका ।

[२] किताबुल् हिन्दू; बैरूनी पृ० १६१ ।

बुद्ध और बुत

इस अवसर पर एक और शब्द का भी विचार कर लेना आव- श्यक है; और वह शब्द "बुत" है, जिससे बुत-परस्त (मूर्तिपूजक) और बुतखाना (मन्दिर) शब्द बने हैं। साधारणतः लोग "बुत" को फ़ारसी का शब्द समझते हैं। पर वास्तव में “बुद्ध” शब्द से बुद और फिर बुद से बुत शब्द बना है। बुद्ध की मूत्ति की पूजा हुआ करती थी; इस लिये फ़ारसी में बुद शब्द का अर्थ ही बुत या मूत्ति हो गया। इसी लिये अरबी मे इस बुत को “बुद” कहते हैं और इसका बहुवचन रूप "बुदूह" होता है।[१]

भारत में सिमली की मूर्त्ति

अरब लोग यह बात अच्छी तरह जानते थे कि मूर्त्तियों आदि के ग्राहक लोग अधिकतर भारत के ही लोग होते हैं। इसी लिये लोगो को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि अमीर मुआविया ने (सन् ४६ हि० में) जब सिसली (इटली) पर चढ़ाई की, तब वहाँ उसको सोने की मूर्त्तियाँ मिलीं। उसने सोचा कि इन मूर्त्तियो में जितना सोना है, उसके मूल्य के

सिवाय उन मूर्तियो की बनवाई और कारीगरी का मूल्य भी मिल जाय । इस लिये उसने उन मूर्त्तियों को भारत भेजकर उन्हे बेचना चाहा। कुछ इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि मुसलमानों ने इस विचार का विरोध किया; इस लिये इस विचार के अनुसार काम नहीं हुआ।[२] पर बैरूनी का कहना है कि वह मूत्तियाँ भारत में लाई गई और यहाँ बेची गई।[३] सम्भव है कि बैरूनी ने यह बात वाकदी के उस प्रवाद के आधार पर लिखी हो, जिसे बिलाजुरी ने भी[४] फुतूहुल् बुल्दान में उद्धृत किया है।.

[१] देखो फेहरिस्त इब्न नदीम, पृ० ३४७ और सफरनामा सुलैमान ; पृ० ५५-५७ ; कित्ताबुल् बिदअ वत्तारीख ; पृ० १६ और मिलल व नहल ; शहरिस्तानी; पृ० २४० ।

[२] अमारी सिसली, निहायतुल् अरब के आधार पर; पृ० ४२६ ।

[३] किताबुल् हिन्द ; बैरूनी पृ० ६० ।

[४] फ्रुतूहुन् बुल्दान; बिलाजुरी, पृ० ३२५; (लीडन) ।

जो हो, अरब और भारत के ये धार्मिक सम्बन्ध रंग लाए और दोनों पर एक दूसरे का प्रभाव पड़ने का अवसर आया। कम से कम इतना तो अवश्य हुआ कि दोनो को एक दूसरे के धर्म की कुछ न कुछ जानकारी हो गई। मेरा विचार यह है कि उस समय भारत में बौद्धधर्म का बहुत जोर था; और बौद्धों पर अरबों के धर्म का अधिक प्रभाव पड़ा था। यह प्रभाव सवसे अधिक पहले उन रास्तों पर दिखलाई पड़ता है, जिन रास्तों से अरब व्यापारी आया जाया करते थे; अर्थात् कारोमंडल, मलावार और कोलम से लेकर कच्छ और गुजरात तक और उधर सिन्ध से लेकर काश्मीर तक अरबों का यह प्रभाव अधिक दिखाई देता है।

उधर दक्षिणी भारत और भारत के दक्षिणी टापुओं से अरबों के सम्वन्ध सबसे अधिक थे। इसका कारण व्यापार तो था ही, पर दूसरा कारण यह भी था कि लंका में जो पुराने चरण चिह्न हैं, उनके दर्शनों के लिये भी अरब लोग अधिक खिंचकर आते थे।

अरब और भारत दोनों का मिला हुआ एक पवित्र स्थान

प्रायः सब लोग यह बात जानते हैं कि सरन्दीप, सीलोन या लंका के एक पहाड़ की एक चट्टान पर पैरों का एक चिह्न है। ईश्वर जाने कब से इस चरण चिह्न पर लोगों का विश्वास और श्रद्धा है। पर सबसे विलक्षण बात यह है कि पुराने मुसलमान अरब, बौद्ध और साधारण हिन्दू तीनो ही इस चरण चिह्न पर हृदय से श्रद्धा और विश्वास रखते आए हैं; और यह एक ऐसी वस्तु है जिसकी दूसरी उपमा धार्मिक संसार मे नहीं मिल सकती । मुसलमान इसको हजरत 'आदम का चरण-चिह्न समझते हैं और इसका आदर करते हैं। बौद्ध उसको शाक्यमुनि का चरण-चिह्न और हिन्दू शिवजी (विष्णु ?) का चरण-चिह्न समझते हैं और उसकी पूजा करते हैं। दूर दूर से लोग यात्रा के लिये वहाँ जाते हैं। मुसलमान अरब यात्रियों और इराक्त के फकीरों को उसकी जियारत या दर्शन करने का बहुत शौक था। समुद्र की यात्रा करनेवाले प्रायः सभी अरब यात्रियों ने इसका वर्णन किया है और इसकी जियारत या दर्शन का शौक उन्हें वहाँ तक खीच ले गया है।

अन्त मे इसी कारण इस टापू में मुसलमान फकीरो का बहुत अधिक आना जाना होने लगा; और उनके इस आने जाने के कारण इस्लाम के पैर वहाँ जम गए। इब्न बतूता के समय में वहाँ का राजा हिन्दू था; पर चरण-चिहवाले पहाड़ के पास ख्वाजा खिज़्र की गुफा भी दिखाई देती थी। कहीं बाबा ताहिर की गुफा मिलती थी। चीलाऊ (सलेम) में हाथी बहुत होते थे। पर कहते हैं कि एक शीराजी वृद्ध महात्मा शेख अब्दुल्ला खफीफ (मृत्यु सन् ३३१ हि०) के आशीर्वाद से वे किसी को नहीं सताते । इसी लिये जब से इन महात्मा का यह चमत्कार दिखाई देने लगा, तब से वहाँ के मूत्ति पूजक भी मुसलमानो का आदर

करते हैं। "वे उन्हे अपने घरों में ठहराते हैं। और अपने बाल बच्चो मे उनको रहने देते हैं। वे अब तक (इब्न बतूता के समय तक) शेख अब्दुल्ला खफीफ के नामका आदर करते हैं।"

भारत में इस्लाम

इस प्रकार के व्यापारिक, सामाजिक और राजनीतिक सम्बन्धो का परिणाम यह हुआ कि सिन्ध, गुजरात, कारोमंडल, मलावार, मालदीप, सरन्दीप और जावा में इस्लाम धीरे धीरे अपने पैर बढ़ाने लगा। इन टापुओ मे एक ओर हिन्दुओ और दूसरी ओर चीनियो के प्रभाव से बौद्धमत फैला हुआ था। पर हर शताब्दी मे भूगोल और यात्रा-विवरणो की जो नई पुस्तकें लिखी गई थी, उनको देखने से यह पता लगता है कि बिना लड़ाई भिड़ाई के बहुत ही शान्ति और चैन के साथ यहाँ इस्लाम के प्रभाव बढ़ते जाते हैं और दोनों जातियों को एक दूसरी के सम्बन्ध की बातें जानने का अवसर मिलता जाता है। अब इस समय की कुछ घटनाएँ देकर यह प्रकरण समाप्त किया जायगा ।

पंजाव या सीमा प्रान्त के एक राजा का मुसलमान होना

बिलाज़ुरी, जो हिजरी तीसरी शताब्दी (ईसवी नवीं शताब्दी) का इतिहास-लेखक है, एक स्थान पर लिखता है कि काश्मीर, काबुल और मुलतान के बीच में असीफान (असीवान) [१] नाम का एक नगर था। वहाँ के राजा का लाडला लड़का बहुत बीमार हुआ । राजा ने मन्दिर के पुजारियो को बुलाकर कहा कि इसके कुशलमंगल के लिये प्रार्थना करो। पुजारियों ने दूसरे दिन आकर कहा कि प्रार्थना की गई थी और देवताओ ने कह दिया है कि यह लड़का जीता रहेगा। संयोग से इसके थोड़ी ही देर बाद वह लड़का मर गया। राजा को बहुत अधिक दुःख हुआ। उसने उसी समय जाकर मन्दिर गिरा दिया, पुजारियों को मार डाला और नगर के मुसलमान व्यापारियो को बुलवाकर उनसे उनके धर्म का हाल पूछा। उन्होने इस्लाम के सिद्धान्त बतलाए । इसपर राजा मुसलमान हो गया ।[२] बिलाज़ुरी कहता है-

"यह घटना खलीफ़ा मोतसिम बिल्लाह के समय में हुई थी।" और मोतसिम बिल्लाह का समय सन् २१८ से २२७ हि० तक है।

[१] शमीर खुसरो ने सजायनुल् फ़ूनूह में सेवान नाम के एक किले का नाम लिया है, जो दिल्ली से सौ फरसंग की दूरी पर था और सन् ७०८ में यहाँ का गजा गीतलचन्द था ।

[२] फुमृहुल उल्दान; चिलाजुरी; पृ० ४४६ ।

अरबों और हिन्दुओं में धार्मिक शास्त्रार्थ

दोनो के आपस के सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ चुके थे कि अरव मुसलमानो और हिन्दुओं में बल्कि बौद्धों से भी मित्रों की भाँति धर्म सम्बन्धी शास्त्रार्थ होते थे । मोतसिम के पिता हारू रशीद (हिजरी दूसरी शताब्दी का अन्त) से भारत के किसी राजा ने कहला भेजा कि आप अपने धर्म के किसी विद्वान् को हमारे पास भेज दीजिए, जो आकर हमे इस्लाम के सम्बन्ध की सब बातें बतलावे और हमारे सामने हमारे एक पंडित से शास्त्रार्थ करे। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि सिन्ध के पास किसी राजा के यहाँ बौद्धधर्म का एक विद्वान् पंडित था। उसने राजा को शास्त्रार्थ कराने के लिये तैयार किया था। इसपर राजा ने हारूँ रशीद से कहला भेजा था कि मैंने सुना है कि आपके पास तलवार के सिवा और कोई ऐसी चीज या बात नहीं है, जिससे आप अपने धर्म की सचाई सिद्ध कर सकें । अगर आपको अपने धर्म की सचाई का विश्वास हो, तो आप अपने यहाँ के किसी विद्वान् को भेजिए जो यहाँ आकर हमारे पंडित से शास्त्रार्थ करे।

खलीफा ने हदीस जाननेवाले एक अच्छे विद्वान् को इस काम के लिये भेज दिया। जब पंडित अपनी बुद्धि के अनुसार आपत्तियों करने लगा, तब मुल्ला उसके उत्तर मे हदीसें रखने लगे, पंडित ने कहा कि इन हदीसो को तो वही मान सकता है, जो तुम्हारे धर्म को मानता हो, कुछ लोग यह भी कहते हैं कि पंडित ने पूछा कि अगर तुम्हारा खुदा सब चीजो

पर अधिकार रखता है, तो क्या वह अपने जैसा कोई दूसरा खुदा भी बना सकता है ? उन भोले भाले मुल्ला साहब ने कहा कि इस प्रकार की बातो का उत्तर देना हमारा काम नहीं है। यह कलामवाले पंडितो या उन लोगो का काम है जो धर्म की बातो को तर्क और बुद्धि से सिद्ध करना जानते हैं। राजा ने उन मुल्ला साहब को लौटा दिया; और हारूँ रशीद से कहला भेजा कि पहले तो मैंने बड़े लोगों से सुना था और अब अपनी आँखों से भी देख लिया कि आपके पास अपने धर्म की सचाई का कोई प्रमाण नहीं है। खलीफा ने कलाम' वालों को बुलवाकर यह प्रश्न उनके सामने रखा। उनमें से छोटी अवस्था के एक बालक ने उठकर कहा- "हे मुसलमानो के स्वामी, यह आपत्ति ठीक नहीं है।

अल्लाह या ईश्वर तो वह है, जिसको न किसी ने बनाया हो, न पैदा किया हो और जो न किसी का सिरजा हुआ हो । अब यदि वह अपने जैसा कोई दूसरा अल्लाह पैदा करेगा, तो वह उसके जैसा किसी तरह नहीं हो सकेगा; क्योंकि आखिर वह उसीका बताया हुआ होगा। फिर दूसरी बात यह है कि ठीक खुदा की तरह का कोई और खुदा हो जाय, तो इसमें खुदा का अपमान है। खुदा का किसी प्रकार अपमान हो नहीं सकता; और खुदा को अपना अपमान करने का अधिकार नहीं है। यह प्रश्न तो ऐसा ही है, जैसे कोई कहे कि क्या खुदा मूर्ख होसकता है? क्या ख़ुदा मर सकता है? क्या खुदा खा सकता है, या पी सकता है, या सो सकता है? सभी लोग जानते हैं कि ईश्वर इनमें से कुछ भी नही कर सकता; क्योकि इससे उसकी प्रतिष्ठा में बाधा पड़ती है-यह काम उसकी शान के खिलाफ है।" सब लोगों ने यह उत्तर पसन्द किया; और खलीफा ने चाहा कि उस पंडित से शास्त्रार्थ करने के लिये यही लड़का हिन्दुस्तान भेजा जाय । पर अनुभवी लोगों ने निवेदन किया कि हुजूर, यह अभी विलकुल बच्चा है।

यदि इसने एक बात उत्तर दे दिया, तो यह आवश्यक नहीं कि सभी बातो का उत्तर दे सके। इस लिये खलीफा ने कलाम (तर्क) के जानकार एक दूसरे विद्वान् को चुनकर भारत भेजा। एक प्रवाद यह है कि वह बौद्ध इस विद्वान् से किसी समय शास्त्रार्थ कर चुका था और हार चुका था। और दूसरा प्रवाद यह है कि उस बौर ने रास्ते में ही एक आदमी भेजकर यह जानना चाहा कि यह खाली धार्मिक मुल्ला है या तर्कशास्त्र भी जानता

है। जब उसे पता लगा कि यह तर्कशास्त्र का भी बहुत बड़ा पंडित है, तब दोनो प्रवादो में है कि उस पंडित ने समझ लिया कि हम इससे शास्त्रार्थ नही कर सकते। इस लिये उसने उस मुसलमान को राजा के दरबार मे पहुँचने ही न दिया और रास्ते मे ही उसका जहर दिलवा दिया ।[१]

[१] धर्म की बातों को बुद्धि और तर्क से ठीक सिद्ध करना "कलाम" कहलाता है। इनमें प्रभिप्राय प्रायः तर्कशास्त्र से है । - यनुवादक ।

इस कहानी की सब बातें चाहे सच हों या न हो, पर इससे इतना अवश्य सिद्ध होता है कि इन दोनो जातियों में धार्मिक सम्बन्ध और मेल जोल इतना बढ़ गया था ।

एक शास्त्रार्थ करनेवाला राजा

इतिहास-लेखक मसऊदी, जो सन् ३०३ हि० में भारत आया था, खम्भात के प्रकरण में लिखता है-

"मैं जब सन् ३०२ हि० मे यहाँ आया, तब यहाँ का हाकिम एक बनिया था जो ब्राह्मणधर्म का माननेवाला था। वह महानगर के राजा वल्लभराय के अधीन था। उसको शास्त्रार्थ का बहुत शौक था। उसके नगर से बाहर से जो नए मुसलमान या दूसरे धर्म के लोग आते थे, उनसे वह शास्त्रार्थ करता था ।"[२]

[१] अहमद बिन यहिया अल् मुर्तजा कृत श्रमल फ्री शरह किताबुल् मिजल व नहल। किताबुल् मनियः वल् जिक्रुल् मोतजिला का प्रकरण पृ० ३१-३४ (हैदराबाद दक्खिन मे सन् १३१६ हि० में प्रकाशित।)

[२] मुरूमुज़ज़हब, ससऊदी, पहला खंड; पृ० २५४. (लीडन) ।

बौद्धों से एक और शास्त्रार्थ

बौद्ध मतवाले केवल वही ज्ञान मानते थे जो बाहरी इन्द्रियों से प्राप्त होता था; और किसी प्रकार से होनेवाले ज्ञान को नहीं मानते थे। उन दिनों (हिजरी दूसरी शताब्दी का मध्य) बसरा में अनेक धर्मों और सम्प्रदायो के लोग रहा करते थे। वहाँ वासिल बिन अता, जहम बिन सफवान, और बौद्धों से इस विषय में शास्त्रार्थ हुआ था । अन्त में वासिल ने अपने तर्कों से उनको हरा दिया ।[१]

एक मुसलमान का मूर्तिपूजक हो जाना

सन् ३७० हि० का एक अरब यात्री, जो जेरूसलम का रहने बाला था, सिन्ध के मन्दिरों का हाल लिखता हुआ कहता है- "हबरूआ में पत्थर की दो विलक्षण मूर्तियों हैं। वह देखने में सोने और चाँदी की जान पड़ती हैं। कहते हैं कि यहाँ आकर जो प्रार्थना की जाती है, वह पूरी हो जाती है। इसके पास हरे रंग के पानी का एक सोता है, जो बिलकुल तूतिया सा जान पड़ता है। यह पानी घावों के लिये बहुत लाभदायक है। यहाँ के पुजारियों का खर्च देवदासियों से चलता है। बड़े बड़े लोग यहाँ लाकर अपनी लड़कियाँ चढ़ाते हैं। मैंने एक मुसलमान को देखा था जो उन दिनों मूत्तियों की पूजा करने लगा था। फिर पीछे से नैशापुर जाकर वह मुसलमान हो गया। ये दोनों मूत्तियाँ जादू की हैं। इन्हें कोई छू नहीं सकता ।"[२]

[१] किताबुल् मिलल व नहल की मुर्तजा ज़ैदी बाली शरह या टीका; वासिल बिन अता का वर्णन । (हैदराबाद से प्रकाशित।)

[२] अहसनुत् तकासीम फी मारफति अकालीम; बुशारी; पृ० ४८३ ।

हज़ार बरस पहले कुरान का भारतीय भाषा में अनुवाद

आज लोग भारतीय भाषाओं में कुरान का अनुवाद करने लगे हैं। पर यह सुनकर लोगो को बहुत आश्चर्य होगा कि आज से प्रायः एक हजार बरस पहले एक हिन्दू राजा की आज्ञा से कुरान का हिन्दी या सिन्धी मे अनुवाद किया गया था। सन् २७० हि० में अलरा (सिन्ध का अलोर नामक स्थान १) के राजा महरोग ने, जिसका राज्य कश्मीर वाला (ऊपरी काश्मीर अर्थात् खास काश्मीर) और कश्मीर तेरीं (नीचे का काश्मीर, अर्थात् पंजाब) के बीच में है और जो भारत के बड़े राजाओ में से है, मन्सूरा (सिन्ध के अमीर अब्दुल्लाह बिन उमर को लिख भेजा कि आप किसी ऐसे आदमी को हमारे पास भेज दें जो हमको हिन्दी मे इस्लाम का धर्म समझा सके । मन्सूरा मे इराक़ का एक मुसलमान था, जो बहुत होशियार, तेज समझदार और कवि था। वह भारत मे ही पला था; इस लिये वह यहाँ की कई भाषाएँ जानता था। अमीर ने उससे कहा कि राजा की ऐसी इच्छा है। वह तैयार हो गया। उसने राजा की भाषा में एक कविता लिखकर राजा के पास भेजी। राजा ने वह कविता सुनकर बहुत पसन्द की और यात्रा के लिये व्यय भेजकर उसे अपने पास बुलवाया। वह तीन बरस तक राजा के दरबार मे रहा; और उसकी इच्छा से उसने कुरान का वहाँ की भारतीय भाषा मे अनुवाद किया। राजा नित्य अनुवाद सुनता था और उसपर उसका बहुत अधिक प्रभाव होता था ।

एक गुजराती राजा का अनुपम धार्मिक न्याय

हिजरी छठी शताब्दी के अन्त मे जब सुलतान गोरी के बाद दिल्ली में शम्सुद्दीन अल्तम्श और सिन्ध में नासिरुद्दीन कबाचा का राज्य था, तब मुहम्मद औफी नाम का एक विद्वान् बुखारा से चलकर भारत आया था; और उसने सम्भवतः सिन्ध के किसी तट मन्सूरा या देबल से निकलकर फारस की खाड़ी, अरब के समुद्र तट और भारत के कई बन्दरगाहों की यात्रा की थी। इसी बीच में वह खम्भात भी पहुंचा था। इस समय उसकी दो पुस्तकें मिलती हैं। एक में तो फ़ारसी के कवियो का वर्णन है जिसका नाम लबाबुल् अलबाब

है और जो नासिरुद्दीन कबाचा के मन्त्री के नाम से (उनके आक्षेप मे) लिखी गई है। यह गब सीरीज लन्दन मे दो खंडो में प्रकाशित हो चुकी है। दूसरी पुस्तक इससे अधिक बड़ी है। उसका नाम जामे उल् हिकायात व लामे उर् रवायात है। इसमें लेखक ने कुछ तो अपने कानो सुनी, कुछ आँखो देखी और कुछ दूसरी पुस्तको में पढ़ी हुई घटनाओ और कथाओ आदि का अलग अलग शीर्षक देकर वर्णन किया है। यह पुस्तक सुलतान शम्सुद्दीन अल्तम्श के मन्त्री क़वामुद्दीन जुनैदी के नाम से लिखी है और अभी तक छपी नहीं है। इसकी हाथ की लिखी एक प्रति दारुलू मुसन्निफीन के पुस्तकालय में भी रखी है।

मुहम्मद औफी ने इस पुस्तक के दूसरे प्रकरण में, जिसमें राजाओ के सम्बन्ध की घटनाओं का वर्णन है, एक विलक्षण कहानी लिखी है, जिससे पता चलता है कि अरबो के शासन काल में इस देश में हिन्दुओं और मुसलमानों के कैसे सम्बन्ध थे; और हिन्दू राजा अपनी मुसलमान प्रजा के साथ कैसा अच्छा न्याय करते थे। मुहम्मद औफी की यह यात्रा सन् ६६५ हि० से पहले हुई थी। इस लिये जो घटना उसने लिखी है, वह अवश्य उससे पहले की है। और यह वह समय है कि जब गुजरात की और केवल सुलतान महमूद के और उसके दो सौ बरस बाद कुबुद्दीन ऐबक़ के यों ही साधारण से धाबे हुए थे; और इन धावों के सिवा वहाँ किसी इस्लामी शासन का नाम निशान भी नहीं था ।

मुहम्मद औफी कहता है- "एक बार मुझे खम्भायत जाना पड़ा, जो समुद्र के किनारे है। वहाँ कुछ धर्मनिष्ठ मुसलमान बसते हैं जो यात्रियो का बहुत आदर सत्कार करते हैं। (अहमदाबाद; गुजरात के पास) के राज्य मुसलमान और कुछ उनके विरोधी बसते हैं। यह नगर नहरवाला में है। यहाँ कुछ जब में यहाँ आया, तब मैंने एक कहानी सुनी जो नौशेरवाँ वाली ऊपर की कहानी से मिलती जुलती है। वह कहानी यह है कि राजा जनक के समय मे एक मसजिद थी, जिसके ऊपर मिनारा था। उसी मिनारे पर चढ़कर मुसलमान लोग अजान देते थे। पारसियो ने हिन्दुओ को भड़काकर मुसलमानो से लड़ा दिया। हिन्दुओ ने वह मिनारा तोड़ दिया और मसजिद गिराकर अस्सी मुसलमानो को मार डाला।

मसजिद का इमाम और खुतबा पढ़नेवाला, जिसका नाम अली था, यहाँ से भागकर नहरवाला चला गया । वहाँ उसने राजा के दरबारियो और कर्मचारियो से मिलकर फरियाद

की; पर किसी ने उसकी बातो पर ध्यान नहीं दिया। यह दशा देखकर इमाम ने यह उपाय किया कि भारतीय भाषा (कदाचित् गुजराती) मे यह पूरी घटना एक कविता के रूप से लिखी; और पता लगाया कि राजा शिकार खेलने कब जाता है। जब शिकार का दिन आया, तब इमाम वह कविता लेकर रास्ते मे एक झाड़ी मे छिपकर बैठ गया। जब राजा उधर से चला, तब इमाम फरियादी बनकर समाने आ गया और दुहाई देकर प्रार्थना की कि मेरी यह कविता सुन ली जाय। राजा ने हाथी रोककर कवितावाली वह प्रार्थना सुनी, जिसका उसपर बहुत प्रभाव पड़ा। उसने वह कविता उस इमाम के हाथ से लेकर अपने एक अधिकारी को दे दी और कहा कि अवकाश के समय यह कविता मुझे फिर दिखलाई जाय ।

राजा उसी समय शिकार से लौट आया और अपने मन्त्री को बुलवा कर उसने कहा कि मैं तीन दिन तक महल में रहूँगा और आराम करूँगा। इन तीन दिनों के बीच में किसी काम के लिये मुझे कष्ट न देना । सब काम तुम आप ही कर लेना। यह कहकर राजा महल में चला गया और रात के समय एक तेज साँडनी पर बैठकर खम्भायत की ओर चल पड़ा। नहरवाला खम्भायत से ४० फरसंग है। पर राजा एक दिन रात में इतना मार्ग चलकर वहाँ पहुँच गया और व्यापारी का भेस बनाकर वहाँ उतरा । वह एक एक गली और बाजार में घूमा और वहाँ उसने बात की जाँच की। राह चलते लोगों की बातें सुनी। सब लोगों से उसने यही सुना कि मुसलमानों का कोई अपराध नहीं था; व्यर्थ वे बेचारे मारे गए और उनपर बड़ा अत्याचार हुआ। राजा ने उस घटना की पूरी पूरी जाँच करके एक लोटे में समुद्र का पानी भरा और उसका मुँह बन्द करके अपने साथ लेकर चल पड़ा। फिर उसी तरह चौबीस घंटे में वह साँडनी पर बैठकर अपनी राजधानी में आ पहुँचा। सवेरे राजा ने दरबार किया और सब मुकदमे सुने । साथ ही उसने मसजिद के उस इमाम को भी बुलवाया। जब वह दरबार में आया, तब राजा ने उसे आज्ञा दी कि तुम अपना निवेदन पत्र पढ़कर सुनाओ। जब इमाम ने वह प्रार्थनापत्र पढ़ा, तब हिन्दू दरबारियो ने कहा कि यह अभियोग झूठा है और यह दावा बिलकुल गलत है। राजा ने पानी रखनेवाले सेवक से वह लोटा मँगवाया और सब को उसमें का थोड़ा थोड़ा पानी पिलाया; जिसने वह पानी पीया, वह उसे घूँट न सका और बोला कि यह तो समुद्र का खारा पानी है।

राजा ने कहा कि इस बारे में मुझे किसी दूसरे पर भरोसा नहीं था; क्योंकि यह धार्मिक विरोध की बात थी। इस लिये मैंने आप जाकर इस बात की जाँच की और मुझे यह बात प्रमाणित हो गई कि इन मुसलमानों पर अवश्य अत्याचार हुआ है। जो लोग मेरी छाया और मेरे राज्य में बसते हों, उनपर कभी ऐसा अत्याचार नहीं होना चाहिए। इसके बाद आज्ञा दी कि यह अपराध ब्राह्मणों और पारसियों ने किया है; इस लिये उनमे से दो दो आदमियो को दंड दिया जाय और मुसलमानो को हरजाने में एक लाख बालोतरा (गुजराती सिक्का) दिलवाया, जिससे वे फिर से अपनी मसजिद और मिनारा बनवा लें और इमाम को कपड़े और इनाम दिया। वह मसजिद फिर से बनी और ये इनाम उसमे स्मृति के रूप मे रखे गए। हर साल ईद के दिन ये सब इनाम निकाल कर लोगो को दिखलाए जाते हैं।"

मुहम्मद औफी कहता है- "आज (सन् ६६५ हि०) तक ये चीजें वहाँ रखी हुई हैं; और वह पुरानी मसजिद और मिनारा भी बचा हुआ था। पर कुछ दिन हुए, बालो (या बाला) की सेना ने जब गुजरात पर चढ़ाई की, तब यह मसजिद उजाड़ दी। अन्त मे सैयद बिन शर्फ (किसी अरब व्यापारी) ने अपने धन से इसे फिर बनवाया है और इसके चारो ओर सुनहले गुम्चद बनवाये हैं। इस्लाम की यह स्मृति इस हिन्दू देश में आज तक बनी हुई है।"

मुसलमानो मे एकेश्वरवाद

एकेश्वरवाद का सिद्धान्त भी हर एक जाति में किसी न किसी रूप मे था। कुछ यूनानी दार्शनिक भी एक अर्थ मे यह सिद्धान्त मानते थे । अलेक्जेंड्रिया नगर का नव-अफलातूनी दल भी यह सिद्धान्त मानता था; और पुराने यहूदियो तथा ईसाइयों मे भी इसका प्रचार था । हिन्दू वेदान्त की सारी इमारत इसी नींव पर बनी है। कुछ मुसलमान सूफी भी यह बात बहुत जोरो से कहते है, कि यद्यपि स्वयं एकेश्वरवाद के कई भिन्न भिन्न अर्थ हैं और ईश्वर की एकता की भी बहुत सी व्याख्याएँ की गई हैं और यहाँ तक कि एक व्याख्या के अनुसार वह "हलूल" (अवतार या पुनर्जन्म) का पर्याय बन गया है।

जो हो, हमें यहाँ इस सिद्धान्त का विवेचन नहीं करना है, बल्कि हम इसका इतिहास देखना चाहते हैं। प्रायः यह प्रश्न उठा है कि मुसलमान सूफियों में यह विचार कहाँ से आया। जहाँ तक हमसे जॉच हो सकी है, हमारे पास कोई ऐसा तर्क नहीं है जिससे यह बात प्रमाणित हो सके कि हिन्दू वेदान्त का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ है, यद्यपि इस्लाम में इस विचार का आरम्भ ईसवी तीसरी शताब्दी के अन्त अर्थात् हुसैन बिन मन्सूर हल्लाज के समय से है। और इसकी पूर्णता हिजरी पाँचवीं शताब्दी में मुहीउद्दीन बिन अरबी के समय में दिखाई पड़ती है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि मुसलमान सूफियों पर, भारत में आने के बाद, हिन्दू वेदान्तियों का प्रभाव पड़ा है;[१] पर इस्लामी तसव्वुफ (संसार में रहकर भी उससे अलग रहना जो सूफियों का सिद्धान्त है) में इस सिद्धान्त का प्रभाव पहले से जान पड़ता है। वास्तविक बात यह है कि मुसलमानों में मुहीउद्दीन बिन अरबी ही सबसे पहले आदमी हैं, जिन्होंने इस सिद्धान्त का बहुत जोरों से समर्थन किया है। वे स्पेन देश के रहनेवाले थे और उन्हें हिन्दू दर्शनों से परिचित होने का कभी अवसर नहीं मिला था; इस लिये यह समझा जाता है कि उन पर भारतीय वेदान्त का नहीं, बल्कि नव-अ, फ्लातूनी दर्शन का प्रभाव पड़ा था ।

[१] सम्भवतः हिजरी आठवीं शताब्दी में एक पंडिन ने, जो मुसलमान हो गया था, एक सूफी विद्वान के साथ मिलकर संस्कृत की अमृतकुंड नामक पुस्तक का ऐनुल् हयात के नाम से अरबी में अनुवाद किया था। फिर उससे फारसी से और अब फ़ारसी से उर्दू से उसका अनुवाद हुआ है। इसके सिवा दारा ने अपने समय में सर-अकबर के नाम से योग-वाशिष्ठ का फ़ारसी में अनुवाद किया था ।

लेकिन जहाँ तक हुसैन बिन मन्सूर हल्लाज का सम्बन्ध है, यह कहा जा सकता है कि वह जिस एकेश्वरवाद का माननेवाला था, वह माननीय सतर्क सूफियों का एकेश्वरवाद नहीं था, बल्कि वह इलूल (अर्थात् एक प्रकार से हिन्दुओ के अबतारबाद) का माननेवाला था । पुराने लेखको ने उसका वर्णन करते हुए इस बात की पूरी तरह से व्याख्या की है

और स्वयं उसकी बनाई हुई किताबुत् तवासीन नामक पुस्तक से भी यही बात सिद्ध होती है। इसके साथ ही यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि वह भारत के जादू, मन्तर और इन्द्रजाल आदि सीखने, या जैसा कि कुछ लोग कहते हैं, अपने धर्म का प्रचार करने के लिये भारत आया था। इस लिये आश्चर्य नहीं कि वह यहीं से एकेश्वरवाद का सिद्धान्त अपने साथ इराक़ ले गया हो ।[१]

हिन्दुओं में निर्गुणवाद

इसके विरुद्ध कुछ ऐसे विचार भी हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि इस्लाम के कारण ही हिन्दुओ मे निर्गुणवाद का विचार फैला है और मूर्ति-पूजा के विरोधी भाव का प्रचार हुआ है। पर यह विषय आप ही बहुत लम्बा चौड़ा है और किसी दूसरे विषय के परिशिष्ट के रूप में इसपर विचार नहीं किया जा सकता ।

१ हल्लाज की पुस्तक किताबुत् तवासीन फ्रान्स के सूफी साहित्य के विद्वान् और पूर्वीय बातों का अनुसन्धान करनेवाले लुई मैसिनान (Louis Massignan) ने सन् १६१४ में पेरिस में प्रकाशित की है। और उसीके साथ एक खंड में हल्लाज के सम्बन्ध की सब पुरानी बातों और वर्णनों को भी एकत्र कर दिया है। इप पुस्तक मे इब्न बाकूयः स्ती शीराज़ी की पुस्तक के जो उद्धरण दिए गए है, उन्ही मे हल्लाज के भारत आने की घटना भी लिखी है। देखो पृष्ठ ३१ और ४३ (पेरिस से प्रकाशित) ।

समाप्ति

इन थोड़े से पृष्ठों में अरब और भारत के धार्मिक सम्बन्धों का जो दर्पण सामने रखा गया है, पाठक खूब ध्यानपूर्वक देखें कि यद्यपि ये दोनों जातियाँ अपने अपने धर्म

की कट्टर माननेवाली थीं, पर फिर भी क्या इन जातियों ने उस शीशे में कहीं बाल आने दिया है ? जो बात पहले हो चुकी है, वह क्या अब नहीं हो सकती?

भारत में मुसलमान विजयों से पहले

लेखक और ग्रन्थ जिनका आधार लिया गया है।

ऊपर जिन पुस्तको के नाम आ चुके हैं, उनके सिवा इस प्रकरण के लिये सिन्ध के फारसी इतिहासो से भी सहायता ली गई है। दुःख है कि ये पुस्तके अभी तक छपी नहीं हैं। हाँ कई पुस्तकालयों में हाथ की लिखी प्रतियाँ मिलती हैं। ईलियट साहब ने अपने इतिहास के पहले खंड मे इनके आवश्यक उद्धरण दे दिए हैं, और वही इस समय मेरे सामने हैं। उन पुस्तको के नाम इस प्रकार हैं-

(१) चचनामा

अरबी भाषा मे यह सिन्ध का सब से पुराना इतिहास था, और इसका नाम तारी, खुस् सिन्द वल् हिन्द है। मुहम्मद अली बिन हामिद बिन अबूबकर कूफी ने नासिरुद्दीन कबाचा के शासन काल (सन् ६१३ हि० ; सन् १२१६ ई०) में सिन्ध के ऊच नामक स्थान मे बैठकर फारसी मे इसका अनुवाद किया था। इसकी मूल अरबी प्रति नही मिलती ; पर केवल मुहम्मद बिन कासिम की मृत्यु और राजा दाहर की लड़की के क़ैद होने की घटना ही ऐसी है, जो इतिहास की दृष्टि से ठीक नहीं है। बाकी और सब बातें प्रायः ऐसी ही हैं जिनका अरब के पुराने इतिहासो से समर्थन होता है।

(२) तारीख़ मासूमी

यह मीर मुहम्मद मासूम का लिखा हुआ सिन्ध का इतिहास है और अकबर के समय में सन् १०११ हि० में लिखा गया था

(३) तारीख ताहिरी

मीर ताहिर बिन सैयद हसन कन्धारी ने अपने सिन्ध में रहने के समय (१०३० हि०; सन् १६२४ ई०) में सिन्ध का यह इतिहास लिखा था ।

(४) बेगलारनामा

यह पुस्तक शाह क़ासिम खाँ बिन सैयद क़ासिम बेगलार के नाम से सन् १०१७ हि० से सन् १०३६ हि० तक में लिखी गई थी ।

(५) तोहफतुल् किराम

यह सब से अन्तिम पुस्तक है, जो अली शेर ने सन् ११८१ हि० (१७६७ ई०) में लिखी थी ।

इस प्रकरण में जो बातें इकट्ठी की गई हैं, उनके सम्बन्ध में उर्दू की भी दो पुस्तकें हैं जिनका विशेष रूप से उल्लेख करना आवश्यक है ।

(१) तारोख सिन्द - लखनऊ के मौलाना अब्दुलहलीम शरर ने सन् १९०९ ई० में ईलियट कृत सिन्ध के इतिहास के पहले खंड के आधार पर और दूसरे कई ग्रन्थों के आधार पर और कुछ बातों की स्वयं जाँच करके भी, इस्लामी सिन्ध का बहुत ही विस्तृत इतिहास दो खंडों में लिखा था। जानने योग्य जितनी आवश्यक बातें - हैं, वे सब इसमें इकट्ठी कर दी गई हैं। पर अब इस पुस्तक का नए ढंग से सम्पादन होना आवश्यक है। साथ ही अपने इस इतिहास में मौलाना ने ईलियट पर बहुत अधिक भरोसा किया है और कठिन समस्याओं को सुलझाने में ऐसे अनुमानो से काम लिया है, जो मेरी समझ में ठीक नहीं हैं। पाठको को आगे चलकर इस प्रकार की बातें मिलेगी। जहाँ दूसरी पुस्तकों का उल्लेख किया है, वहाँ न तो पृष्ठ संख्या दी है और न खंड या प्रकरण आदि का नाम दिया है। इस लिये इस पुस्तक में दी हुई घटनाओं के सत्यासत्य का निर्णय करना बहुत ही कठिन है।

(२) उल्लेख के योग्य दूसरी पुस्तक दिल्ली के स्वर्गीय पीरजादा मुहम्मद हुसैन साहब एम० ए० की है। यह इब्न बतूता के यात्रा-विवरण के उस दूसरे खंड का उदू अनुवाद है, जो भारत के सम्बन्ध मे है। इसमे विशेषता यह है कि इब्न बतूता ने जिन स्थानों और व्यक्तियो का उल्लेख किया है, उनके सम्बन्ध मे इसमे अनुवादक ने अँगरेजी अनुवाद और स्वयं अपनी जाँच के आधार पर टिप्पणियों दी है।

हमारे स्कूलो और कालेजो में भारत का जो इतिहास पढ़ाया जाता है, वह एक विशेष उद्देश्य सामने रखकर पढ़ाया जाता है; और उसी उद्देश्य को सामने रखकर अँगरेजी मे भारत के इतिहास की पस्तकें लिखी जाती हैं। इन पुस्तकों मे प्राचीन भारत का जो इतिहास मिलता है, उसे एक प्रकार से सिकन्दर और उसके उत्तराधिकारियो के इतिहास का एक खंड कहना चाहिए। उसमे यही बतलाया जाता है कि सिकन्दर की इसी चढ़ाई से भारत की काया पलट हो गई, इसको विद्याओ और कलाओ की सम्पत्ति मिली और ऐतिहासिक जगत में इसने स्थान पाया। सिकन्दर की चढ़ाई और यात्रा के एक एक रास्ते का पता लगाना, बिगड़े हुए यूनानी नामो को ठीक करना और उनके उलटे पुलटे वर्णनो को ठीक करके और क्रम से लगाकर उपस्थित करना ही मानो भारत का पुराना इतिहास है। यही इतिहास- लेखक जब इस्लाम और भारत के इतिहास का आरम्भ करेंगे, तो थोड़ी सी पंक्तियों में जंगली अरबो का और फिर एक भीषण रक्त- पिपासु (ईश्वर रक्षा करो) पैग़म्बर का और उसके उत्तराधिकारियों की चढ़ाइयों का वर्णन करके एक ही दो पृष्ठ में अरब से सीधे गजनी पहुँच जायँगे ।

यहाँ महमूद की सेना भारत पर जहाद (धर्म के प्रकार या रक्षा के लिये युद्ध) करने के लिये तैयार मिलती है। उसी को लेकर वे तुरन्त पंजाब सिन्ध और गुजरात पहुँच जाते हैं और लूट मार करके उसे लौटा ले जाते हैं। फिर डेढ़ सौ बरस के बाद शहाबु द्दीन ग़ोरी को भारत में लाते हैं और उसके बाद से मध्यकालीन भारत के इतिहास का क्रम चल पड़ता है। यहाँ प्रश्न यह होता है कि इतनी दूरी और अन्तर होने पर भी यूनान की सीमा तो आकर भारत से मिल जाती है पर इतनी समीपता के होते हुए भी क्या भारत और अफगानिस्तान से एक ओर और मकरान तथा सिन्ध से दूसरी ओर कोई सीमा नहीं मिलती

थी? और क्या इन देशों में आपस में सन्धि और विग्रह, मेल और लड़ाई के सम्बन्ध नहीं थे? और सीमा प्रान्त के इन कबीलों के मुसलमान होने से पहले इन सब बातों का क्रम था या नहीं? क्या इन सब बातों की जाँच करना और इनका टूटी हुई कड़ियों को आपस में जोड़ना या मिलाना और उनसे कोई परिणाम निकालना आवश्यक है या नहीं?

इन पुस्तकों को पढ़ने और इन इतिहासों को देखने से यही जान पड़ता है कि महमूद गजनवी के समय तक एक भी मुसलमान म्लेच्छ का पैर इस पवित्र भूमि पर नहीं पड़ा था, और मुसलमानों तथा हिन्दुओं में आपस में न तो किसी प्रकार का सम्बन्ध था, न जान पहचान थी और न आना जाना था, यद्यपि पिछले पृष्ठों को पढ़नेवाले पाठक यह बात अच्छी तरह समझ गए होंगे कि इन दोनों जातियों में कितने भिन्न भिन्न प्रकार के सम्बन्ध चले आते थे।

भारत और खैबर की घाटी के उस पार के देशों मे सदा से बराबर लड़ाई और मेल के सम्बन्ध चले आते थे । इस्लाम से पहले इन देशो की यह दशा थी कि जब कभी काबुल का बादशाह बलवान् हो गया, तब उसने वैहिन्द और पेशावर तक अधिकार कर लिया, और जब भारत के राजाओ को अवसर मिला, तब उन्होने काबुल और कन्धार तक अपनी सीमा बढ़ा ली। यही दशा सिन्ध की ओर भी थी। कभी ईरान के बादशाह ने मकरान से सिन्धु नद तक अधिकार कर लिया, और कभी सिन्ध के राजा ने बलोचिस्तान और मकरान लेकर ईरान की सीमा से सीमा मिला दी।

ईसवी सातवी शताब्दी तक बराबर यही हाल होता था। उसी समय से मुसलमान लोग देशो को जीतते हुए इधर बढ़ने लगे और इन देशो के कबीले और जातियाँ मुसलमान होने लगी। उधर इस्लाम का सब से पहला सामानी राज्य था, जिसने बुखारा को अपनी राजधानी बनाया। पर उसके समय मे भी लोगो का ध्यान काबुल से आगे न जा सका । इसके बाद सफारी राज्य हुआ, जो थोड़े ही दिनो तक रहा। उसने काबुल और कन्धार से आगे पैर बढ़ाए थे। अब्बासी खिलाफत ने सिन्ध का नाम मात्र का शासन भी इसी को सौप दिया। इसके बाद सामानी राज्य की सीमाओ से हटकर उसके एक तुर्क अधिकारी अलप्तगीन ने अपने स्वामी की सैनिक चढ़ाई और दंड से बचने के लिये इस दूर के इलाके मे अधिकार

जमाने का प्रयत्न आरम्भ किया ; और राजनी मे अपने स्वतन्त्र राज्य की राजधानी बनाई। यह हिजरी चौथी शताब्दी के मध्य की बात है। इसी ग़जनी राज्य का, चाहे दूसरा कहो चाहे तीसरा, राजा महमूद गजनवी है। उसने अपने तेंतिस बरस के राज्य मे ग़जनी के चारो ओर के देशो और राज्यो को, चाहे वे मुसलमान थे और चाहे नही थे, अपने भीषण आक्रमणो से विवश करके और अपने छोटे से पैतृक राज्य मे मिलाकर एक बहुत बड़े साम्राज्य की नींव डाल दी। इसने राजनी के एक ओर क़ाश्गर के इस्लामी ऐलखानी राज्य को, दूसरी ओर स्वयं अपने स्वामी सामानियों के राज्य को, तीसरी ओर दैलमियो के राज्य को, तबरिस्तान के राज्य आलजियार को, पूर्व की ओर ग़ोरियों के देश को, जो अब तक न तो मुसलमान थे और न कभी किसी राज्य के अधीन रहे थे; और इसके बाद पूर्व में मुलतान और सिन्ध के अरब अमीरों को और फिर लाहौर तथा भारत के कुछ राजाओं को उलट पुलटकर राजनी का साम्राज्य स्थापित किया था। इनमें से भारत और ग़ोर के अतिरिक्त जितने राज्य थे, वे सब मुसलमानों के ही थे ।

हम यहाँ जिस विषय पर विचार करना चाहते हैं, उसमें इन सब बातो का विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं किया जा सकता; इस लिये हमने केवल प्रसंगवश ये थोड़ी सी पंक्तियाँ यहाँ दे दी हैं। हाँ, भारत का इतिहास लिखनेवालों का ध्यान हम इस ओर दिलाते हैं कि वे महमूद से पहले के अफगानिस्तान और भारत के सम्बन्धों की परिश्रम पूर्वक जॉच करें और आवश्यक सामग्री एकत्र करके लोगों के सामने कुछ नई बातें रखें ।

ऊपर के वर्णन से पाठकों ने यह समझ लिया होगा कि मुसलमानो ने भारतीय राजाओं के साथ जो युद्ध किए थे, वे केवल धार्मिक आवेश में आकर नहीं किए थे, बल्कि अनेक शताब्दियों से आपस में लड़ाई झगड़ों की जो एक श्रृंखला चली आती थी, यह भी उसीकी एक कड़ी थी ।

यह तो उत्तरी भारत का हाल था; पर दक्षिणी भारत की दशा कुछ और ही थी। सन् ४१६ हि० (सन् १०६४ ई०) में महमूद ग़ज़नवी, सन् ५७४ हि० (११७८ ई०) में शहाबुद्दीन गोरी और सन् ५९२ हि० (११९६ ई०) में क़ुत्बुद्दीन ऐबक गुजरात पर धावे करके बादल की तरह आए और आँधी की तरह निकल गए। हाँ इसके सौ बरस बाद बघेले राजा और उसके

मन्त्री माधव की आपस की शत्रुता और मनमुटाव के कारण और माधव के बुलाने पर सबसे पहले अलाउद्दीन खिलजी सन् ६९७ हि० (१२९७ ई०) मे गुजरात का हाकिम बन गया। अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात से लेकर समुद्र के किनारे किनारे कारोमंडल तक का प्रदेश जीत लिया। पर उसकी विजयो का क्रम उस जहाज़ की तरह था, जो अपने बल से समुद्र का कलेजा चीरता हुआ आगे बढ़ता जाता है। पर ज्यों ही वह एक कदम आगे बढ़ता है, त्यो ही उसके पीछे का पानी सिमटकर ऐसा हो जाता है कि पानी के ऊपर नाम के लिये भी किसी तरह का निशान नहीं रह जाता। यह मानो खिलजी सेनापत्ति की एक सैनिक सैर या यात्रा थी; इससे अधिक और कुछ भी नहीं।

सन् ७०९ हि० (१३०९ ई०) में उसके एक सैनिक अधिकारी मलिक काफूर ने कर्नाटक जीत लिया । पर इसके बाद सन् ७२७ हि० (१३२३ ई०) मे दक्षिण में बीजानगर का एक विशाल हिन्दू राज्य स्थापित हो गया, जो कई शताब्दियों तक दक्षिणी भारत को उत्तरी भारत के मुसलमान आक्रमण करनेवालो से बचाता रहा । मलिक काफूर की विजयो के प्रसंग मे मअबर (कारोमंडल) मे जो एक छोटा सा मुसलमानी राज्य बन गया था, वह भी चालीस बरस के बाद नष्ट होकर बीजानगर के राज्य मे मिल गया ।

पर इस लड़ाई भिड़ाई और चढ़ाई आदि की सीमा से दूर और बिलकुल अलग उन मुसलमान अरबो और इराकियो की बस्तियाँ थी, जो स्थल मार्ग से उत्तर से दक्षिण नही आए थे, बल्कि समुद्र के किनारो से चलकर इन प्रान्तो में आ बसे थे और बराबर यहाँ आते जाते रहते थे ।

यह एक बहुत ही स्पष्ट बात है कि उत्तरी भारत से पहले दक्षिणी भारत मे मुसलमानो के उपनिवेश स्थापित हुए थे और उनका सम्बन्ध असल में व्यापार के लिये आने जाने से था। उन प्रान्तों में केवल बाहर से ही आकर मुसलमान लोग नहीं बसे थे, बल्कि स्वयं उन देशों के निवासी भी मुसलमान होने लग गए थे। इस प्रकार का प्रभाव और परिणाम होने के सम्बन्ध में कई प्रकार के प्रवाद प्रसिद्ध हैं, जो इतिहास की पुस्तकों और यात्रा विवरणों में लिखे हुए हैं। उन सबका सारांश यह है कि यह प्रभाव दो प्रकार के

आकर्षणों से पड़ा था । एक तो अरब व्यापारियों के आने जाने के कारण; और दूसरे उन सूफियों और मुसलमान फ़क़ीरों की करामातो के कारण जो सरन्दीप के चरणचिह्न के दर्शन करने के लिये आया करते थे ।

मुसलमानों का पहला केन्द्र सरन्दीप

फ़रिश्ता ने लिखा है- "इस्लाम के पहले से ही अरब लोग इन टापुओं में व्यापार करने के लिये आया करते थे और यहाँ के लोग अरब जाया करते थे। इस लिये सबसे पहले सरन्दीप के राजा को इस्लाम धर्म और मुसलमानों का हाल मालुम हुआ। मुहम्मद साहब के समकालीनों के ही समय सन् ४० हि० (ईसवी सातवीं शताब्दी के आरम्भ में ही) में वह मुसलमान हो गया।"[१] फरिश्ता ने यह नहीं बतलाया है कि यह घटना उसे किस ग्रन्थ में लिखी हुई मिली थी; पर अजायबुलू हिन्द नाम की एक पुरानी पुस्तक से, जो सन् ३०० हि० के लगभग लिखी गई थी, इस प्रवाद का पूरा पूरा समर्थन होता है। बुजुर्ग बिन शहरयार नाम का मल्लाह जो इन टापुओं में अपने जहाज लाया करता था, सरन्दीप का वर्णन करता हुआ लिखता है-

[१] फरिश्ता; दूसरा खंड; "सिन्ध" शीर्षक आठवाँ प्रकरण; पृ० ३११, (नबलकिशोर प्रेस)।

"भारत के पुजारिया, संन्यासियो और योगिया के कई भेद हैं। उनमे से एक बेकौर[१] होते हैं जिनका मूल सरन्दीप से है। ये लोग मुसलमानो से बहुत प्रेम करते हैं और उनके प्रति बहुत अनुराग रखते हैं। ये गरमी के दिनो मे नंगे रहते हैं। कमर मे एक डोरी लगा कर केवल चार अंगुल की एक लँगोटी बाँध लेते है और जाडो में घास की चटाई ओढ लेते हैं। इनमे से कुछ लोग एक ऐसा कपड़ा पहनते हैं जो अनेक रंगो के छोटे छोटे टुकडो को

जोड़कर सीया हुआ होता है; और शरीर पर मुरदो की जली हुई हडियो की राख मल लेते है। ये लोग सिर और दाढ़ी मूछ के बाल मुँड़ाते हैं। गले मे मनुष्य की एक खोपड़ी लटकाए रहते हैं और अपनी दीनता दिखलाने तथा दूसरो को शिक्षा देने के लिये उसी में खाते है।"

ऊपर जो चित्र खींचा गया है, उसे देखते हुए और इस वर्ग के सम्बन्ध मे दूसरे अरब यात्रियो के वर्णनो को देखते हुए इस बात मे किसी प्रकार का सन्देह नही रह जाता कि ये लोग बौद्ध धर्म के माननेवाले होगे ।

[१] सम्भवत. यही वह शब्द है जो किताबुलू बिश्य वत्तारीख और सुलैमान सौदागर के यात्रा-विवरण आदि में कही बेकर जैन और कहीं बेकर- नतैन के नाम से मिलता है।

हमारा मल्लाह फिर इस प्रकार अपनी कहानी आरम्भ करता है-

"जब सरन्दीप के रहनेवालो और उसके आस पास के लोगो को इस्लाम के पैगम्बर के धर्म प्रचार के लिये उठने का हाल मालुम हुआ, तब उन्होने अपने मे से एक समझदार आदमी को पैग़म्बर के सम्बन्ध की सब बातो की जाँच करने के लिये अरबे भेजा। जब वह आदमी रुकता रुकता मदीने पहुँचा, तब रसूल मुहम्मद साहब का देहान्त हो चुका था। अबू बकर सिद्दीक की खिलाफत का भी अन्त हो चुका था और हजरत उमर का समय था। उनसे मिलकर उसने पैग़म्बर साहब की सब बातें पूछीं। हजरत उमर ने सब बातें व्योरेवार बतला दीं। जब वह लौटा, तब मकरान (बलोचिस्तान के पास) पहुँचकर मर गया। उसके साथ उसका एक हिन्दू नौकर था। वह सकुशल सरन्दीप पहुँच गया। उसीने रसूल पैग़म्बर साहब, हजरत अबू बकर और हजरत उमर के सम्बन्ध की सब बातें बतलाई; उनके साधुओं के से रंग ढंग का हाल बतलाया और यह भी बतलाया कि वे कैसे नम्र और आतिथ्य सत्कार करनेवाले हैं। वे पैवन्द लगे हुए कपड़े पहनते हैं और मसजिद में सोते हैं। अब ये लोग मुसलमानों के साथ जो इतना प्रेम और अनुराग रखते हैं, उसका कारण यही है।"[१]

इस प्रवाद का तीसरा समर्थन इस घटना से होता है कि हिजरी, पहली शताब्दी के अन्त में उमवियो की ओर से इराक़ का शासक हज्जाज था; और भारतीय टापुओ की ओर इराक के बन्दरगाह से ही जहाज आते थे। उस समय सरन्दीप (जिसे अरब लोग यादभुत या लाल का टापू भी कहते थे) के राजा ने मुसलमानो के प्रति अपनी मित्रता और प्रेम दिखलाने के लिये एक जहाज में दूसरे अनेक उपहारों के साथ उन मुसलमान स्त्रियो और लड़कियों को भी इराक़ भेज दिया, जिनके पति या पिता वहाँ व्यापार करते थे और वहीं परदेस में उनको अनाथ छोड़कर मर गए थे।[२] इस घटना से यह सिद्ध होता है कि हिजरी पहली शताब्दी में ही सरन्दीप मे मुसलमानों का उपनिवेश स्थापित हो चुका था। अबूजैद सैराफी (सन् ३०० हि०) ने हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त में यहाँ अरब व्यापारियों के रहने और आने जाने का उल्लेख किया है।[३]

[१] **अजायबुल् हिन्द; पृ० १५५-५७ ।**

[२] **फुतूहुल् बुल्दान; बिला जुरी; सन् २७६; पृ० ४३५ (लीडन)**

[३] **अबू ज़ैद सैराफ़ी; पृ० १२१ (पेरिस)**

दूसरा केन्द्र मालदीप

इस ओर मुसलमानों और अरबो का दूसरा केन्द्र मालदीप का टापू था, जिसको अरब लोग कभी कभी जजीरतुल् मद्दल और कभी कभी इन छोटे छोटे सब टापुओ को मिला कर दीबात[१] कहते थे। इन टापुओ का सबसे विस्तृत वर्णन इब्न बतूता ने किया है। उस के समय मे अर्थात् सुलतान मुहम्मद तुगलक के समय (सन् ७०० हि०) मे यह सारे का सारा टापू मुसलमान था और इसमें अरबों तथा देशी मुसलमानो की बस्तियाँ थीं। सुलतान खदीजा नाम की एक बंगाली महिला इस पर शासन करती थी। इब्न बतूता के समय में यहाँ यमन आदि के बहुत से विद्वान् और मल्लाह उपस्थित थे। उनकी जवानी

इस टापू के लोगो के मुसलमान होने का हाल सुनकर उसने इस प्रकार लिखा है- "यहाँ के लोग पहले मूर्तिपूजक थे। यहाँ हर महीने समुद्र मे से निकल कर देव के रूप मे एक बला आती थी। जब यहाँ के लोग उसको देखते थे, तब एक कुँआरी लड़की को बनाव सिगार करके उस मन्दिर मे छोड़ आते थे, जो समुद्र के किनारे था। पर मराको के एक अरब शेख अबुल बरकात बरबरी मग़रिबी संयोग से यहाँ आ गए थे। उनके आशीर्वाद से यह बला उनके सिर से टली थी। यह करामात देखकर वहाँ का राजा शनोराजा और सारी प्रजा शेख के हाथ से मुसलमान हो गई।" इब्न बतूता कहता है कि इस्लाम ग्रहण करनेवाले इस राजा ने जो मसजिद् बनवाई थी, उसकी मेहराब पर यह लेख लिखा हुआ मिला था-

"सुलतान अहमद शनवराजः अबुल बरकात मग़रिबी के हाथ से मुसलमान हुआ।"

तात्पर्य यह कि उस समय से लेकर आज तक ये सब टापू मुसलमान हैं और उनमें से बहुत से ऐसे लोग बसते हैं, जिनके वंश में अरबों का रक्त मिल गया है।

[१] दीप शब्द संस्कृत के द्वीप से बना है; और उसी दीप या दीब का बहुवचन अरबवालों ने "दीबात" बना लिया था ।

तीसरा केन्द्र मलाबार

प्रवादों से सिद्ध होता है कि इस्लाम और अरबों का तीसरा केन्द्र भारत का वह अन्तिम तट है, जिसको हिन्दुओं के पुराने समय में केरल कहते थे और पीछे से मलाबार कहने लगे (मलय इस प्रदेश के पर्वत का नाम है)। अरबी भूगोल-लेखकों ने इसकी सीमा गुजरात की अन्तिम सीमा से लेकर कोलम नामक स्थान तक, जो ट्रावन्कोर में है, बतलाई है ।

तोहफतुल् मुजाहिदीन में एक प्रवाद है, जिसे फ़रिश्ता ने उद्धृत किया है और जो इस प्रकार है-

"इस्लाम से पहले और इस्लाम के बाद यहूदी और ईसाई व्यापारी यहाँ आया करते थे और यहाँ रहने लग गए थे। जब इस्लाम का प्रचार हुए दो सौ बरस बीत गए, तब अरब और अजम (फ़ारस) प्रदेश के कुछ मुसलमान फकीर, जो हजरत आदम के चरण-चिह्नों के दर्शन करने के लिये सरन्दीप, जिसे लंका कहते हैं, जा रहे थे। संयोग से उन लोगों का जहाज हवा के झांके से बहक कर मलाबार के कदनकोर (कडंगानोर) नामक नगर के किनारे आ लगा। नगर के राजा जैमोर (सामरी) ने इनकी बहुत आव भगत की। बातों बातों में इस्लाम की चर्चा आई। राजा ने कहा कि मैंने यहूदियों और ईसाइयो के मुँह से तुम्हारे पैग़म्बर और धर्म का हाल सुना है। अब तुम आप सुनाओ। उन फकीरों ने इस्लाम धर्म के तत्त्व ऐसे प्रभावशाली रूप में बतलाए कि उस पर राजा मोहित हो गया।

राजा ने उनसे वचन ले लिया कि लौटते समय भी वे इसी मार्ग से जायँगे। अपने वचन के अनुसार लौटते समय भी वे वहाँ आये। राजा ने सब अमीरो को बुलाकर कहा कि अब में ईश्वर का स्मरण करना चाहता हूँ। यह कहकर उसने सारा देश अपने कर्मचारियो मे बराबर बाँट दिया और आप छिपकर उन फकीरो के साथ अरब चला गया। वहाँ जाकर वह मुसलमान हो गया; और उसने उन फकीरो से कहा कि मलाबार में इम्लाम का प्रचार करने का उपाय यह है कि तुम लोग मलाबार से व्यापार करना आरम्भ करो। और अपने अमीरों के नाम उसने इस आशय का एक पत्र लिखकर उन लोगो को दे दिया कि इन विदेशी व्यापारियों के साथ सब प्रकार से दया और अनुग्रह का व्यवहार किया जाय और हर अच्छे काम मे इनकी सहायता की जाय । इन्हे अपने उपासना-मन्दिर बनाने की आज्ञा दी जाय; और इनके साथ ऐसा अच्छा व्यवहार किया जाय कि ये लोग वहीं रहने लगे और उसी देश को अपना देश बनाने की इच्छा करे । उसी समय से अरब यात्री इस देश मे आने जाने और रहने सहने लगे ।"

एक और दूसरा प्रवाद है (जिसे फरिश्ता ने ऊपरवाले पहले प्रवाद से अधिक ठीक माना है, पर जो मेरी समझ मे पहले से अधिक ग़लत है) “कि जैमूर के मुसलमान होने की घटना स्वयं पैगम्बर मुहम्मद साहब के समय मे हुई थी।" इस प्रवाद के अनुसार ये फकीर लोग फिर मलाबार लौट आए। उन्होने कदनकोर मे मसजिद बनवाई । उनमे से कुछ लोग

तो वही रह गए और कुछ लोग वर्तमान ट्रावन्कोर के कोलम नगर मे चले गए। वहाँ भी उन्होने मसजिद बनवाई । फिर हेली, मारावी, जरपट्टन, दरपट्टन, फन्दरनिया (पंडा रानी), चालियात, फाकनौर और मगलौर में मसजिदे बनवाई और उपनिवेश स्थापित किए।"

यह तो फरिश्ता के कथन का सारांश है; पर मूल तोहफतुल् मुजाहिदीन के एक दो और उद्धरण भी उपयोगी है, जिनसे पीछे के समय के रंग ढंग का पता चलता है। उसमें कहा है- "भारत के पश्चिमी समुद्र तट के बन्दरगाहों पर भिन्न भिन्न देशों से बहुत से व्यापारी आते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि नए नगर बस गए है और मुसलमानों के व्यापार के कारण उनकी आबादी भी बढ़ गई है। मकान भी बहुत अधिकता से बन गए हैं। यहाँ के सरदार और राजा मुसलमानो पर अत्याचार करने से बचते हैं। यद्यपि ये सरदार और उनके सिपाही मूर्त्तिपूजक हैं, पर फिर भी वे मुसलमानों के धर्म और उनके आचार विचार आदि का बहुत कुछ आदर करते और ध्यान रखते हैं। मूर्त्तिपूजकों और मुसलमानो के इस मेल जोल से इस कारण और भी आश्चर्य होता है कि मुसलमानो की संख्या सारी आबादी का दसवाँ भाग भी नहीं है। सामूहिक रूप से मलाबार के हिन्दू राजाओं का मुसलमानों के साथ बहुत प्रतिष्ठा और दया का व्यवहार होता है; क्योंकि उनके देश में अधिक नगरो के बस जाने का कारण इन्हीं मुसलमान व्यापारियों का वहाँ बस जाना है।"[१]

मलाबार के यही मुसलमान अरब व्यापारी, जो अपना देश छोड़ कर यहाँ आकर बस गए थे, भारत में मोपला और नायत के नामों से प्रसिद्ध हैं। पुर्तगालियों के आने से पहले तक समुद्र का सारा व्यापार इन्हीं लोगों के हाथ में था। उस देश के जो निवासी पीछे से मुसलमान हो गए थे या जो लोग उनके साथ ब्याह शादी करके उनकी बिरादरी में हो गए थे, वे भी उन्हीं लोगो में मिल गए हैं।

[१] तोहफतुल् मुजाहिदीन का उद्धरण डा० आर्नल्ड कृत दावते इस्लाम; पृ० ३८२-८३।

कोलम

कोलम नगर आजकल के ट्रावन्कोर देश में है। अरब मल्लाह बहुत पुराने समय से इसका नाम लेते चले आते हैं और कहते हैं- "यह मसालोवाले देश का अन्तिम नगर है।" यहाँ से अदन के लिये जहाज जाया करते थे। यहाँ मुसलमानो का एक महल्ला बस गया था और उनकी एक जामा मसजिद भी थी ।[१]

चौथा केन्द्र मावर या कारोमण्डल

मदरास मे मलाबार के सामने दूसरी ओर जो समुद्र तट है, उसे अरब लोग मअवर या मावर कहते हैं। आजकल इसका नाम कारं मंडल प्रसिद्ध है मावर का नाम भी अरब यात्रियों और व्यापारियों मे विशेष रूप से प्रसिद्ध था। इब्न सईद मगरची ने हिजरी छठी शताब्दी के अन्त मे इसका वर्णन किया है; और बतलाया है कि यह कोलम के पूर्व मे है और तीन चार दिन के रास्ते पर दक्षिण की ओर झुका हुआ है।[२] जकरिया कजविनी (सन् ६८६ हि०) ने हिजरी सातवी शताब्दी में इसका नाम मन्दल लिखा है और यहाँ की अगर लकड़ी की बहुत प्रशंसा को है।[३] उसने इसी के पास कन्या कुमारी को स्थान दिया है, जिसे उसने रास कामरान लिखा है; और इसी सम्बन्ध से इस ऊद या अगर को कामरूनी ऊद कहते थे ।[४] अबुल फिदा (सन् ७३२ हि० १३१३ ई०) ने रासकुमारी को रास कम्हरी लिखा है।[५] और माबर की सीमा इस प्रकार लिखी है- "यह मलाबार के पूरब मे कोलम से तीन चार दिन की दूरी पर है और इसका आरम्भ कोलम के पूरब से होता है।"[१] "इसकी राजधानी का नाम बेरदाल (बेरधूल) है। यहाँ बाहर से घोड़े लाए जाते है।"[२]

[१] **तकवीमुल् बुल्दान; पृ० ३६१ ।**

[२] **उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ ।**

[३] **आसारुल् बिलाद; कजविनी; पृ० ८२ ।**

[४] तकवीमुल् बुल्दान, पृ० ३५५ ।

[५] उक्त ग्रन्थ पृ० ३५४ ।

जान पड़ता है कि समुद्र तट का यह भाग कुछ शताब्दियों के बाद अरबों के काम में आने लगा था। हिजरी छठी शताब्दी के अन्त से इसका नाम सुनने में आता है। हिजरी सातवी शताब्दी से यहाँ अरबो का अच्छा प्रवेश और अधिकार देखने में आता है । वस्साफ (मृत्यु सन् ७२८ हि०) और जामे उत्तवारीख के लेखक रशीदुद्दीन (मृत्यु सन् ७१८ हि०) ने हिजरी आठवीं शताब्दी के अन्त में अपनी अपनी पुस्तकें लिखी हैं। भारत में यह जलालुद्दीन फीरोजशाह खिलजी का समय था । वसाफ और रशीद दोनों ही प्रायः एक से शब्दों में लिखते हैं-

[१] तकवीमुल् बुल्दान; पृ ० ३५५ ।

[२] तारीख वस्साफ का रचना-काल सन् ७०७ हि० (सन् १३०७ ई०) है। ईलियट; तीसरा खंड; पृ० ४४ ।

"मअबर देश कोलम से लेकर सेलवार (नीलौर) तक समुद्र के किनारे तीन फरसंग लम्बा है। इसमें बहुत से नगर और गाँव है। यहाँ के लोग अपने राजा को देवार कहते हैं, जिसका अर्थ है धनवान । चीन के बड़े बड़े जहाज, जिनको जंक या जनक कहते हैं, चीन, माचीन, सिन्ध और भारत के देशो से बहुत से बहुमूल्य पदार्थ और कपड़े यहाँ लाते है। माबर से रेशमी कपड़े और सुगन्धित लकड़ी ले जाते हैं। यहाँ के समुद्र से बड़े बड़े मोती निकाले जाते हैं। यहाँ होनेवाली चीजें इराक़, खुरासान, शाम, रूम और युरोप तक जाती हैं। इस देश में लाल और सुगन्धित घासें उत्पन्न होती हैं। माबर मानों भारत की कुंजी है। कुछ वर्ष पहले सुन्दर पाँडे यहाँ का दीवान था । उसने अपने तीन भाइयों के साथ मिलकर भिन्न भिन्न दिशाओ में अपना अधिकार बढ़ाया था। मलिक तकीउद्दीन बिन अब्दुर रहमान बिन मुहम्मद उत् तैयवी, जो शेख जमालुद्दीन का भाई है, इस राजा का मन्त्री था।

राजा ने पट्टन और मली पट्टन (पट्टम और मलयपट्टम) और बादल की रियासत उसे सौंप दी थी। माबर मे घोड़े अच्छे नही होते; इस लिये इन दोनो में यह समझौता हो गया था कि जमालुद्दीन इब्राहीम केश (कैस) [१] नामक बन्दरगाह से चौदह सौ बढिया अरबी घोड़े दीवान को ला दिया करे। हर साल फारस की खाड़ी के कतीफ, इलसा बहीन, हुरमुज आदि बन्दरगाहों से दस हजार घोड़े आते थे और हर घोड़े का दाम दो सौ बीस चाँदी के सिक्के (दीनार) होगे । सन् ६९२ हि० (१२९३ ई०) में दीवान मर गया और उसको सम्पत्ति उसके मन्त्रियो, परामर्शदाताओ और नाइयो (नायको) मे वॅट गई। शेख जमालुद्दीन उसका उत्तराधिकारी हुआ। कहते हैं कि उसे सात हजार बैलो का बोझ सोना और जवाहिरात मिले। और पहले जो समझौता हो चुका था, उसके अनुसार तकीउद्दीन उसका नायब नियुक्त हुआ।"[२]

[१] अरब और भारत के व्यापारिक सम्बन्ध के प्रकरण में इस टापू का पूरा हाल बतलाया जा चुका है।

[२] ईलियट; पहला खंड; पृ० ६६-७० मे जामे उत्तवारीख का अनुवाद । वस्साफ ने अधिक जॉच करके और विस्तार के साथ यह घटना लिखी है। देखो वस्साफ, दूसरा खंड; ५००२-५५ ।

इसी समय के आस पास जब मार्को पोलो यहाँ आया था, तब उसने देखा था कि यहाँ का राज्य पाँच हिन्दू राजाओ के हाथ मे था। पर यहाँ का व्यापार उस समय भी पूरी तरह से मुसलमानो के ही हाथ में था; और अरब से यहाँ घोड़े आया करते थे। वह लिखता है-

"इस देश में घोड़े नहीं होते । हुरमुज और अदन के बन्दरगाहों से व्यापारी लोग हर साल यहाँ घोड़े लाते हैं और पाँचो राज्यों में हर साल दो दो हजार घोड़े खरीदे जाते हैं। एक एक घोड़े का मूल्य पाँच पाँच सौ दीनार तक दिया जाता है।"

इसने यहाँ के मोतियों और रत्नों की असीम सम्पत्ति का भी उल्लेख किया है।

हिन्दू राजा के लिये मुसलमानों की मुसलमानों से लड़ाई

इसके बाद ही सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की सेना ने गुजरात लेकर कारोमंडल तक उथल पुथल मचा दी। उस समय सारे भारत में पहली बार यहाँ यह घटना हुई थी कि कारोमंडल के राजा की ओर से, जिसकी राजधानी बेरधूल में थी, इराक़ और अरब के मुसलमानों ने चढ़ाई करनेवाले तुर्कों का सामना किया था। दिल्ली के अमीर खुसरो ने अपने खजायनुल् फुतूह नामक ग्रन्थ में, जो सुलतान अलाउद्दीन खिलजी की उन्ही विजयों का अतिरंजित और व्यर्थ के शब्दाडम्बर से भरा हुआ इतिहास है, यह घटना विस्तार के साथ लिखी है।[१] मुसलमानों ने अपने पुराने समझौते के अनुसार अपने संरक्षक बेरधूल के राजा की पूरी सहायता की और वे उसकी ओर से तुर्क मुसलमानों के साथ खूब लड़े । पर तुर्क वीरों का सामना करना सहज नहीं था। राजा हार गया और उसके देश पर सुलतान अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफर ने अधिकार कर लिया। जो मुसलमान उससे लड़े थे, उन्हे वह कडा दंड देना चाहता था; पर उन्होने कुरान और कलमा पढ़ पढ़कर अपने मुसलमान होने का प्रमाण दिया ।[१]

यह घटना सन् ७१० हि० (सन् १३१० ई०) में हुई थी।

[१] अमीर खुसरो कृत खजायनुत् कुतूह । तारीख जामये मिल्लियः इस्लामियः में प्रकाशित (अलीगढ़ सन् १९२७) पृ० १५७-१६२ ।

ईलियट साहब की एक भूल

ईलियट साहब ने अपने इतिहास के दूसरे खंड में तारीख अलाई के नाम से खजायन उल् फुनूह का सारांश दिया है। उसमें इस घटना के सम्बन्ध मे अमीर खुसरो के एक वाक्य का इस प्रकार अनुवाद दिया है-"ये मुसलमान प्रायः आधे हिन्दू थे और उन्हे अपने धर्म का ज्ञान नहीं था।"[२] पर वाक्य का यह आशय ठीक नहीं है, बिलकुल गलत है। सच बात यह

है कि इन मुसलमानो ने हिन्दू राजा का साथ दिया था; इसी लिये अमीर खुसरो ने कविता की शैली और अत्युक्ति के फेर मे पड़कर निरा शब्दाडम्बर रचा है; और उन मुसलमानो को बहुत कुछ बुरा भला कहा है, जिसका कोई ठीक अभिप्राय नहीं है। उसका अर्थ "आधे हिन्दू होना" तो बहुत दूर की बात है।[३]

[१] **तीसरा खंड; पृ० ६०।**

[२] **देखो खजायनुल् फुतूह, पृ० १६१-६२ ।**

[३] **उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ ।**

पाँचवाँ केन्द्र गुजरात

अरबो का पाँचवाँ व्यापारिक केन्द्र गुजरात, काठियावाड, कच्छ और कोकन मे था, जहाँ राजा वल्लभराय या अरबो के प्रिय राजा बल्हा का राज्य था। इसकी पहली राजधानी वल्लभीपुर मे थी, जो आजकल के भावनगर के पास एक बड़ा नगर था। अरब लोग इसे सदामानगर या महानगर कहते थे। पुरातत्त्व सम्बन्धी आजकल की जॉच से प्रमाणित होता है कि इस नगर का विस्तार पाँच मील तक था। यहाँ के कुछ राजा बौद्ध और कुछ राजा जैन थे; और उन्हीं दोनो के झगड़ों में शायद इस नगर का नाश भी हुआ था। इसी राज्य में चैमूर का बन्दरगाह था, जिसको अरब सैमूर कहते हैं। यह बन्द्रगाह बहुत उन्नति पर था। इसके बाद खम्भायत आदि का स्थान था ।

सबसे पहला अरब यात्री और व्यापारी, जिसने अपना यात्रा- विवरण सन् २३५ हि० में पूरा किया था, सुलैमान था। उसने वल्लभी राजा की बहुत प्रशंसा की है और लिखा है कि यह और इसकी प्रजा अरबों और मुसलमानों से बहुत प्रेम करती है; और इसकी प्रजा का यह विश्वास है कि हमारे राजाओं की आयु इसी लिये अधिक होती है कि वे अरबों के साथ प्रेम का व्यवहार करते हैं।[१] इन उद्धरणों से यह पता चलता है कि अरब व्यापारियो और नए बसे हुए मुसलमानों के साथ यहाँ के लोगो का बहुत अच्छा और मित्रतापूर्ण

सम्बन्ध था । यही कारण था कि इस राज्य के नगरों में अरब लोग बहुत अधिक संख्या में बस गए थे और बिलकुल अन्त समय तक बसे रहे थे ।

इसी प्रकार ताकन या दाखन या दक्षिण के (राजा के) सम्बन्ध में भी इसका यही कहना है कि वह भी अरबो के साथ बल्हरा के ही समान प्रेम रखता है।[२] स्वयं गुजरात या गूजर (जजर) राजाओं के सम्बन्ध में वह लिखता है- "वे अरबों के शत्रु हैं।[३]

[१] **खजायनुल् फुतूह; पृ० २६-२७ ।**

[२] **उक्त ग्रन्थ : पृ० २६ ।**

[३] **उक्त ग्रन्थ : पृ० २८ ।**

हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त और चौथी शताब्दी के आरम्भ `में जब बुजुर्ग बिन शहरयार मल्लाह अपने जहाज इधर लाता था, तब इन प्रान्तो में अरबो और साधारण मुसलमानों की बहुत बस्ती होती थी। उसे एक ऐसा हिन्दू मल्लाह भी मिला था, जो मुसलमान हो गया था और जिसने अपने जहाजों से बहुत धन कमाया था और हज भी किया था।[१] सैराफ का मुहम्मद बिन मुसलिम नाम का एक व्यापारी भी इसको मिला था, जो थाना (बम्बई के पास) में बीस बरस से अधिक समय तक रहा था और जो भारत के बहुत से नगरों में घूम आया था और उनकी सब बातें जानता था।[२] चैमूर (गुजरात का सैमूर) में इसे फसा (फ़ारस का एक स्थान) का एक मुसलमान अबूबकर भी मिला था।[३] गोआ को पुराने अरब लोग संदापुर कहते थे। वहाँ के राजा का एक मुसलमान भी मुसाहब था, जिसका नाम मूसा था ।[४]

[१] **अजायबुलू हिन्द; पृ० १६ ।**

[२] **उक्त ग्रन्थ; पृ० १५२ ।**

[३] **उक्त ग्रन्थ; पृ० १५७ ।**

[४] **उक्त ग्रन्थ और पृष्ठ ।**

हुनरमन्द

यह एक फारसी का शब्द है, जिसका साधारण अर्थ है हुनर जाननेवाला या गुणवान् पर अरबो ने इस शब्द का एक विशेष अर्थ मे व्यवहार किया है, और इसके अन्त का "द" गिराकर वे इसे "हुनरमन" कहते हैं और इससे "हुनरमनः" क्रिया बनाते हैं, जिसका अर्थ होता है हुनरमन्द या गुणवान् होना। इससे उस काजी या मुसलमान न्यायकर्त्ता का अभिप्राय लिया जाता था जो गैर-मुसलमान राज्यों में उन्हीं राज्यों की ओर से मुसलमानों के मुकदमों का फैसला करने के लिये नियुक्त किया जाता था। जिस समय संसार में अरबों और मुसलमानो के राज्य अपनी पूरी उन्नति पर थे, उस समय दूसरे राज्यो में मुसलमानों को कुछ उसी प्रकार के विशेष अधिकार प्राप्त होते थे, जिस प्रकार आजकल युरोप की जातियों को एशिया और अफ्रिका के राज्यों में कुछ विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं; और उनका मुकदमा किसी ऐसे न्यायालय में नहीं उपस्थित किया जा सकता जिसमें न्याय करनेवाला हाकिम युरोपियन न हों। उन दिनों मुसलमानों ने भी गैर-मुसलमान देश में अपने व्यवहारों और आने जाने के सम्बन्ध में कुछ विशेष अधिकार प्राप्त कर लिए थे।

तुर्किस्तान, रूम, चीन और भारत में मुसलमानों के इन विशेष अधिकारों का पता चलता है।[१] तात्पर्य यह कि गैर-मुसलमान देशों में वहीं के राज्य का नियुक्त किया हुआ जो मुसलमान काजी कान्सल या अधिकारी होता था, वह हुनरमन्द कहलाता था। हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त और चौथी शताब्दी के आरम्भ में चैमूर में अरबों की बस्ती इतनी अधिक बढ़ गई थी कि उनके लिये राजा को एक हुनरमन्द नियुक्त करना पड़ा था। उसका नाम अब्बास बिन माहान था[२]

[१] **देखो इब्न हौकल; पृ० २३३ ।**

[२] **अजायबुल् हिन्द; पृ० १४४ ।**

वल्लभराय का राज्य

हिजरी चौथी शताब्दी के आरम्भ में मसऊदी भारत आया था। सन् ३०३ हि० में वह खम्भायत में था। इसके सिवा वह गुजरात के और देशों में भी घूमा था। वल्लभराय (बल्द्दरा) राजाओ के सम्बन्ध में इसकी भी वही सम्मति है, जो इसके साठ सत्तर बरस पहले सुलैमान ने प्रकट की थी। वह कहता है- "अरबों और मुसलमानो का जितना आदर राजा बल्हा के राज्य में है, उतना सिन्ध और भारत के और किसी राजा के राज्य में नहीं है। इस राजा के राज्य में इस्लाम का अच्छा आदर और रक्षा होती है। इसके राज्य में मुसलमानों की मसजिदें और जामे मसजिदें बनी हैं, जो हर तरह से आबाद हैं। यहाँ के राजा चालिस चालिस और पचास पचास बरस तक राज्य करते हैं। यहाँ के लोगों का यह विश्वास है कि हमारे राजाओं की आयु इसी न्याय और मुसलमानो का आदर करने के कारण बड़ी होती है। गुजरात के राजा की शत्रुता का वही हाल है, और ताकन या दक्षिण के राज्य में भी मुसलमानों का वही आदर है।"[१]

[१] मसऊदी कृत मुरूजुज्जहब; पहला खंड; पृ० ३८२-८४ ।

सैमूर में दस हज़ार की बस्ती

"सैमूर (वल्लभराय के राज्य का एक नगर) में अरबो और वर्णसंकर मुसलमानो की बस्ती दिन पर दिन बढती जाती है। जिस समय मसऊदी आया था (सन् ३०४ हि०) उस समय केवल एक नगर में दस हजार मुसलमान बसते थे ।

वेसर

ईश्वर जाने यह क्या शब्द है, पर मसऊदी ने लिखा है कि इससे उन मुसलमानों से अभिप्राय है, जो भारत में उत्पन्न हुए हों। इसका बहुवचन उसने "बयासरः" बतलाया है, इस सम्बन्ध में मसऊदी का महत्वपूर्ण लेख इस प्रकार है-

"मैं सन् ३०४ हि० में राजा बल्हरा के राज्य के लार प्रदेश के चैमूर (सैमूर) नामक नगर में उपस्थित था। उस समय उस नगर के हाकिम का नाम जॉच था और उस समय वहाँ दस हज़ार मुसलमान बसे हुए थे जो भारत में उत्पन्न हुए (बयासरः) थे; और उनके सिवा सैराफ, उमान, बसरा, बग़दाद और दूसरे देशों के भी मुसलमानं थे, जो यहाँ आकर बस गए थे। उनमें से बहुत से प्रतिष्ठित व्यापारी हैं, जैसे मुहम्मद बिन इसहाक सन्दालोनी (सन्दापुरी या जदापुरी या चन्दापुर ?)। हुनरमन्दी के पद पर उन दिनों अबू - सईद उपनाम बिन जकरिया प्रतिष्ठित थे । हुनरमन्द का अभिप्राय मुसलमानों का सरदार है; और इसका स्वरूप यह है कि राजा मुसलमानो मे से ही किसी को उनका सरदार बना देता है और मुसलमानों के सम्बन्ध के सब मामले मुकदमे उसी को सौंप देता है। और बयासरः का अर्थ है वह मुसलमान जो भारत में ही उत्पन्न हुए हों।"[१]

थाना में

हिजरी छठी शताब्दी के अन्त में सुलतान शहाबुद्दीन का समकालीन इब्न सईद मग़रिबी सन् ५८५ हि० में मराको और मिस्र में बैठकर बैरूनी की कानून मसऊदी की तरह खगोल विद्या पर एक पुस्तक लिख रहा था। उसमें उसने दक्षिणी भारत के कुछ नगरों के नाम लिए हैं। थाना के सम्बन्ध में वह कहता है- "यह गुजरात (लार) का अन्तिम नगर है। व्यापारियों में इसका नाम बहुत प्रसिद्ध है। इस भारतीय तट पर रहनेवाले सभी लोग हिन्दू हैं जो मूर्तिपूजा करते हैं, पर अपने साथ मुसलमानों को भी बसा लेते हैं।"[२]

[१] **मसऊदी कृप्त मुरूजुज्जहब दूसरा खंड; पृ० ८५-८६ (लीडन)**

[२] **तकवीसुल् बुल्दान; अबुल् फ़िदा के आधार पर पृ० ३५६ ।**

खम्भायत में

खम्भायत के सम्बन्ध मे यह कहता है- "यह भी भारत के समुद्र तट के नगरो में से है, जहाँ व्यापारी लोग जाया करते हैं। इसमें मुसलमान भी बसे हुए हैं।"[१] इसके बाद ही सुलतान शम्सुद्दीन अल्तमश के समय (सन् ६२५ हि०) में जामे उल् हिकायात का लेखक औफी सम्भवतः सिन्ध से खम्भात गया था। उसका कहना है- "वहाँ (खम्भात में) अच्छे धर्मनिष्ठ मुसलमानों की बसती है। उनकी एक जामे मसजिद भी है और उसका एक इमाम और खतीब (खुतबा पढ़ने वाला) भी है। गुजरात का राजा, जो नहरवाला मे रहता था, इन लोगो के साथ बहुत ही न्याय का व्यवहार करता था।"[२]

[१] उक्त ग्रन्थ; पृ० २५७ ।

[२] औफी कृत जामे उल् हिकायात की हाथ की लिखी प्रति, जो आज़मगढ़ के दारुल् मुसन्निफीन मे रखी है ।

हिजरी चौथी शताब्दी में खम्भात से चैमूर तक

इब्न हौकल बगदादी, जिसने हिजरी चौथी शताब्दी मे गुजरात से सिन्ध तक की यात्रा की थी, लिखता है-

"खम्भात से सैमूर तक राजा बल्हा (वल्लभराय) का राज्य है। उससे अधिकतर तो हिन्दू ही बसते हैं, पर साथ ही मुसलमान भी हैं, और उन मुसलमानो पर स्वयं मुसलमानो का ही शासन है। अर्थात् राजा की ओर से उनके लिये एक मुसलमान वाली या रक्षक नियत होता है। वल्लभराय के इलाको में मसजिदें हैं, जिनमें जुमा (शुक्रवार) की नमाजें पढ़ी जाती हैं; और इसी प्रकार उनमें दूसरी नमाजें भी पढ़ी जाती हैं और खुले आम अजान भी दी जाती है।"[१]

हिजरी आठवीं शताब्दी में खम्भात से कारोमंडल तक

गुजरात से कारोमंडल तक के सारे प्रदेश मलिक कफूर जीतता चला गया था। पर वह एक आँधी थी, जो आई और निकल गई। पर आरम्भ और अन्त में अलाउद्दीन की विजयों का जो फंडा गड़ा था, वह न उखड़ सका। पर फिर भी स्वतन्त्र हो गए । उधर गुजरात और इधर कारोमंडल के बीच में सैकड़ो मील के इलाके पहले की ही तरह हिन्दू राजाओं और रायों के अधिकार में थे। गुजरात तो फिर सदा के लिये इस्लामी हो गया है; पर कारोमंडल (माबर) में हसन कैथली और उसके उत्तराधिकारी ने हिजरी आठवीं शताब्दी के मध्य तक प्रायः चालिस बरस राज्य किया। फिर बीजानगर के राजाओं ने उसे जीत लिया ।

मराको का प्रसिद्ध यान्त्री इब्न बतूता भी इसी समय भारत आया था। वह मुहम्मद तुग़लक की ओर से उत्तर में एक राजकीय सन्देश लेकर चीन जा रहा था। वह पहले दिल्ली से खम्भात और फिर खम्भात से कारोमंडल गया था, जहाँ से चीन के लिये जहाज जाते थे । उसने इस पूरे मार्ग की इस्लामी बस्तियों और वहां के हाकिमो का वर्णन किया है जिससे पता चलता है कि केवल हिन्दुओं की बस्तियों और राज्यों में कहाँ कहाँ मुसलमान लोग बसे हुए थे और उनकी क्या दशा थी ।

[१] इब्न होकल; पृ० २३३ (लीडन)

खम्भात

इब्न बतूता दौलताबाद और सागर होकर खम्भात पहुँचा था जो गुजरात का एक बड़ा बन्दरगाह था । यद्यपि उस समय दिल्ली के साम्राज्य से उस बन्दरगाह का नाम मात्र का सम्बन्ध था; पर वहाँ का व्यापार, कार वार, वैभव और व्यवस्था आदि सब कुछ अरब और इराक के व्यापारियों और जहाज चलानेवालो के हाथो में थी, जो वहाँ पहले से बसे हुए

चले आते थे। अरब, इराक और अजम के मुसलमान सभी जगह अधिकता से थे और उनकी बनाई हुई मसजिदें और खानकाहे आबाद थी। इब्न बतूता कहता है- "यह नगर अपनी मसजिदा और दूसरी इमारतों के कारण और नगरो से बहुत अच्छा है; और इसका कारण यह बतलाया जाता है कि यहाँ के प्रायः निवासी बाहरी देशो के साथ व्यापार करते हैं। वे सदा अच्छे अच्छे मकान और सुन्दर सुन्दर मसजिदें बनाते रहते हैं और उनके बनाने मे वे सदा एक दूसरे से बढ़ जाने का प्रयत्न करते हैं। यहाँ के विशाल भवनो में वे सदा एक महल शरीफ सामरी का है; और उससे सटी हुई एक विशाल मसजिद है। व्यापारियो के शिरोमणि गाजरूनी का भी एक बड़ा मकान है और उसके साथ भी एक मसजिद है। शम्सुद्दीन कुलाहदोज (टोपी बनाने वाला) नाम के व्यापरी का मकान भी बहुत बड़ा है। नगर मे हाजी नासिर की खानकाह है जो इराक के दयारबकर नामक नगर के रहनेवाले थे। दूसरी खानकाह ख्वाजा इसहाक्त की है, जहाँ फक़ीरो के लिये लंगर भी बँटता है।"[१]

[१] सफरनामा इब्न बतृता; (अरबी; खैरिया मित्र का छपा हुआ) दूसरा खंड, पृ० १२७-२६।

गावी और गन्धार

गावी और गन्धार ये दोनों भड़ौच की बराबरी के बन्दरगाह थे (आईन अकबरी)। इब्न बतूता खम्भात से चलकर पहले गावी और फिर वहाँ से गन्धार पहुँचा था। वह कहता है कि समुद्र तट के ये दोनों नगर राजा जालीनी के अधिकार में हैं; पर वह स्वयं मुसलमान बादशाह के अधीन है। यहाँ भी उसे मुसलमान बसे हुए मिलते हैं, जिनमें से बहुत से मुसलमान ऐसे थे जो राजा के दरबारी या राज 'कर्मचारी थे। इनमें से एक का नाम ख्वाजा बहरा था और दूसरा इब्राहीम नाविक था, जो छः जहाजों का मालिक था । इब्न बतूता इसी गन्धार में इब्राहीम नाविक और उसके भाई के जहाजों पर सवार हुआ था, उन जहाजों के

नाम जागीर और मनूरत थे। उन जहाजों पर पचास तीर चलानेवाले और पचास हब्शी सिपाही थे ।

बैरम

यह एक छोटा सा टापू है जो भारत के तट से चार मील दूर है । (यह अदन के पासवाला बैरम नहीं है।) पहले इसपर हिन्दुओं का अधिकार था, पर फिर मुसलमानों ने उसे अपने हाथ में ले लिया था । इब्न बतूता के समय में गाजरूनी ने, जिसे मलिकुतुज्जार या व्यापारियों का राजा कहते थे, यहाँ नगर बनवाया था और मुसलमानों को उसमें बसाया था।

गोगा

इसका नाम गोगा या घोघा था। (यह वर्तमान भावनगर के पास है) । यहाँ राजा दनकौल का राज्य था। यह बहुत बड़ा नगर था। इसमें बड़े बड़े बाजार थे । यहाँ उसने एक मसजिद देखी थी, जो हजरत खिज्र, की मसजिद कहलाती थी, जिन्हें सर्व साधारण समुद्र मे डूबनेवाले लोगो का सहारा समझते हैं। यहाँ हैदरी फक़ीरो का एक दल रहता था ।

चन्दापुर

यहाँ से हमारा यात्री चन्दापुर पहुँचा, जिसे अरब लोग सन्दापुर कहते थे और जिसे नाम की इसी समानता के कारण मैने किसो समय सिधापुर समझा था। पर वास्तव में यह चन्दापुर आजकल के गोआ के पास था । हमारे यात्री को यहाँ एक मुसलमान सुलतान जमालुद्दीन इनवरी का राज्य मिला था। इस सुलतान जमालुद्दीन का पिता हसन एक जहाज चलानेवाला था। सुलतान जमालुद्दीन स्वतन्त्र नहीं था, बल्कि राजा हरीव (शुद्ध नाम हरीर है और यह बीजानगर का राजा था) के अधीन था। यहाँ हिन्दुओं का महला

अलग और मुसलमानो का महल्ला अलग था। यहाँ एक बहुत बड़ी मसजिद थी जो इब्न बतूता की दृष्टि मे वगदाद की मसजिदो के जोड़ की थी ।

चन्दापुर के पास ही समुद्र के किनारे एक और छोटी बसती थी, जिसमे एक गिरजा भी था। वहाँ के एक मन्दिर मे उसकी भेट एक ऐसे आदमी से हुई थी जो ऊपर से देखने में तो योगी जान पड़ता था, पर वास्तव मे मुसलमान सूफी था। वह खाली इशारो से बाते करता था ।

हनूर या हनोर

इसको होनूर कहते हैं और यह अब भी बम्बई प्रान्त के उत्तरी कनाडा जिले मे है। यह सुलतान जमालुद्दीन का मुख्य केन्द्र था। यहाँ इब्न बतूता को शेख मुहम्मद नागौरी नाम के एक सज्जन मिले थे, जिनकी एक खानकाह थी । इनके सिवा फकीह इस्माईल से, जो कुरान के बहुत बड़े पंडित थे और नूरुद्दीन अली काजी तथा एक और इमाम से भेंट हुई थी। इस नगर मे इसने एक यह विलक्षण बात देखी कि स्त्रियों और पुरुषों सब में शिक्षा का बराबर प्रचार और चर्चा थी। इसने नगर में लड़कियों के तेरह और लड़को के तेइस विद्यालय देखे थे। हनूर की मुसलमान स्त्रियाँ भी हिन्दू स्त्रियों की तरह साड़ी पहनती थीं। यहाँ के रहने वालों की जीविका व्यापार से चलती थी। यहाँ इब्न बतूता को चन्दापुरवाले मुसलमान योगी का एक संदेसा और कुछ उपहार मिला था। यहाँ के निवासी इमाम शाफई के अनुयायी थे, जिसका मतलब यह है कि वे या तो अरब थे और या उनकी सन्तान थे ।

मलाबार

हूनोर से इब्न बतूता का जहाज मलाबार के तट पर आकर लगा था। वह कहता है "इस इलाके की सीमा चन्दापुर से कोलम तक है, जो दो महीने का मार्ग है। यह कालीमिर्चांवाला देश है। यहाँ छोटे बड़े सब मिलाकर बारह हिन्दू राजा हैं। बड़े राजाओं के

पास पचास पचास हजार और छोटे राजाओ के पास तीन चार हजार सेना है, जहाँ एक राजा का राज्य समाप्त होता और दूसरे राजा का राज्य आरम्भ होता है, वहाँ लकड़ी का एक फाटक लगा रहता है, जिस पर उस राजाके राज्य का नाम लिखा रहता है। यद्यपि यहाँ सभी हिन्दू राज्य हैं, फिर भी इनमें मुसलमानों का बड़ा आदर है। चन्दापुर से कोलम तक हर आध मील पर लकड़ी का एक मकान बना है, जिसमें दूकानें और चौतरे बने हैं। वहाँ सभी यात्री, चाहे वे हिन्दू हों और चाहे मुसलमान, ठहरते और विश्राम करते हैं। हर मकान के पास एक कुआँ है, जिसपर एक हिन्दू सब लोगों को पानी पिलाता है। हिन्दुओं को बरतन में से पिलाता है और मुसलमानो को चुल्लू से ।

हिन्दू लोग मुसलमानों को अपने घर के अन्दर नहीं आने देते और न अपने बरतनों में उन्हें भोजन कराते हैं। अगर बरतन में भोजन कराते हैं, तो या तो वह बरतन तोड़ डालते हैं और या उसी मुसलमान को दे डालते हैं। पर जहाँ कहीं कोई मुसलमान नहीं होता, वहाँ वे मुसलमानों का भोजन बना देते हैं और उनके सामने केले के पत्ते पर रख देते हैं। जो भोजन बच रहता है, वह चील, कौवे और कुत्ते को खिला देते हैं। इस पूरे रास्ते मे हर पड़ाव पर मुसलमान लोग बसे हुए हैं, जिनके पास मुसलमान यात्री जाकर ठहते हैं। वे लोग यात्रियों के लिये सभी चीजें मोल लेकर भोजन बना देते हैं। यदि यहाँ जगह जगह मुसलमानो की बस्ती न होती, तो मुसलमानो का यात्रा करना बहुत कठिन होता । रास्ते में भी यदि हिन्दू लोग किसी मुसलमान को चलता हुआ देखते हैं, तो रास्ते से हट जाते हैं।"

अबी सरूर

मलाबार मे जिस नगर में इब्न बतूता सब से पहले गया था, उसका नाम उसने अबी सरूर बतलाया है। अबुल् फिदा ने अपने भूगोल मे इसका नाम यासरूर लिखा है। इब्न बतूता कहता है कि यह एक छोटा सा बन्दरगाह है। यहाँ भी मुसलमानो की बस्ती है और उन सब का बड़ा आदमी या सरदार शेख जुमा है, जो अबी रस्तः के नाम से प्रसिद्ध है। यह बहुत बड़ा दानी है। इसने अपना सारा धन फकीरो और गरीबो को बाँट दिया है। यहाँ नारियल के पेड़ बहुत हैं।

पाकनौर

अबी सरूर से वह पाकनौर पहुँचता है। आजकल यह मदरास के दक्षिण कन्नड में बरकूर के नाम से प्रसिद्ध है। इब्न बतूता के समय मे यह बीजानगर के अधीन था। वह कहता है कि यहाँ के राजा का नाम वासुदेव है। उसके पास लड़ाई के तीस जहाज़ हैं। लेकिन इन जहाजों का प्रधान अधिकारी मुसलमान है जो अच्छा आदमी नहीं था। वह यात्रियों को लुटता था। जब यहाँ कोई जहाज आता था, तब राजा उससे पहले बन्दरगाह के कर के रूप में कुछ लेता था। पर राजा ने इब्न बतूता का बहुत आदर सत्कार किया था। यहाँ का बड़ा आदमी हुसैन सलात है। यहाँ क़ाजी और ख़तीब नियत हैं। हुसैन सलात की बनवाई हुई एक मसजिद भी है।

मंगलौर

यहाँ से उसने मंगरौर (मंगलौर) में जाकर लंगर डाला था । वह कहता है कि यह मलाबार का सब से बड़ा समुद्री स्थान है। फारस और यमन के प्रायः व्यापारी यहाँ आकर उत्तरते हैं। इसके राजा का नाम रामदेव है। यहाँ प्रायः चार हजार मुसलमान बसे हुए हैं, जिनका महल्ला अलग है। कभी कभी यहाँ के रहनेवालों से उनकी लड़ाई भी होती है, पर राजा बीच में पड़कर दोनों में मेल करा देता हैं। यहाँ एक क़ाज़ी है जो बहुत ही योग्य और उदार है। उसका नाम बदरुद्दीन है। वह माबर (कारोमण्डल) का रहनेवाला है और शाफ़ई सम्प्रदाय का है। जब यहाँ के राजा ने अपने लड़के को जमानत या ओल के रूप में जहाज़ पर भेजा, तब हम लोग क़ाज़ी के कहने से उतरे। इन लोगों ने तीन दिन तक हम लोगों की दावत और सत्कार किया।

हेली

इस समय हेली नाम का कोई बन्दर नहीं है, पर कनानोर से सोलह मील उत्तर की ओर समुद्र में पहाड़ का एक कोना निकला हुआ है, जिसको हेली (एली) पर्वत है- इब्न बतूता कहता है "यह बहुत बड़ा और सुन्दर नगर है। कहते हैं। यहाँ बड़े बड़े जहाज़ आते हैं। चीन के जहाज यहीं आकर ठहरते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनो ही इस नगर को बहुत पवित्र कहते हैं; क्योंकि यहाँ एक जामे मसजिद है, जिसे भेंट चढ़ाने की मन्नत सभी जहाजवाले मानते हैं और सभी लोग भेंट चढ़ाते भी हैं। जो भेंट चढ़ती है, वह एक खजाने से जमा की जाती है। उस खजाने का प्रवन्ध हुसैन नाम का मुसलमान करता है जो उस मसजिद का इमाम है। यहाँ के मुसलमानो का सरदार हुसैन वज्जान है। यहाँ विद्यार्थियो का एक दल है जिसको इसी जामे मसजिद के खजाने से वृत्ति मिलती है। इस मसजिद के साथ एक लंगर भी है, जहाँ से यात्रियों और गरीब मुसलमानों को भोजन मिलता है।" यहाँ मकदशवा (अफ्रिका) के एक महात्मा फकीर से इब्न बतूता की भेंट हुई थी। वे महाशय भारत, चीन और अरब की यात्रा कर चुके थे ।

जरपट्टन

यह मलावार प्रान्त का कदाचित् वही स्थान है, जिसे आजकल कन्दापुरम कहते हैं। हिजरी पहली शताब्दी मे मलावार के राजा के मुसलमान होने पर भिन्न भिन्न नगरों मे जो मसजिदें बनी थीं, उनमें से एक यहाँ भी बनी थी। इब्न बतूता कहता है- "यहाँ के राजा का नाम कोयल है। वह मलाबार का बड़ा राजा है। उसके जहाज फारस, यमन और उमान तक जाते है। यहाँ बरादाद के एक विद्वान् से उसकी भट हुई थी, जिसका एक भाई यहाँ का बड़ा व्यापारी था और जो बहुत धन छोड़कर मरा था। जब कोई मुसलमान मर जाता है, तब उसकी सम्पत्ति मे से हिन्दू राजा कुछ नहीं लेता। वह सम्पत्ति मसलमानो के सरदार के पास अमानत रहती है।" इब्न बतूता कहता है कि जिस समय मैं यहाँ से चलने लगा

था, उस समय उक्त विद्वान् अपने मरे हुए भाई की सम्पत्ति लेकर बरादाद जाने की तैयारी कर रहे थे।

दहपट्टन

यह भी राजा कोयल के राज्य में है। समुद्र के किनारे यह एक बड़ा नगर है। यहाँ बाग बहुत अधिकत से हैं। नारियल, काली- मिर्च, सुपारी, पान और अरुई बहुत अधिक होती है। यहाँ राजा कोयल के पुरखों में से किसी का बनवाया हुआ एक बहुत सुन्दर ताल है, जिसमें गढ़े हुए लाल पत्थर लगे हैं और जिसके चारों कोनों पर चार गुम्बद हैं। इसी के पास राजा कोयल के बाप दादों में से कसी की बनवाई हुई एक मसजिद भी है। मुसलमान लोग उसी तालाब में नहाते हैं, नमाज पढ़ने से पहले हाथ पैर धोते या वजू करते हैं और उस मसजिद में नमाज पढ़ते है। कहते हैं कि वह राजा मुसलमान था। इब्न बतूता ने वहाँ के रहने वाले मुसलमानों के मुंह से उस राजा के मुसलमान होने का यह हाल सुना था कि वहाँ एक ऐसा पेड़ था, जिसमें से हर साल पतझड़ के दिनों में एक ऐसा पत्ता गिरता था जिस पर कलमा लिखा हुआ होता था। जब यह पत्ता गिरता था, तब उसमें से आधा पत्ता हिन्दू ले लेते थे और आधा मुसलमान ले लेते थे। उससे रोगी लोग अच्छे हो जाते थे । यही करामात देखकर वह राजा मुसलमान हो गया था। वह अरबी लिपि पढ़ सकता था । उसके मरने के बाद उसका लड़का मुसलमान नहीं हुआ और उसने वह पेड़ जड़ से उखड़वा दिया। पर वह पेड़ फिर निकल आया । इब्न बतूता के समय में उस मसजिद के पास वह पेड़ खड़ा था और उसके सामने एक मेहराब बनी थी ।

बुद्धपट्टन

दहपट्टन से उसका जहाज्ज बुद्धपट्टन पहुँचा था। यहाँ भी हिजरी पहली शताब्दी में मुसलमान होनेवाले राजा की एक मसजिद बनी थी। इब्न बतूता कहता है कि यह भी

समुद्र के किनारे एक बड़ा नगर है। कदाचित् यह वालियाम नगर था, जो आजकल के बैपुर नामक नगर के पास था। इब्न बतूता कढ़ता है कि यहाँ अधिकतर ब्राह्मण लोग बसे हुए हैं, जो मुसलमानों से घृणा करते हैं। इसी लिये यहाँ मुसलमानो की बम्ती नहीं है। नगर के बाहर समुद्र के किनारे एक मसजिद है। मुसलमान यात्री वहीं जाकर ठहरते हैं। यह मसजिद भी इसी लिये बची हुई है कि एक बार जब किसी ब्राह्मण ने इसकी छत तोड़कर उसकी लकड़ी ले जाकर अपने घर में लगा ली, तब उसका घर जल गया। उस घर के जलने में वह आप अपने घर के सब लोगो और माल असबाब सहित जल गया था। तब से कोई ब्राह्मण उस मसजिद को नहीं छूता, बल्कि वे लोग उस मसजिद की सेवा और रक्षा करते हैं। उन्होंने आनेजाने वालों के पीने के लिये यहाँ पानी का प्रबन्ध कर दिया है और उसके द्वार पर जाली लगा दी है, जिसमे पक्षी उसके अन्दर न जायँ ।

पिंडारानी

यहाँ से चलकर हमारा यात्री पिंडारानी पहुँचा, जिसको वह फन्द्रीना कहता है। और जो कालीकट से सोलह मील उत्तर है। वह कहता है- "यह बहुत बड़ा नगर है। इसमे मुसलमानो के तीन महल्ले बसे हुए हैं। हर महल्ले मे एक मसजिद है। समुद्र के किनारे एक सुन्दर जामे मसजिद है, जिसका मुंह समुद्र की ओर है। वहाँ का काजी और इमाम उमान का रहनेवाला है। यहाँ गरमी के दिनों में चीन के जहाज आकर ठहरते हैं।

कालीकट

यहाँ से हमारा यात्री मलाबार के प्रसिद्ध बन्दर कालीकट में पहुँचा था। वह कहता है कि यह मलाबार का सबसे बड़ा बन्दर है। यहाँ चीन, जावा, लंका, मालदीप, यमन और फारस के व्यापारी बल्कि सारे संसार के व्यापारी आते हैं। यहाँ का बन्दर संसार के बड़े बड़े बन्दरों में से है। यहाँ का राजा हिन्दू है, जिसकी उपाधि जैमूर सामरो) है। यह उसी तरह

दाढ़ी मुड़ाता है, जिस तरह रूमी या फिरंगो लोग जिन्हें मैंने वहाँ देखा था, मुड़ाते हैं। पर यहाँ के व्यापारियों का सरदार मुसलमान है। उसका नाम इब्राहीम शाह बन्दर है। वह बहरीन का रहनेवाला है और बहुत विद्वान तथा दानी है। सभी स्थानों के व्यापारी उसके यहाँ आकर भोजन करते हैं। नगर का क़ाज़ी फखरुद्दीन उस्मानी है और खानकाह का शेख शहाबुद्दीन गाजरूनी है। चीन और भारत मे जो लोग अबू इसहाक गाजरूनी की मन्नत मानते हैं, वे इसी खानक्ताह में लाकर भेंट चढ़ाते हैं।

मिस्काल नाम का नाविक या मल्लाह भी यही रहता है। यह बहुत प्रसिद्ध और धनवान् समुद्री व्यापारी है; और इसके निज के जहाज हैं, जो भारत, सामग्री लाते और ले जाते हैं। यमन, चीन और फ़ारस से व्यापार की राजा के नायब या दीवान और शेख़ शहाबुद्दीन तथा इब्राहीम शाह बन्दर ने इब्न बतूता का स्वागत सुलतान मुहम्मद तुग़लक के राजदूत के रूप में फंडे और नगाड़े के साथ किया था। इब्न बतूता कहता है कि कालीकट का राजा बहुत न्यायशील है। एक बार राजा के नायब या दीवान के भतीजे ने एक मुसलमान व्यापारी की तलवार छीन ली। व्यापारी ने जाकर उसके चाचा से सब हाल कहा। उसने जाँच करने के बाद आज्ञा दी कि उसी तलवार से उस भतीजे के दो टुकड़े कर दिए जायँ ।

चीन जानेवाले जहाज यहीं से चलते थे। अच्छे मौसिम के आसरे इब्न बतूता को महीनो यहाँ ठहरना पड़ा था। उसके जहाज का वकील या प्रधान अधिकारी शाम देश का रहनेवाला था, जिसका नाम सुलैमान सफदी था। उसकी भूल से एक दुर्घटना हो गई। इब्न बतूता का माल असबाब तो जहाज पर चढ़ गया और वह आप किनारे पर छूट गया। अन्त मे स्थल के मार्ग से कोलम के लिये इस विचार से चल पड़ा कि में वहाँ पहुँच कर उस जहाज पर चढ़ूँगा।

कोलम

कोलम आजकल के ट्रावन्कोर में है। इब्न बतूता कहता है- "सारे मलावार में यह नगर सबसे अधिक सुन्दर है। यहाँ के बाजार भी अच्छे हैं। यहाँ के व्यापारी इतने धनी हैं

कि वे सारे जहाज का माल एक ही बार मोल ले लेते हैं और गोदाम में रखकर बेचते हैं। यहाँ मुसलमान व्यापारी भी बहुत हैं। उनमें सबसे बड़ा अलाउद्दीन है जो आवा नगर का रहनेवाला है। यहाँ इराक के लोग अच्छी संख्या में बसे हुए हैं। नगर का क़ाज़ी कज़वीन का एक विद्वान् है। नगर मे सबसे बड़ा धनी मुसलमान मुहम्मद शाह बन्दर है। उसका भाई तकीउद्दीन बड़ा विद्वान् है । यहाँ की जामे मसजिद भी अच्छी और सुन्दर है। यहाँ के राजा का नाम लौग तिरूरी (वहाँ की भाषा मे राजा को डेरी कहते है) बतलाते हैं। यह मुसलमानो का बहुत आदर करता है और बहुत न्यायशील है। यहाँ कालीकट वाले शेख शहाबद्दीन गाजरूनी के लड़के शेख फखरुद्दीन की खानकाह है।"

चालियात

जहाजों के नष्ट हो जाने के कारण इब्न बतूता को फिर इसी मार्ग से कालीकट लौट आना पड़ा था। मार्ग मे वह चालियात मे ठहरा था, जिसे अरब लोग शालियात कहते थे शालिया कहते हैं। यह कालीकट के पास था। और अब जिसको इब्न बतूता यहाँ के कपड़ो की कारीगरी की बहुत प्रशंसा करता है। यहाँ से वह हनोर और फिर वहाँ से चन्दापुर (गोआ) पहुँचा था। जान पड़ता है कि उस समय राजा नें (कदाचित् बीजानगर के राजा से अभिप्राय है) लड़कर सुलतान जमालुद्दीन हनवरी के हाथ से यहाँ का राज्य छीन लिया था। इब्न बतूता यहाँ से जहाज पर चढ़कर मालदीप चला गया ।

मालदीप

यहाँ अरब व्यापारियों की बड़ी बस्ती थी और सुलतान खदीजा यहाँ शासन करती थी। इसका पूरा हाल ऊपर दिया जा चुका है।

सीलोन

मालदीप से वह सीलोन आया था। उस समय के वहाँ के राजा का नाम आर्य चक्रवर्ती था। उसके पास बहुत से जहाज थे, जो यमन तक जाया करते थे। यह राजा फारसी भाषा समझता था । चरण चिह्न के कारण यहाँ अरब और अजम के मुसलमान फ़कीरों का आना जाना लगा रहता था ।

गाली

घूमता फिरता वह सीलोन के गाली (काली) नामक बन्द्र में पहुँचा था। यहाँ से आज भी युरोप और आस्ट्रेलिया के लिये जहाज जाते हैं। यहाँ के जहाजों का मालिक इब्राहीम नाविक या मल्लाह था । इब्न बतूता कोलम्बो और बताला से इब्राहीम मल्लाह के जहाज पर चढ़कर फिर भारत के समुद्र तट पर माबर (कारोमंडल) में आया था।

माबर (कारोमंडल)

जिस समय इब्न बतूता करोमंडल पहुँचा था, उस समय वहाँ ग़यासुद्दीन दामगानी बादशाह था। यह वही राज्य था जो अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर की विजय के बाद यहाँ स्थापित हो गया था। यह शायद सन् ७४१ हि० (१३४१ ई०) की बात है। इस शताब्दी के अन्त मे बीजानगर के राजा ने इस्लामी राज्य का अन्त कर दिया था। यहाँ की राजधानी मदूरा नगर में थी।

द्वार समुद्र

आजकल जहाँ मैसूर का राज्य है, उस समय वहाँ होयशल वंश का राज्य था। उसकी राजधानी का नाम द्वारममुद्र था। उस समय वहाँ जो राजा राज्य करता था, उसका नाम वहालदेव था। इब्न बतूता ने उसकी सेना की संख्या एक लाख बतलाई है। उसमे प्रायः बीस हजार मुसलमान थे। इच्न बतूता के कहने के अनुसार ये सब मुसलमान सिपाही भागे

हुए अपराधी और पहले के चार और डाकू थे। पर आश्चर्य है कि इतने चोर, डाकू और अपराधी उस समय कहाँ से आ गए थे। कदाचित् इब्न बतूता ने क्रोध मे आकर ऐसा लिख दिया है; क्योंकि उस समय ये लोग कारोमंडल के बादशाह रायासुरीन के, जो इब्न बतूता का साँदू था, विरोधी और शत्रु थे।

बीजानगर

कृष्णा नदी से लेकर समुद्र के किनारे तक बीजानगर का बहुत बड़ा हिन्दू राज्य था। इसके सम्बन्ध मे एक बहुत आश्चर्य की बात है। एक ओर तो स्थल मे बहमनियो के मुसलमान राज्य से इस बीजानगर का सदा से वैर विरोध और लड़ाई झगड़ा चला आता था; और दूसरी ओर समुद्र के मार्ग से अरब और फारस के मुसलमान बादशाहों के साथ इसका सम्बन्ध बना हुआ था। तैमूर के लड़के मिरजा शाह रुख ने यहाँ अपने कुछ इसी लिये अमीर राजदूत भेजे थे, जिनके प्रधान मौलाना कमालुद्दीन अब्दुर्रज्जाक थे। उन्होने लौटकर बीजानगर राज्य के वैभव और उन्नति का जो हाल लिखा था, वही हाल अपनी रौजतुस्सका नाम की पुस्तक मे खाविन्द शाह ने और हबीबुस् सियर ने अपने भूगोल वाले अंश में मंगलौर, कालीकट और बीजानगर के नामों के नीचे उद्धत किया है। बीजानगर की सेना में दस हजार मुसलमान थे, जिनका सैनिक बल बहुत अधिक था और इसी लिये बीजानगर के राजा उनका बहुत आदर करते थे। उन्होंने उनके लिये एक मसजिद भी बनवा दी थी; और वहाँ कुरान का भी आदर किया जाता था।[१]

उपस्थित सज्जन इन दूर के इलाकों में घूमते फिरते उकता गए होंगे। पर फिर भी आप लोगो ने यह देख लिया होगा कि इन दूर दूर के प्रान्तो मे मुसलमान लोग सैनिक विजय प्राप्त करने से पहले भी कहाँ कहाँ और किस किस रूप में फैले हुए थे और हिन्दू पड़ोसियों तथा राजाओं के साथ उनके किस प्रकार के सम्बन्ध थे। और आप लोगो ने यह भी देख लिया होगा कि हिन्दू मुसलमानों के सम्बन्धों का यह दृश्य से कितना भिन्न है। अब आइए, थोड़ी देर तक सिन्ध के रेगिस्तान का भी आनन्द लीजिए ।

छठा केन्द्र सिन्ध

ऊपर कहा जा चुका है कि अरबों ने हिजरी पहली शताब्दी के अन्त में किस प्रकार देबल (ठट्ठ) से मुलतान तक जीता था। पर वास्तव में इस विजय बल्कि चढ़ाई से भी पहले सिन्ध में मुसलमान लोग बस चुके थे। एक बार पाँच सौ मुसलमान एक अरब सरदार की अधीनता में मकरान से भागकर सिन्ध के राजा दाहर के यहाँ चले आए थे।[२] हिजरी पहली शताब्दी के अन्त में मुहम्मद बिन क़ासिम ने सिन्ध और मुलतान जीता था। इसके बाद से प्रायः सौ सवा सौ बरस तक यह देश पहले दमिश्क और फिर बगदाद के राज्य का एक अग बना रहा। हिजरी तीसरी शताब्दी (ईसवी नवीं शताब्दी) के मध्य मे मोतसिम बिल्लाह के बाद प्रधान केन्द्र की दुर्बलता के कारण यहाँ के अरब शासक प्रायः स्वतन्त्र से हो गए। इसके बाद कहीं तो हिन्दू राजाओ ने किसी किसी के देश पर अधिकार कर लिया; और कहीं मुसलमानों ने अपने राज्य खड़े कर लिए। सुलतान महमूद राजनवी की चढ़ाई के समय तक सिन्ध में उनमें से कुछ कुछ मुसलमान राज्य बचे हुए थे, जिनमे से दो राज्य औरों से बढ़े थे। एक सिन्ध के सिरे पर मन्सूरा में और दूसरा सिन्ध के अन्त मे मुलतान में। हिजरी चौथी शताब्दी के अन्त तक जो अरब यात्री यहाँ आते गए हैं, वे इन दोनों मुसलमानी राज्यों का वर्णन करते गए हैं। मुलतान, मन्सूरा, देवल और दूसरे नगरों में सुलतान महमूद के समय से पहले बीसियो मुसलमान विद्वान् और हदीस के ज्ञाता उत्पन्न हुए थे, जिसमें से एक अबूमुअसिर नजीह सिन्धी हैं जो हिजरी दूसरी शताब्दी में हुए थे। ये इतिहास के बहुत बड़े पंडित समझे जाते थे। इनकी इतनी प्रतिष्ठा थी कि जब इनका देहान्त हुआ, तब खलीफा महदी ने इनके जनाजे की नमाज पढ़ाई थी ।

[१] फ़रिश्ता ; पहला खंड; पृ० ३२३ (नवलकिशोर)

[२] फुनूहुस् सिन्ध ; बिलाजुरी ।

उसी समय सिन्ध में था, अरबी भाषा का एक प्रसिद्ध कवि हुआ जिसका नाम अबू अता सिन्धी है। यद्यपि इसका उच्चारण ठीक नहीं था, पर फिर भी इसके अरबी शेरो

की श्रेष्ठता खास अरब के रहनेवाले भाषाविद् भी मानते थे। यदि इस प्रकार और कोटि के दूसरे महानुभावों के नाम यहाँ गिनाए जायँ, तो एक बड़ा पोथा तैयार हो जायगा; इस लिये यह प्रकरण यही पर छोड़ा जाता है।

अरबों ने सिन्ध प्रान्त जीतने के बाद वहाँ अपने उपनिवेश स्थापित किए थे। कुरैश, कल्ब, तमीम, असद, यमन और हज्जाज के बहुत से कबीले यहाँ के भिन्न भिन्न नगरो में आकर बस गए; और हिजरी तीसरी शताब्दी के मध्य तक मुलतान से लेकर समुद्र तक इनका राज्य किसी न क्रिसी प्रकार बना रहा। पर अन्त में यमन और हज्जाज के अरबों के आपस के लड़ाई झगड़ों ने इनको नष्ट कर दिया और बहुत से प्रदेश इनके हाथों से निकल गए। फिर भी मुलतान और मन्सूरा (सिन्ध) में इनके दो राज्य ऐसे थे जो सुलतान महमूद की चढ़ाई तक बने रहे। पहले इन्हीं दोनों का वर्णन कुछ विस्तार के साथ किया जायगा ।

मुलतान

ऊपर कहा जा चुका है कि इस नगर पर अरबों ने हिजरी पहिली शताब्दी (ईसवी सातवीं शताब्दी) में अधिकार किया था। उस समय से लेकर सुलतान महमूद गजनवी के समय तक सदा इस पर अरबों का ही अधिकार रहा। हिजरी तीसरी और चौथी शताब्दी के सभी अरब यात्रियों ने इसका वर्णन किया है। मुलतान महमूद की चढ़ाईके समय और उसके बाद भी बराबर यहाँ मुसलमानों का उपनिवेश बना रहा। आरम्भ में सिन्ध के दूसरे नगरो के साथ मुलतान पर भी दमिश्क के उम्मिया वंश का अधिकार रहा। तीस पैंतिस बरस के बाद समय ने करवट बदली । सन् १३२ हि० में मुसलमानी साम्राज्य की गद्दी पर उमैया लोगो की जगह अब्बासी लोग बैठे और शासन का केन्द्र दमिश्क से हटकर बग़दाद आ गया। उसके बाद प्रायः हिजरी तीसरी शताब्दी के आरम्भ तक अर्थात् मोतसिम के समय तक मुलतान का अब्बासी शासन के केन्द्र के साथ सम्बन्ध रहा । इसके बाद यह अवस्था हो गई कि यदि खलीफा बलवान् होता था, तो वह इस दूर के नगर पर अपना अधिकार रखता था; और यदि दुर्बल होता था तो यहाँ के प्रधान अधिकारी स्वतन्त्र हो जाते थे। वे

अधिकारी वाली कहलाते थे। मुलतान उन दिनों सिन्ध और मन्सूरा के वालियो के हाथ में रहता था। पर पीछे से मुलतान सिन्ध से भो अलग हो गया और वहाँ एक अलग, स्वतन्त्र और स्थायी राज्य बन गया। इस स्वतन्त्रता का समय लगभग हिजरी तीसरी शताब्दी का मध्य भाग है।

यहाँ मुलतान से हमारा अभिप्राय केवल एक नगर से नहीं है, बल्कि पूरे सूबे या प्रदेश से है, जो किसी समय पूरी एक रियासत या राज्य था। मिश्र के मन्त्री महलवी ने हिजरी चौथी शताब्दी में लिखा है- "इसकी सीमाएँ बहुत विस्तृत हैं। पच्छिम की ओर मकरान और दक्खिन की ओर मन्सूरा (सिन्ध) तक इसका विस्तार है।"[१] सिन्ध नद के पास जो कन्नौज था, वह सन् ३०० हि० में मुलतान के सूबे में था।[२] उस समय एक लाख और बीस गॉव मुलतान के मुसलमानी राज्य की सीमा में थे ।[३]

पुराने राज्यो में प्रायः यह नियम था और होना भी चाहिए कि जिन सम्प्रदायों का शासन और सरकार से सम्बन्ध नहीं होता था, वे भाग भागकर राज्य के अन्तिम और सीमा पर के प्रदेशो मे जाकर शरण लेते थे। अग्निपूजक ईरानियो और ईसाई रूमियो में भी यही दस्तूर था; और मुसलमान अरबो मे भी यही बात हुई थी। पहले कहा जा चुका है कि कजदार मे खारिजो[४] मुसलमानो की बस्ती थी और उन्ही का राज्य भी था इसी प्रकार मुलतान में भी शीया सम्प्रदाय के इस्माइलिया नामक एक वर्ग के लोग आकर बस गए थे और पीछे से वहाँ इनका राज्य स्थापित हो गया था। इनका वंश शुद्ध अरबी था और ये लोग अपने आपको सामा बिन लोई की सन्तान कहते थे ।

[१] **अबुलू फिदा कृत तकत्रीमुल् बुलदान; पृ० ३५० (पेरिस) ।**

[२] **मसऊदी; पहला खढ; पृ० ३७२ (पेरिस) ।**

[३] **उक्त ग्रन्थ, पृ० ३७५।**

[४] मुसलमानो का वह सम्प्रदाय जो अबूबकर, उमर और उस्मान इन्ही तीनों खलीफाओं को मानता है; चौथे खलीफा अली को नही मानता और उनका विरोधी है। - अनुवादक ।

बनूसामा (सामा वंशज) कौन थे

ऊपर कुरैश के पूर्वजों में से एक का नाम लोई बिन ग़ालिब आया है। इसी लोई की एक सन्तान का नाम सामा था। इसी के वंश को बनू सामा कहते थे।[१] इस्लाम में इस वंश की बहुत अधिक उन्नति मोत्तजिद के समय (सन् २७९ - २८६ हि०) में हुई थी। बात यह हुई कि अरब के उमान प्रदेश में खारिजी, सम्प्रदाय के मुसलमानों की बहुत अधिकता थी। खलीफा ने मुहम्मद बिन क़ासिम को उन्हें दबाने के लिये नियत किया। उसने ख़ारिजी लोगो को हराया और उमान में अपना राज्य स्थापित कर के वहाँ सुन्नी सम्प्रदाय का प्रचार किया। यह इस वंश का पहला अमीर था और सन्तान का बराबर इस राज्य पर अधिकार रहा। इन लोगो में आपस में घरेलू लड़ाई झगड़ा हुआ। इसके बाद इसकी सन् ३०५ हि० में उस समय बहरैन में करमती लोग बहुत बलवान् हो रहे थे। उन्होंने इनकी इस घरेलू लड़ाई से लाभ उठाया । यहाँ तक कि अन्त में सन् ३१७ हि० में अबू ताहिर करमती ने उमान प्रदेश इस वंश के हाथ से छीनकर करमती राज्य की सीमा में मिला लिया ।[२]

[१] इब्न खलदून ने यह बात बार बार स्पष्ट कर के बतलाई है कि कुरैश के वंशों का इतिहास जाननेवाले बहुत से लोग यह नहीं मानते कि बनू सामा लोग इसी सामा बिन लोई के वंश के थे। देखो इब्न खलदून; पहला खंड; पृ० ३२४ और चौथा खंड; पृ० ६३ ।

[२] उक्त ग्रन्थ; चौथा खंड; पृ० ६३ (मित्र) ।

उमान से सिन्ध तक समुद्र के मार्ग से थाना जाना और समुद्री व्यापार सदा से होता आया था। और सम्भवतः सिन्ध के साथ सामा लोगों का सम्बन्ध चहुत पुराना था।

खलीफा मामूँ रशीद के समय से लेकर मोतसिम बिल्लाइ (सन् २२७ हि०) के समय तक बनू सामा के दास फजल बिन माहान और उसके बाद उसके वंश के लोगों ने सिन्ध के सन्दान नामक स्थान पर बराबर राज्य किया । पर अन्त मे वह वंश भी आपस की घरेलू लड़ाई के कारण नष्ट हो गया ।[१]

इस पुराने सम्बन्ध को देखते हुए यह कोई आश्चर्य की यात नही है कि बनू सामा या सामा के वंश के लोग उमान का राज्य नष्ट होने पर वे करामता से भागकर सिन्ध और सिन्ध से मुलतान चले आए हो और यहाँ ईश्वर ने उन्हें फिर नया राज्य प्रदान किया हो। जो हो, यही बनू सामा मुलतान के अमीर या शासक थे; और इन्ही को पिछले पूर्वज के विचार से वनू मन्त्रा भी कहते थे। हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त मे सब से पहले इनके स्वतन्त्र राज्य का नाम हमको मिलता है।

बनू मम्वा

सब से पहले इब्न रस्ता, जिसका समय सन् २९० हि० है, अपनी किताबुलू अलाकुल् नसियः के भूगोलवाले अंश में कहता है-

"मुलतान में एक जाति रहती है जो अपने आपको सामा बिन लोई[२] की सन्तान बतलाती है। इनको लोग बनू मम्बा कहते हैं और यही लोग वहाँ निवास करते हैं। ये अमीरुल् मोमिनीन का खुतबा पढ़ते हैं। जब भारत के राजा लोग इनसे लड़ने के लिये आते है, तब ये भी मुलतान से अपनी बड़ी सेना लेकर निकलते हैं और अपने धन तथा बल के कारण उन राजाओं को दबाते हैं।[१]

[१] **बिलाजुरी; पृ० ४४६ (लीडन) ।**

[२] **कुछ इतिहास-लेखकों और यात्रियों ने कही कही सामा की जगह आसामा लिख दिया है, पर यह ठीक नहीं है।**

इसके दस बरस बाद मसऊदी सन् ३०० हि० के कुछ ही पीछे मुलतान पहुँचता है। वह लिखता है-

"जैसा कि हमने कहा है, मुलतान का राज्य सामा बिन लोई बिन ग़ालिब के हाथ में है। वही यहाँ का अमीर है। उसके पास सेना और बल है और मुलतान इस्लामी राज्य की बड़ी सीमाओं में से एक, सीमा है। मुलतान के अधिकार में उसके चारों ओर एक लाख बीस गाँव ऐसे हैं जो गिने जा चुके हैं। यहीं वह प्रसिद्ध मन्दिर है। ... मुलतान के अमीर की अधिक आय उन्हीं सुगन्धित लकड़ियों से है, जो दूर दूर से इस मन्दिर के लिये आती हैं। जब कभी हिन्दू इस नगर पर चढ़ाई करते हैं और मुसलमान उनका सामना नहीं कर सकते, तब वे यह धमकी देते हैं कि हम यह मन्दिर तोड़ डालेंगे। बस हिन्दू सेनाएँ लौट जाती हैं। मैं सन् ३०० हि० के बाद मुलतान गया था। उस समय वहाँ का शासक अबुल् लबाब मम्बा बिन असद करशी सामी था ।[२]

मसऊदी के चालीस बरस बाद सन् ३४० हि० में इस्तखरी भारत आया था। वह कहता है-

[१] **अल् ऐलाक उल् नफसिया; इब्न रस्ता; पृ० १३५ (लीडन सन् १८६२ ई०) ।**

[२] **मसऊदी कृत मुरूजुज्जहब; पहला खंड; पृ० ३७५-७६ (पेरिस) ।**

"मुलतान नगर मन्सूरा से आधा है। यहाँ एक मन्दिर है जिसमें दर्शन करने के लिये दूर दूरसे लोग आते हैं। वे इस मन्दिर और इसके पुजारियों पर बहुत अधिक धन व्यय करते हैं। यह मन्दिर बाजार के सब से अधिक बसे हुए भाग में है। मूर्ति का वर्णन है।) का अमीर ले लेता है। (इसके आगे जो कुछ यहाँ आता है, वह सत्र मुलतान उसमे से कुछ तो वह करता है और कुछ अपने लिये बचा रखता है। पुजारियों पर खर्च जब कभी कोई हिन्दू राजा इसपर चढ़ाई करना चाहता है, तत्र वह इस मन्दिर को नष्ट कर देने की धमकी देता है, जिससे वे लोग लौट जाते हैं। यदि यहाँ यह मन्दिर न होता, तो हिन्दू राजा

इस नगर को नष्ट कर देते। मुलतान के चारो ओर एक मजबूत परकोटा है। नगर के बाहर आधे फरसंग पर बहुत से मकान हैं, जिनका नाम जन्दरावन है। यह सैनिक छावनी है। यहीं बादशाह रहता है। वह केवल शुक्रवार को हाथी पर सवार होकर नमाज पढ़ने के लिये मुलतान जाता है। वह कुरैश जाति का है और सामा बिन लोई के वश में है। मुलतान पर उसने अधिकार कर लिया है और वह मन्सूरा (सिन्ध) के अमीर या और किसी के अधीन नहीं है। वह केवल खलीफा के नाम का खुतबा पढ़ता है।"[१]

इस्तखरी के सत्ताइस बरस बाद सन् ३६७ हि० मे बग़दाद का इब्न हौकल मुलतान आया था। उसने मुलतान का बहुत कुछ हाल लिखा है, पर वहाँ के बातिनियों[२] और इस्माइलियो का कोई उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि यह नई बात अवश्य ही लिखने के योग्य थी। इब्न हौकल के आठ बरस बाद बुशारी मुकद्दसी मुलतान आया था। वह कहता है-

[१] याकृत कृत मुग्रजमुल् बुल्दान से "मुलतान" शब्द ; इस्तख़री के आधार पर ।

[२] शीया सम्प्रदाय का एक वर्ग जो यह कहता है कि कुरान का वास्तविक अर्थ या तो मुहम्मद साहब जानते थे और या हजरत थली । कुरान के शब्दों मे साधारणतः जो अर्थ निकलता है उसके सिवा उसका कुछ गूढ अर्थ है। - अनुवादक

"मुलतानवाले शीया हैं। वे अजान में हैय अला खैरिल् अमल" (सब लोग शुभ काम के लिये चलो) कहते हैं और नमाज के लिए खड़े होने पर पहले दो बार तकबीर[१] पढ़ते हैं।"[२]

"मुलतान में लोग मिस्र के फ़ातिमी खलीफा का खुतबा पढ़ते. हैं और उसी की आज्ञा से यहाँ का प्रबन्ध होता है। यहाँ से मिस्र के लिये बराबर उपहार आदि भेजे जाते हैं।"[३]

इन वर्णनो से और दूसरी बातों के सिवा यह भी सिद्ध होता है कि इब्न रस्ता के समय में अर्थात् सन् २९० हि० में और फिर मसऊदी के समय में भी; क्योंकि वह इस विषय में कुछ भी नहीं कहता और इस्तखरी के समय अर्थात् सन् ३४० हि० में मुलतान का

शासन सुन्नी मुसलमानों के हाथ में था; और वहाँ बगदाद के खलीफा का खुतबा पढ़ा जाता था । सन् ३६७ हि० तक कोई ऐसी बात नहीं हुई जो लिखने के योग्य हो। पर सन् ३७५ हि० में यह नगर इस्माइलियों के हाथ में दिखाई देता है और उनपर मिस्र के इस्माइली फ़ातिमी खलीफा का प्रभाव देखने में आता है। इससे यह प्रकट होता है कि सुलतान के शाही वंश के धर्म में यह परिवर्त्तन सन् ३४० हि० बल्कि सन् ३६७ हि० और सन् ३७५ हि० के बीच में हुआ था ।

[१] **मुसलमान लोग जब नमाज़ पढ़ने के लिए पंक्ति बाँधकर खड़े होते हैं तब उनमें से एक आदमी फिर से कुछ संक्षिप्त अजान देता है। उसी को तकबीर कहते है और पंक्ति बाँधकर खडा होना अकामत कहलाता है। - अनुवादक ।**

[२] **मुकद्दसी कृत अहसनुत्तकासीम; पृ० ४८१ ।**

[३] **उक्त ग्रन्थ; पृ० ४८५ ।**

यह समय अनुमान से निश्चय किया गया है; और इसका समर्थन इस बात से होता है कि मिस्त्र में इस्माइली फातिमियों का राज्य भी उसी समय अर्थात् सन् ३५८ हि० में स्थापित हुआ था; और सन् ३६१ हि० मे उनकी राजधानी अफ्रिका से मिस्र चली गई थी। उस समय इस्लामी जगत दो भागो में बँट रहा था। सुन्नी लोग बग़दाद की अब्बासी खिलाफत को और शीया लोग मिस्र की फातिमी खिलाफत को मानते थे। ये दोनों' ही खिलाफतें भिन्न भिन्न इस्लामी देशों पर अपना अपना प्रभाव बढ़ाने के लिये आपस में चढ़ा ऊपरी कर रही थीं। यहाँ तक कि स्वयं मो और मदीने में भी इस प्रकार की चढ़ा ऊपरी हुआ करती थी। जब मुसलमानों का कोई नया राज्य स्थापित होता था, तब दोनों के प्रतिनिधि और प्रचारक अपना अपना काम आरम्भ कर देते थे । यद्यपि उस समय बग़दाद की खिलाफत दुर्बल होने लगी थी और मिस्र की उन्नति का समय था, बग़दाद का अब्बासी राज्य वृद्ध हो चला था और मिस्र के फातिमी राज्य की जवानी थी, पर बगदाद की यह कमी इस बात से पूरी हो रही थी कि पूर्व मे जो नए तुर्की राज्य स्थापित हो रहे थे, वे

अब्बासी राज्य को ही अपना नेता मानते थे। बुखारा के सामानी लोग इन्हीं के प्रभाव मे थे। हिजरी चौथी शताब्दी के मध्य में गजनवी लोग प्रकट हुए और इसके चालिस पचास बरस बाद सलजूकी लोगो का भंडा फहराने लगा। यद्यपि इन दोनो का सैनिक बल बहुत बढ़ा चढ़ा था, पर फिर भी इन लोगो ने अब्बासी खलीफाओ के सामने सिर झुकाया ।

ज्यो ही सुलतान महमूद गजनवी की प्रसिद्धि होने लगी, त्यो - ही बगदाद के खलीफा ने सबसे पहले सन् ३८७ और ३९० हि० के बीच में उसका सम्मान बढ़ाने के लिये बहुत अच्छी खिलश्यत भेजी; और उसे अमीनुल् मिल्लत यमीनुद्दौला "(धर्म का रक्षक और साम्राज्य का दाहिना हाथ) की उपाधि द्री। इसके बाद सन् ३९६ हि० में सुलतान ने मुलतान के इस्माइलियों के विरुद्ध अपनी सेना बढ़ाई और सन् ४०१ हि० में वहाँ के करमती अमीर को पकड़ लिया । शायद यही बातें देखकर सन् ४०३ हि० में मिस्र के फ़ातिमियों ने भी महमूद के पास अपना राजदूत भेजा। पर सुलतान ने उसको बातिनी समझकर रास्ते में ही पकड़वा लिया; और प्रसिद्ध सैयद हुसैनबिन ताहिर बिन मुस्लिम अलवी को सौंप दिया[१], जिन्हों ने उसे मरवा डाला।

मुलतान के करमती

अब प्रश्न यह है कि अरब भूगोल-लेखक सन् ३४० हि० तक जिस बनू मम्बा नामक अरब सुन्नी वंश को सुलतान का निवासी लिखते हैं, उसके बाद का इस्माइली वंश वही अरब बनू मम्बा था, जो सुन्नी से इस्माइली बन गया था या यह कोई दूसरा वंश था? हमारे सामने पुस्तकों का जो ढेर लगा हुआ है, उसमें हमें इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिलता। पर अबू रैहान बेरूनी अपनी किताबुल् हिन्द नाम को पुस्तक में, जो उसने सन् ४२६ हि० में लिखी थी, मुलतान के मन्दिर का इतिहास बतलाता हुआ लिखता है-

"जब करमती (इस्माइलिया) लोगों का मुलतान पर अधि- कार हुआ, तब जल्म बिन शैबान ने, जिसने उस समय यहां प्रभुता प्राप्त कर ली थी, मुहम्मद बिन कासिम की

जामा मसजिद को एक अमवी स्मृति समझकर बन्द करा दिया, और इस मन्दिर को तोड़ कर उसकी जगह मसजिद बना दी ।"[२]

[१] इस फ़ातिमी राजदूत के आने का वर्णन जैन उल् अखबार पृ० ७१ (बरलिन) में है।

[२] किताबुलू हिन्द ; पृ० ५०१ (लन्दन) ।

इससे जान पड़ता है कि जो करमती वंश हिजरी चौथ शताब्दी के अन्त में बलवान् हो गया था, वह कोई दूसरा वंश था और उसके मूल पुरुष का नाम जल्म बिन शैबान था। और जैसा कि इन नामो से पता चलता है, वह भी अरब था। आगे चलकर बैरूनी कहता है- "इन करमती लोगों का समय हमसे प्रायः एक सौ बरस पहले था ।"[१] किताबुलू हिन्द सन् ४२४ हि० में लिखी गई थी। इससे सौ बरस पहले सन् ३२४ हि० होगा। पर हम यह बात जान चुक हैं कि सन् ३४० हि० तक यहाँ निश्चित रूप से बनू मम्बा नामक अरब सुन्नी वंश का राज्य था। इस लिये यह सन ३२४ हि० मुलतान पर करमती लोगो का अधिकार होने का समय नहीं है, उस समय के लोग इराक और फारस की खाड़ी के तटो पर प्रकट हुए होगे ।

असल बात यह है कि इस अवसर पर तीन इस्लामी दलो के नाम गड्ड मड्ड हो गए हैं यद्यपि करमती, इस्माइली और मलाहदी ये तीनो इस्माइली शीया सम्प्रदाय के ही भेद हैं, पर इन तीनो मे थोड़ा थोड़ा अन्तर है; भी अलग अलग है। और इन तीनो के उत्पन्न होने का समय सबसे पहले हिजरी तीसरी शताब्दी के अन्त मे करमती लोग बहरीन टापू, फारस की खाड़ी और इराक क सीमा पर प्रकट हुए थे। इस्माइली लोग सन् २९६ हि० से अफ्रिका मे प्रकट हुए थे; पर मिस्र मे ये लोग सन् ३५६ हि० मे आए थे। और मलाहदी, जिसका दूसरा नाम बातीना भी है और जो हसन सब्बाह का दल था, सन् ४८३ हि० (१०९१ ई०) के बाद खुरासान से प्रकट हुआ था ।

[१] **उक्त ग्रन्थ : पृ० ५६ ।**

मिस्र के इस्माइली फातिमी खलीफाअल् हाकिम बेअनिल्लाह ने शाम देश मे एक और दल उत्पन्न किया था, जिसका प्रसिद्ध नाम दुरूज है। अब प्रश्न यह है कि मुलतान में जो दल शासन करने लगा था, वह इस्माईली शीया तो अवश्य था, पर वह इनमें से किस सम्प्रदाय का था। मेरी समझ में वे फातिमी इस्माईली शीया थे जिनका केन्द्र मिस्र में था। कुछ इतिहास लेखकों ने इनको जो फ़रमती और मलाहदी कहा है, वह उस समानता के कारण कहा है जो इन दलो में आपस में हैं। और इसका प्रमाण यह है कि जिस समय अर्थात् सन् ३४० हि० के बाद मुलतान में ये लोग बलवान् होते हैं, उस समय सभी जगह क़रमती लोगों की अवनति और पतन हो रहा था। दूसरी बात यह है कि करमती लोग मिस्र के फातिमी खलीफाओं की प्रधानता नाममात्र के लिये मानते थे और सुलतानवाले मिस्र के ही फ़ातिमी खलीफाओं को मानते थे । तीसरे यह कि बुशारी मुकद्दसी जो एक धार्मिक विद्वान् था, इन्हें करमती नहीं बल्कि शीया लिखता है; और कहता है कि इनपर फ़ातिमी खलीफाओं का प्रभाव था। फिर "हैय अला खैरिल् अमल" की अजान, जुमे की नमाज़ और खुतबे आदि के ढंग क़रमती लोगों में नहीं थे, जिनका अस्तित्व मुलतान के इस्माईलिया में मुकद्दसी के वर्णन से प्रमाणित होता है। दुरूजी लोग सन् ३८६ हि० से ४११ हि० तक के बीच में उत्पन्न हुए थे, जो बहुत पीछे का समय है। और बातिनी या मलाहदी अर्थात् हसन बिन सब्बाह का दल तो इसके सौ बरस बाद उत्पन्न हुआ था। इस लिये कुछ इतिहास लेखकों का इनको मलाहदी कहना बिलकुल गलत है।

यह हो सकता है कि फ़ारस की खाड़ी, बहरैन और उमान के क़रमतियों से ही ये लोग पहले क़रमती के रूप में उत्पन्न हुए हों और पीछे से क़रमतियों की अवनति होने पर इन्हों ने फातिमी इस्माईली. ढंग पकड़ लिया हो; क्योंकि क़रमती भी मानो आधे इस्माईली ही थे।

सुलतान महमूद की चढ़ाई के समय मुलतान में जो इम्माईली वंश शासन करता था, फारसी इतिहासों के अनुसार उसके मूल पुरुष का नाम शेष हमीद था। फरिश्ता ने ईश्वर

जाने किस आधार पर लिखा है- "वे आरम्भ के मुसलमान, जो अफगानिस्तान की चढ़ाई के समय इधर आ गए थे, पीछे से लौटकर अपने घर न जा सके; और उन्होने खैबर के पहाड़ी पठानों के साथ व्याह शादी करना आरम्भ कर दिया। इस अरबी और अफगानी वंशों से लोधी और सूर नाम के दो कवीले उत्पन्न हुए। शेख हमीद इसी लोधी वंश का था।" जिस प्रकार और बहुत सी बातों का कोई आधार नहीं है, उसी प्रकार इन क़बीलो की उत्पत्ति के सम्बन्ध की इस बात का भी कोई आधार नहीं है। लोधियो ने कभी अपने नाम के साथ शेख नहीं लिखा और न उनके नाम ही इस प्रकार के होते थे । बल्कि यह बात भी कठिनता से मानी जायगी कि उस समय तक वे लोग मुसलमान हो चुके थे। सच बात तो यह है कि फारसी इतिहास-लेखक मुलतान का अरबी इतिहास बिलकुल नहीं जानते थे। इस लिये वे मुलतान के इन मुमलमान रईसों या अमीरों को अफगान समझनेके लिये विवश थे। और नहीं तो शेख हमीद आदि का वास्तव में अफगानो से कोई सम्बन्ध नहीं था। बल्कि सम्भवतः वे लोग जलम बिन शैत्रान के वंश के थे, जिसका भी ऊपर बैरूनी के आधार पर उल्लेख हो चुका है। आगे इनका विस्तार सहित वर्णन किया जायगा ।

फरिश्ता में लिखा है कि जब अलप्तगीन और उसके उत्तरा- धिकारी सुबक्तगीन ने सीमा पर के अफगानो पर चढ़ाइयां करनी शुरू की, तब उन्होने लाहौर के राजा जैपाल से सहायता माँगी। राजा जयपाल ने भाटिया के राजा से सलाह की; और यह निश्चय किया कि भारत की सेना जाड़ो मे सीमा पर की ठंढ नहीं सह सकती; इस लिये पठानो को यहाँ लाकर बसाना चाहिए; और इस लिये उसने शेख हमीद लोधी को लमगान और सुलतान की जागीर दी। शेख़्न हमीद ने अपने हाकिम नियत किए और उसके बढ़ने में उसने सन् ३५१ से ३६५ हि० तक भारत को अलप्तगीन की चढ़ाइयों से बचाया।[१] इसमें पठानों को लाकर बसाना और शेख हमीद को लोधी बतलाना दोनों ठीक नहीं हैं, मन-गढ़न्त हैं।

जब अलप्तगीन के बाद सन् ३६५ हि० में सुवक्तगीन बादशाह हुआ, तब शेख हमीद ने ग़ज़नी का बढ़ता हुआ बल देखकर अमीर सुवक्तगीन से सन्धि कर ली और आप उसका करद सरदार बन गया । पर जब सन् ३९० हि० में ग़जना के सिंहासन पर सुलतान महमूद बैठा और फिर जब सन् ३९५ हि० में उसने भाटिया के राजा बजराव पर चढ़ाई की, तब

मुलतान का राज्य शेख हमीद के पोते अबुल फ़तह दाऊद बिन नसीर बिन शेख हमीद के हाथ में था। फारसी इतिहासों में इसी को मुलहिद और क़रमती इस्माईली कहा गया है। अबुल फ़तह से दाऊद ने कदाचित् सुलतान महमूद का बढ़ता हुआ साहस देखकर यह चाहा कि मैं हिन्दू राजाओ के साथ मिलकर अपना बचाव करूँ। इसी लिये भाटिया की चढ़ाई के समय अबुल फतह ने महमूद के विरुद्ध बजराव की सहायता की थी ।[२]

[१] **यह पूरी घटना फ़रिश्ता, पहला खंड, पृ० १७-१८ (नवलकिशोर) मे दी हुई है।**

[२] **यह पूरी घटना उक्त ग्रन्थ के पृ० २४-२५ में दी हुई है।**

उस बार तो सुलतान चुप रहा, पर दूसरे बरस सन् ३९६ हि० में उसने अबुल फतह को दंड देने का विचार किया। इस बार उसने चाहा कि मैं सीधा अर्थात् डेरा गाजी खां से होकर न चलूँ, बल्कि पेशावर से पंजाब होकर सुलतान पहुँचूँ जिसमें अबुल फतह को मेरे आने की खबर न मिलने पावे । इस विचार से उसने पंजाब के राजा आनन्दपाल से रास्ता माँगा और कहा कि तुम इस देश से होकर मेरी सेना को मुलतान जाने दो। कुछ दूसरे इतिहास लेखको का यह कहना है कि सुलतान का यह विचार जानकर स्वयं अबुल फतह ने राजा आनन्दपाल से सहायता माँगी। राजा ने लाहौर से पेशावर जाकर सुलतान को रोका। पर सुलतान की सेना आनन्दपाल को हराकर उसीके देश से होकर मुलतान पहुँची। अबुल फनढ़ क़िले में बन्द हो गया। अन्त में नगरवालों ने बीच में पड़कर इस शर्त पर मेल कर लिया कि मुलतान से नियत कर बरावर गजनी पहुँचता रहेगा। अबुल फतह ने अपना पुराना धार्मिक विश्वास छोड दिया, और वचन दिया कि में अपने देश में इस्माईली की जगह सुन्नी सम्प्रदाय की आज्ञाओ को प्रचार करूँगा। इसके कुछ ही बरसो के बाद (सन् ४०२ हि० से पहले) सुलतान ने फिर मुलतान पर चढ़ाई की; और इस्माईलियों का जड़ से नाश कर दिया। साथ ही वह दाऊद बिन नसीर को; पकड़ कर राजनी ले गया; और उसे गोर के किले में कैद कर दिया, जहाँ वह मर गया[१]।

[१] **तारीख फरिश्ता ; पृ० २५-२७ (नवलकिशोर) ।**

यह तो फरिश्ता के लेखका सारांश है, पर गर्दैजी अपने जैनुल अनचार नामक इतिहास मे जो सन् ४४१ हि० के लगभग राजनियों के शासनकाल और राजधानी मे लिखा गया था, लिखता है- "गजनी से सुलतान ने मुलतान जाने का विचार किया और सोचा कि अगर मैं यहाँ से सीधा मुलतान जाता हूँ, तो शायद दाऊद बिन नत्र (नसीर नही) को, जो मुलतान का अमीर था, खबर हो जाय और वह अपने बचाव का उपाय कर ले; इस लिये वह दूसरे रास्ते से चला। रास्ते मे आनन्दपाल पड़ता था। उसने उससे रास्ता माँगा। राजा ने रास्ता नही दिया। सुलतान लड़ा। आनन्दपाल भागकर कश्मीर चला गया। सुलतान मुलतान पहुँचा और सात दिन तक नगर पर घेरा डाले पड़ा रहा। अन्त में नगरवालों ने इस बात पर सन्धि कर ली कि हम २० हजार दिरम कर दिया करेंगे। सुलतान लौट गया। यह घटना सन् ३९६ हि० में हुई थी। फिर जब सन् ४०१ हि० में वह आया, तब गजनी से मुलतान गया; और मुलतान का जो अंश बचा रह गया था, उसे भी जीत लिया। वहाँ जो करमती (इस्माईली) थे, उनमें से बहुतों को उसने पकड़ लिया। उनमे से कुछ को मार डाला, कुछ के हाथ काटे और कुछ को दूसरे कड़े दंड दिए । ... उसी वर्ष उसने दाऊद बिन नस्त्र को पकड़ लिया और गोर के किले में कैद कर दिया।"[१]

अरबी के प्रामाणिक इतिहासों में इस घटना के सम्बन्ध में बहुत ही संक्षिप्त वर्णन है; और कुछ बातों में आपस में कुछ मतभेद भी है। पर फिर भी इस घटना की कुछ मुख्य मुख्य बातें उन सब में एक समान हैं। इब्न असीर (सन् ५५५-६३० हि०) में लिखता है-

[१] **गर्दैजी कृत जैनुल् अखबार; पृ० ६७-६८ (बरलिन) ।**

"इस साल (सन् ५९६ हि०) सुलतान महमूद ने मुलतान पर चढ़ाई की। इसका कारण यह था कि सुलतान ने सुना था कि मुलतान का वाली और अमीर अबुलफतह शुद्ध धर्म (इस्लाम) पर विश्वास नहीं रखता और लोग उसपर इस्माईली होने का अभियोग लगाते थे। उसने यह भी सुना था कि अबूनफूतूह ने अपनी प्रजा से भी इस्माईली सम्प्रदाय में आ

जाने के लिये कहा है; और प्रजा ने उसकी बात मान भी ली है। यही सब बातें सुनकर सुलतान ने उसपर जिहाद (धार्मिक युद्ध) करना आवश्यक समझा; और चाहा कि जिस पद पर वह है, उससे उसे नीचे उतार दिया जाय। इस लिये वह गजनी से उसकी ओर चला। रास्ते में उसे बहुत सी नदियाँ मिली, जिनमे पानी बहुत जारो से बह रहा था। विशेष कर सैहून नदी को पार करना बहुत ही कठिन था। इस लिये आनन्दपाल से कहला भेजा कि तुम अपने देश मे से होकर हमें मुलतान जाने का रास्ता दो । जब उसने यह बात नहीं मानी, तब सुलतान ने पहले उसीपर चढ़ाई की। आनन्दपाल भागकर काश्मीर चला गया। जब अबुल्फुतूह ने सुलतान के आने का हाल सुना, तच उसने सोचा कि मैं उसका न तो सामना कर सकता हूँ और न उसकी आज्ञा टाल सकता हूँ। इस लिये उसने अपना सारा धन सरन्दीप भेजवा दिया और मुलतान खाली कर दिया। जब सुलतान वहाँ पहुंचा, तब उसने देखा कि वहाँ के लोग सीधे मार्ग से भ्रष्ट होकर अन्धे हो रहे हैं। उसने उन सबको घेर लिया और लड़ कर मुलतान पर अधिकार कर लिया और उनपर २० हजार दरहम जुरमाना किया।"[१]

इब्न खलदून ने भी अपने इतिहास मे यही घटनाएँ दोहराई हैं।[२] इस उद्धरण से एक तो शुद्ध नाम जाना जाता है। यह पता चल जाता है कि नाम अबुलफतह नहीं था, बल्कि अबुलफुतूह था। दूसरे यह पता चलता है कि राजनी से सीधा मुलतान जानेवाला रास्ता छोड़कर पंजाब के रास्ते मुलतान जाने की क्यो आवश्यकता पड़ी थी। परन्तु इसमें जो यह कहा है कि अबुलफुतूह ने अपना खजाना मुलतान से सरन्दीप भेज दिया था, उसका कोई आधार नही है। शायद उस समय के लेखक को यह पता न हो कि मुलतान से सरन्दीप कितनी दूर है । यह भी हो सकता है कि मूल प्रतिमे किसी और नगर का नाम हो और भूल से सरन्दीप छप गया हो । इसके बाद सन् ।४०३ हि० में मिस्र के फातिमी खलीफा ने सुलतान महमूद से सम्बन्ध स्थापित करना चाहा था। पर सुलतान ने वह बात नहीं मानी और, जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, मिस्र के खलीफा का दूत रास्ते में ही मारा गया।

[१] **कामिल इब्न श्रसीर, नवाँ खेड पृ० १३२ (लीडन) ।**

[२] **इब्न खलवून; चौथा सड; पृ० ३२६ (मित)**

इस सम्बन्ध में दुरूजियों की पवित्र पुस्तक का एक अंश बहुत महत्व का है। मिस्र के इस्माईली खलीफा हाकिम बेअमरिल्लाह (सन् ३८६० ४११ हि०) ने मिस्र और शाम में जो अपना नया दल बनाया था, उसी का नाम दुरूजी था। इस दल के लोग आज तक शाम और लबनान में बसे हुए हैं। दुरूज की इस पुस्तक में एक लेख है, जो सन् ४२३ हि० का है। उसके कुछ वाक्य इस प्रकार हैं[१] -

"साधारणतः मुलतान और भारत के एक ईश्वर को माननेवाले (मुसलमानों) कि नाम और विशेषतः शेख इब्न सोमर राजा पालके नाम ।"

सुलतान महमूद सन् ४२१ हि० से मरा था और सन् ४२३ हि० उसके उत्तराधिकारी और लड़के सुलतान मसऊद का समय है। इससे सिद्ध होता है कि जब गजनवियों ने मुलतान जीत लिया था, उसके बाद भी मुलतान इन लोगों का केन्द्र था । बल्कि यह पता चलता है कि गजनवियो के निर्बल हो जाने पर फिर इस्माईलियों ने मुलतान पर अधिकार कर लिया था; क्योंकि सुलतान शहाबुद्दीन गांरी के समय में हम फिर सुलतान पर इस्माईलियो का शासन देखते हैं। सन् ५७२ हि० में सुलतान को करमती (इस्माईली) लोगों के हाथ से फिर मुलतान निकालना पड़ा था; [२] और अन्त में वह दिल्ली के राज्य का एक अंग हो गया।

[१] **ईलिगट; पहला खंड; परिशिष्टः पृ० ९६१ 1**

[२] **फरिश्ता; पहला खंड; ५० ५६, और दूसरा खंड; पृ० ३०४ (नवल- किशोर।)**

मुलतान के शासकों का क्रम

ऊपर जो बातें कही गई हैं, उनसे पता चलता है कि मूलतान में शासको के तीन अलग अलग क्रम थे-

(१) मम्बा बिन असद जो असामा बिन लोई के कुरैश वंश का था और जिसके वंश को बनू मम्बा कहते थे। इसका पता सन् २९० से ३४० हि० (इब्न रस्ता से अस्तखरी का समय) तक निश्चित रूप से लगता है।

(२) जलम बिन शैबान, जो बैरूनी के वर्णन के अनुसार मुलतान पर अधिकार करनेवाला पहला फ़रमती या इस्माईली था । इसका समय ३४- हि० बल्कि ३६७ और ३७५ हि० के बीच में है; अर्थात् इस्तखरी बल्कि इब्न हौकल और बुशारी के बीच में है; क्योकि बुशारी ऐसा पहला अरब यात्री है जो मुलतान और मिस्र के फातिमियो के आपस के सम्बन्ध का उल्लेख करता है।

(३) शेन हमीद और उसका लड़का नसीर या नस्र और उसका लड़का अबुल्फुतह या अबुलफतूह दाऊद करमती । इनमे से पहला शेख हमीद अलप्तगीन और सुबक्तगीन के समय में हुआ था; अर्थात् शेख हमीद और उसके लड़के नस्त्र (यदि वह भी शासक हुआ हो तो) का समय सन् ३५१ से ३९० हि० तक ठहराया जा सकता है । सुलतान महमूद का समकालीन अबुल्फत दाऊद था; इस लिये उसके शासन का समय सन् ३९० से ३९६ हि० (मुलतान के पहले पहल जीते जाने का सन्) तक बल्कि सन् ४०१ हि० (मुलतान के दूसरी बार जीते जाने और दाऊद के पकड़े जाने का सन्) तक होगा ।

इनमे से पहले और दूसरे वंशो का फारसी इतिहास-लेखको को पता नही है। पर फिर भी अरब यात्रियो के वर्णन के अनुसार वे लोग शुद्ध अरब थे। तीसरे वंश के साथ सुलतान महमूद का सम्बन्ध था; इस लिये फ़ारसी के इतिहास-लेखक उसे जानते हैं। इस सम्बन्ध में पाठकों को दो भूलों का सुधार कर लेना चाहिए । एक तो यह कि जिसको फ़ारसी लेखक अबुल्फतह कहते हैं उसका अरबी रूप अबुल्फुतूह था। और दूसरे यह कि जिसे वे नसीर बतलाते हैं, वह गर्दैजी के सब से पुराने प्रमाण के अनुसार नस्स्र था। नामों का

यह संशोधन इस लिये महत्वपूर्ण है कि फ़रिश्ता आदि ने लोधी और पठानों के वंश से इनका सम्बन्ध बतलाया है। पर ये नाम, जैसे शेख़ हमीद, नत्र और दाऊद आदि शुद्ध अरबी ढंग के नाम हैं; और नसीर के बदले नस्त्र अधिक शुद्ध और प्रचलित अरबी नाम है। इसी प्रकार कुन्नियत[१] (अबुल्फतह या अबुल्फुतूह खास अरबों का चिह्न है; और विशेषतः अबुलफुतूह बहुवचन रूप में) और इसके साथ जो प्रतिष्ठा सूचक शेन की उपाधि है, वह भी शुद्ध अरबी ढंग का है। और इस्माइली बातिनियों में शेख शब्द विशेष रूप से अमीर के अर्थ में बोला जाता था; क्योंकि इसका महत्व राजनीतिक होने की अपेक्षा अधिकतर धार्मिक होता था। इसी लिये स्वयं हसन बिन सब्बाह को शेखुल् जबाल (पहाड़ी प्रान्तों का शेख) कहते थे। इन सब कारणों से यही कहना पड़ता है कि लोगों ने व्यर्थ ही इनके लोधी और पठान होने की कल्पना कर ली थी। यहाँ तो यह भी बहुत कठिनता से माना जा सकता है कि उस समय में पठानो में इस्लाम का प्रचार हुआ था। इस आधार पर मेरा मत यही है कि शेख हमीद, शेख़ नत्र और अबुल्फुतूह दाऊद आदि जाति के विचार से अरब और वंश के विचार से जल्म बिन शैवान की ही सन्तान होगे। भारत के एक प्रसिद्ध लेखक[१] ने बिना किसी प्रमाण के ही यह लिख दिया है कि यह अधुल्कुतूह दाऊद वहीं था, जो सिन्ध के इतिहास में सोमरा के नाम से प्रसिद्ध है। सोमरा इसका हिन्दू नाम था; और अबुल्कुतूह मुसलमानी नाम था। यह भूल इस लिये हुई है कि उन्होने समझा था कि मुलतान और मन्सूरा दोनो में एक हो वश का राज्य था। इस लिये जब मुलतान के प्रकरण में इसका नाम अबुलफतह था। और सिन्ध के प्रकरण में सोमरा होना चाहिए था, तो वास्तव मे ये दोनों नाम एक ही आदमी के होगे। पर यह बात बिलकुल गलत है।

[१] पिता के नाम से पुत्र का अथवा पुत्र के नाम से पिता का प्रसिद्ध होना कुन्नियत कहलाता है। जैसे, अबुल्फ़ुतूह अर्थात फतह नामक व्यक्ति (या विजयों) का पिता - अनुवादक।

ऊपर किताबुद् दुरूज के पत्र के आरम्भ के जो - "साधा- रणतः मुलतान और भारत के मोवहद्दिदो (एक ईश्वर को माननेत्रालो) की सीमाओं और विशेष कर शेख इब्न सोमर राजा बल के नाम" वाला वाक्य दिया गया है, उसे देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि इब्न सोमरी मुलतान का बादशाह था। मुलतान के बादशाहो में न तो किसी इतिहास-लेखक ने सोमर का नाम लिया है और न किसी दूसरे प्रमाण से यह बात सिद्ध होती है। सोमरियो का सम्बन्ध केवल सिन्ध से था, जो बहुत दिनो से मुलतान से बिलकुल अलग और स्थायी राज्य था, जैसा कि सभी अरब यात्रियो के एक से वर्णन से निःसन्देह रूप से सिद्ध है। इस पत्र से यह अवश्य सिद्ध होता है कि मुलतान का अमीर अबुलफ़ुतूह दाऊद और सोमर दोनो एक ही सम्प्रदाय के माननेवाले थे; और हो सकता है कि अबुल्फ़ुतूह के पतन और कैद होने के बाद यह सोमर सिन्ध के क़रमती लोगों का धार्मिक शेख और इमाम नियत हुआ हो।

[१] स्वर्गीय मौलवी अब्दुलहलीम साहब शरर ने अपने सिन्ध के इतिहास के दूसरे खंड के ६ वें पृष्ठ में और फिर १२ वें पृष्ठ मे यह बात लिखी है। सम्भव है कि मौलाना को ईलियट (पहला खंड; पृ० ४६१) के शब्दों से कुछ अम हो गया हो ।

शेख हमीद आदि के पठान होने के सम्बन्ध में एक बात हो सकती है। वह यह कि इस्माईलियों का प्रायः यह नियम रहा है कि वे दूसरी जातियो में अपने धर्म का सहज में प्रचार करने के लिये और आप उनके समीपी बनने के लिये उन्हीं के वंश और धर्म के बन जाते थे। इस लिये यह हो सकता है कि शेख हमीद आदि ने पठानों को अपने साथ मिलाने के लिये अपने आपको पठान प्रसिद्ध कर दिया हो। पर हिन्दू वंश के साथ इनका, कभी किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं था और न कभी इनके नाम के साथ कभी कोई भारतीय शब्द लगाया गया है ।

मुलतान की भारतीय इस्लामी सभ्यता

मुलतान में अरबी और भारतीय सभ्यताओं का एक बहुत सुन्दर मिला हुआ रूप उत्पन्न हो गया था। यह नगर छोटा तो था, पर बहुत सुन्दर था। हर पेशेवालो के लिये अलग अलग बाजार थे। नगर के चारों ओर परकोटा था। नगर के बाहर अमीर की जो फ़ौजी छावनी थी, उसमें भी ऊंचे ऊचे मकान बने थे। बैरूनी ने बतलाया है कि नगर में मुहम्मद बिन कासिम की बनबाई हुई जामे मसजिद थी (सम्भवतः सन् ३४० और ३७५ हि० के बीच में)। जलम बिन शैबान इस्माईली करमती ने उसे इस लिये बन्द कर दिया था कि वह उमैय्या वंश की स्मृति थी। उसने सूर्य देव के प्रसिद्ध मन्दिर को तोड़कर नई जामे मसजिद बनवाई थी। जब सुलतान महमूद (सन् ३९६ या ४०३ हि०) ने मुलतान जीता, तब फिर पहली मसजिद को खोल दिया और दूसरी को बिना मरम्मत यादि कराए यों ही छोड़ दिया। जिस समय बैरूनी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक लिखी थी (सन् ४२४ हि०), उस समय वह मसजिद बिलकुल गिर गई थी और उसकी जगह मैदान हो गया था, जिसमें मेंहदी के पेड़ लगे हुए थे ।

इस्तखरी (सन् ३४० दि०) ने लिखा है कि मुलतान का अमीर हाथी पर चढ़कर जुमा (शुक्रवार) की नमाज पढ़ने के लिये जामे मसजिद जाता है। मानों केवल हिन्दुओं की यह शानदार सवारी उस समय तक अरब अमीरो को पसन्द आ चुकी थी। वह आगे चल कर कहता है- "मुलतान के लोग पाजामा पहनते हैं। प्रायः लोग फारसी और सिन्धी भी बोलते हैं।" मतलब यह कि पहनावे और भाषा मे हिन्दू और मुसलमान प्रायः एक से हो चुके थे ।

इब्न हौक़ल (सन् ३६७ हि०) भी यहां के लोगों के पहनावे और भाषा के सम्बन्ध में कुछ इसी तरह की बाते कहता है। वह लिखता है-

“यहाँ हिन्दुओं और मुसलमानो का पहनावा एक ही सा है। बालो के छोड़ने का भी वही एक ढंग है और इसी तरह मुलतानवालो को चाल है। मन्सूरा और मूलतान और उसके आस पास के स्थानो मे अरबी और सिन्धी बोली जाती है; और मकरानवालो की बोली

फारसी और मकरानी है। प्रायः कुरते ही पहने जाते हैं। पर व्यापारी लोग कमीज और चादर का व्यवहार करते हैं; जिस प्रकार इराक और फारस के लोग करते हैं।"[१]

सन् ३७५ हि० में बुशारी यहां आया था । उसने यहां के रीति रवाज और सभ्यता का बहुत कुछ अच्छा चित्र खीचा है। वह लिखता है-

[१] **सफरनामा इब्न हौकल; पृ० २३२ (लीडन)**

मुलतान यों तो मन्सूर से छोटा है, पर उससे अधिक बसा हुआ है। फल अधिक तो नहीं होते, पर सस्ते हैं। सैराफ़ (इराक का बन्दगाह) की तरह साल की लकड़ी के कई कई खंडों के मकान है। यहाँ के लोग न तो बदचलन होते हैं और न शराब पीते हैं। जो लोग इस अपराध में पकड़े जाते हैं, उन्हें प्राणदंड दिया जाता है। माल लेने और बेचने में न तो झूठ बोलते हैं और न कम तौलते हैं। यात्रियों का सत्कार करते हैं। प्रायः निवासी अरब हैं। लोग नहर का पानी पीते हैं। देश हरा भरा है और उसमें अच्छा धन है। व्यापार की दशा भी अच्छी है। सजावट सुख और वैभव बहुत है। शासन न्याय पूर्ण है। बाजार में कोई स्त्री बनाव सिंगार किए हुए नहीं मिलेगी और न कोई स्त्रियों से खुले आम बात करता हुआ दिखाई देगा। पानी अच्छा है। जीवन बहुत सुख का है और सब लोग प्रसन्नचित्त और शीलवान् हैं। फारसी भाषा समझी जाती है। व्यापार में अच्छा लाभ होता है। शरीर से सब लोग स्वस्थ हैं, पर नगर मैला है। मकान छोटे और तंग हैं। हवा खुश्क और गरम है। लोगों का रंग गेहुआँ और काला है।"[१]

मुलतान का सिक्का मिस्र के फातिमी सिक्के की तरह का बनाया गया है। पर यहाँ अधिकतर कन्ही नाम का सिक्का चलता है।"[२]

[१] **बुशारी कृत अहसनुत्तकासीम; पृ० ४८० (लीडन) ।**

[२] उक्त ग्रन्थ; पृ० ४८२ कन्हरी कोई साधारण सिक्का जान पडना है। इलियट ने ईश्वर जाने क्यों इसे "कन्धारियात" लिख दिया है और कहा है कि-"ये सिक्के कन्धार से बन कर थाते थे।" पर इसका कोई प्रमाण नहीं है। केवल शब्द बदल कर पाठ दिया गया है।

मन्सूरा

अरबी में सिन्ध का सबसे बडा नगर बरहमनाबाद प्रसिद्ध है, जिसका असली भारतीय नाम जैसा कि बैरूनी ने चतलाया है, यह- मनवा है। ईरानवाले इसको बरहमनावाद कहते थे। मुसलमानों में भी यह नाम चल पड़ा। इसके बाद कुछ सैनिक और राज- नीतिक आवश्यकताओं के कारण सिन्ध में अरब लोंगों को आप ही अपने नगर बसाने पड़े, जिनमें से महरूक्षा, बैजा ओर मन्सूरा बहुत प्रसिद्ध हुए ।

जब उमैय्या वंश के अन्तिम समय में अरबवालों का बल घट गया और सिन्धियों ने उन्हें समुद्र तट की ओर ढकेलना आरम्भ किया, तब अरब वालो हकम बिन अबाना कल्बी ने सत्र अरबों को समेटकर एक जगह इकट्ठा किया; और नदी के उस पार एक नगर बसाया जिसका नाम महफूजा रखा ।

इस इकम बिन अबाना के साथ मुहम्मद बिन कासिम का लड़का अम्र भी था, जो बहुत बहादुर और राजनीतिक था। हक्रम के सब काम वही किया करता था। उसने समुद्र के तट पर बरहमनाबाद से दो फरसंग की दूरी पर मन्सूरा नगर बसाया था ।[१]

अब्बासियो के समय मे मोतसिम बिल्लाह के शासनकाल (हिजरी तीसरी शताब्दी का मध्य) में बरमकी वंश के एक स्तम्भ इबरान बिन मूसा बिन यहिया बिन खालिद ने सिन्ध के वाली नियत होने पर बैजा नाम का नगर बसाया था ।

पर इन सब नगरो में से मन्सूरा ही सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ और वही स्थायी हुआ।

[1] **बिनाज़ुरी कृत फुतूहुल बुल्दान, पृ० ४४४, (लीडन)**

मन्सुरा का संस्थापक

प्रश्न होता है कि इस नगर का नाम मन्सूरा क्यों पड़ा ? कुछ लोगों ने भूल से यह समझ रखा है कि यह नगर खलीफा मन्सूर अब्बासी के समय में बसा था; इसीसे यह मन्सूरा कहलाता है। पर यह बात बिलकुल गलत है; क्योंकि यह नगर उससे पहले उमैय्या लोगो के समय में ही बन चुका था। इसी प्रकार मसऊदी ने इसका सम्बन्ध मन्सूर बिन जमहूर से बतलाया है, [1] जो उमैय्या वंश के पतन और अब्बासी के आरम्भिक समय में सिन्ध का शासक बन बैठा था । पर यह भी ठीक नहीं है। वास्तव में केवल नाम से धोखा नहीं खाना चाहिए। जैसा कि पुराने इतिहास लेखक बिलाज़ुरी (मृत्यु सन् २७९ हि०) ने बतलाया है, इसे मुहम्मद बिन क़ासिम के लड़के अम्र ने बसाया था। इस लिये यही समझना चाहिए कि जिस प्रकार शुभ समझकर महफूजा (रक्षित, या जिसकी रक्षा की गई हो) नाम रखा गया था, उसी प्रकार शुभ समझ कर मन्सूरा (जिसकी सहायता की गई हो) नाम भी रखा गया था ।

नगर बसने का समय

यह नगर हकम के समय में अम्र ने बसाया था और हकम को इराक के अमीर खालिद बिन अब्दुल्लाह कसरी ने भेजा था। खालिद सन् १०५ हि० में इराक़ का अमीर बना था और सन् १२० हि० में अपने पद से हटाया गया था। उसी खालिद का भेजा हुआ सिन्ध का दूसरा वाली हकम था। इस लिये सम्भव है कि सन् ११० हि० से उसका समय आरम्भ हुआ हो। इस आधार पर मन्सूरा के बसने का समय सन् ११० हि० से १२० हि० तक नियत होना चाहिए।

[1] **मुरूजुज्जहब; पहला खंड; पृ० ३७६ ।**

स्थान

सब से पहले इब्न खुर्दाजवा (सन् २५० हि०) मन्सूरा का सिन्ध नद के किनारे बतलाता है।[१] फिर बिलाजुरी (सन् २७९ हि०) कहता है- "वह नदी के इधर ही बसाया गया था।"[२] इब्न हौफ़ल और इस्तखरी दोनो ने लिखा है- "यह महान (सिन्ध) नदी के किनारे ऐसी जगह पर बसाया गया है कि नदी की एक शाखा ने निकलकर इसको एक टापू की तरह बना दिया है।" कुछ अरब भूगोल-लेखको ने इसका देशान्तर, पश्चिम से ९३ अंश और अक्षांश दक्षिण से २२ अंश बतलाया है।"[३] सौभाग्य से हमारे सामने वह नकशा है जो इब्न होकल ने अपने समय मे सिन्ध का बनाया था । उसे देखने से पता चलता है कि सिन्ध नदी पंजाब की ओर से चलकर अन्त में जिस जगह भारतीय महासागर मे गिरती है, उससे थोड़ी दूर पीछे स्थल की ओर एक जगह नदी की एक नई शाखा निकलती है, जो तुरन्त ही फिर घूमकर उसी नदी मे मिल जाती है और इस प्रकार उस शाखा के घूमने से बीच मे थोड़ी सी जमीन टापू के रूप मे बन गई है। उसी टापू पर यह नगर बसा हुआ था जो चारो ओर पानी से घिरा होने के कारण अचानक चढ़ाई करने वालो से रक्षित था । यह उसी तरह की जगह है, जैसी मैसूर में कावेरी नदी के घूम जाने से निकल आई है और जिसपर वहाँ का सेरिंगापटम नाम का नगर बसा हुआ है। इसी प्रकार का एक दूसरा स्थान मदरास प्रान्त के त्रिचनापल्ली में भी है। पुराने समय की युद्ध कला के विचार से इस प्रकार के स्थान बहुत रक्षित समझे जाते थे ।

[१] **इब्न खुर्दाज़वा कृत अल्मसालिक वल् ममाल्कि; पृ० १७४**

[२] **बिलाजुरी कृत फुतुहुल् बुल्दान; पृ० ४४४ (लीडन)**

[३] **मुअजमुल् बुल्दान (याकूत कृत) मे "मन्सूरा" शब्द ।**

अबुलफजल ने आईन अकबरी में सारी कठिनाइयाँ दूर कर दी हैं। उसने बतलाया है कि सिन्ध के प्रसिद्ध नगर मक्कर का पुराना नाम मन्सूरा था।[१] और सच बात यह है

कि पुराने मन्सूरे के सम्बन्ध में जो भौगोलिक बातें कही जाती हैं, वे सब मक्कर पर बिलकुल ठीक घटती हैं। अबुलफजल कहता है- "यहाँ आकर छों नदियाँ मिलकर एक हो जाती हैं और दो भागों में बँटकर इस नगर के नीचे से होकर बहती हैं। एक भाग दक्खिन होकर और दूसरा भाग उत्तर होकर जाता है।" भारतीय इतिहासो में मक्कर का नाम बहुत प्रसिद्ध है और अब भी सब लोग उसे जानते हैं।

राजधानी मन्सुरा

मन्सूरा जिस स्थान पर बसा था, उसे देखते हुए वह रक्षित भी था और साथ ही नदी के किनारे और समुद्र के पास था। इस विचार से यह नगर इराक़ और अरब से आने जाने के लिये भी बहुत अच्छा था और समय पड़ने पर यहाँ से निकल जाने के लिये बहुत मौके का था। इस लिये यह बहुत जल्दी सिन्ध में अरबों की राजधानी बन गया। हिजरी तीसरी शताब्दी में हमें इसका नाम राजधानी के रूप में मिलता है। बिलाज़ुरी (मृत्यु सन् २७९ हि०) मन्सूरा के सम्बन्ध में कहता है- "यह वही नगर है जहाँ आजकल हाकिम लोग जाकर ठहरते हैं।"[२] इसके बाद प्रायः सभी अरब यात्री इसका नाम इसी रूप में लेते हैं; और अन्त में वह एक कुरैशी अरब रियासत की राजधानी बन जाता है।

[१] **आईन अकबरी; दूसरा खंड; पृ० १६० (नवलकिशोर);**

[२] **बिलाज़ुरी कृत फुतूहुल् बुल्दान; पृ० ४४४ ।**

अब्बासी खिलाफ़त के समय में सिन्ध

खलीफा मामूँ रशीद (सन् २१८ हि०) के समय तक सिन्ध प्रान्त का बरादाद के केन्द्र से सम्बन्ध था। पर उसके अन्तिम समय में ही वहाँ के अरब अमीर लोग स्वतंत्रता का स्वप्न देखने लगे थे। सामा वर्ग के फजल चिन माहान नाम के एक दास ने सन्दान नाम का नगर जीतकर सीधे खलीका मामूँ से अपने अमीर होने का प्रमाण पत्र मँगवा लिया

था। उसने वहाँ एक जामे मसजिद भी बनवाई थी, जिसमें नमाज पढी जाती थी ओर खलीफा के नाम का खुतबा पढ़ा जाता था। उसके बाद उसका भाई मुहम्मद बिन फजल बिन माहान वहाँ का हाकिम हुआ। यह समय मोतसिम बिल्लाह (सन् २२७ हि०) का था। इसने सत्तर जहाजो का एक बड़ा बेड़ा लेकर मीदियों पर चढ़ाई की। जिस समय वह चढ़ाई पर गया हुआ था, उस समय उसके उपस्थित न रहने पर उसके भाई माहान ने रियासत पर अधिकार कर लिया ; और शायद इसी आपस के लड़ाई झगड़े में वह रियासत मुसलमानों के हाथ से निकल गई।[१] मोतसिम बिल्लाइ के समय मे कन्दाबील में मुहम्मद बिन खलील ने अपने स्वतन्त्र होने की घोषणा कर दी थी; पर मोतसिम के कर्मचारी इमरान बरमकी ने, जो सिन्ध का वाली था, वहाँ के सरदारों को पकड़कर कसदार (कजदार) भेज दिया ।[२]

[१] **बिलाजुरी ; पृ० ४४६ ।**

[२] **उक्तग्रन्थ; पृ० ४४५ ।**

इमरान बरमकी के ही समय में अरबो के दो प्रसिद्ध कबीलों में आपस के लड़ाई झगड़े होने लगे थे। इनमे से एक कबीला यमनी (कहतानी) और दूसरा हिजाजी (नजारी) था। इन्हीं कबीलों की आपस की लड़ाई ने उमैय्या वर्ग के लोगों का अन्त कर दिया था। उस समय हिजाजियों का प्रधान और नेता एक कुरैशी सरदार था, जिसका नाम उमर बिन अब्दुल अजीज हबारी था। उसने अवसर पाकर इमरान को मार डाला ।[१]

सिन्ध का हबारी कुरैशी वंश

कुरैश के असद नाम के वंश में इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद के समय में हबार बिन असवद नाम का एक आदमी था, जो इस्लाम धर्म और उसके पैग़म्बर का बड़ा भारी शत्रु था। अन्त में जब सन् ८ हि० में मक्का जीता गया, उस समय वह मुसलमान हुआ था, उसीकी सन्तान में से हकम बिन अवाना नाम का एक आदमी था जो सिन्ध के वात्ती

कलबी के साथ सिन्ध पहुँचा था। उसीका पोता उमर बिन अब्दुल अजीज हबारी था।[२] इसका वंश-वृक्ष इस प्रकार है - असवद, उसका लड़का हबार, उसका लड़का अन्दुर रहमान, उसका लड़का जुबैर, उसका लड़का मन्जर, उसका लड़का अब्दुल अजीज, उसका लड़का उमर । उम्बियों और अब्बासियों दोनो के शासनकाल में इस वंश के लोग साम्राज्य का कारबार करते थे।[३] यह हिजाजियों का सरदार बन गया और इसने इमरान को मार डाला। अवश्य ही इसका परिणाम यह हुआ होगा कि उमर बिन अब्दुल अजीज हबारो को सिन्ध के हिजाजी अरबों का राज्य मिल गया होगा ।

सन् २४० हि० में जब खलीफ़ा मुतवक्किल के समय में सिन्ध के वाली हारूँ बिन खालिद की मृत्यु हुई, तब उमर बिन अन्दुल अजीज ने खलीफा के दरबार में एक निवेदनपत्र भेजकर यह प्रार्थना की कि सिन्ध प्रदेश मुझे सौप दिया जाय। खलीफा ने उसकी यह प्रार्थना मान ली। याकूबी (मृत्यु मन् २७८ हि०), जिसने अपनी पुस्तक सन् २५९ ई० में बनाई थी, अपने इतिहास में लिखता है- "सिन्ध के बाली हारूँ बिन खालिद की सन् २४० हि० में मृत्यु हुई । और उमर बिन 'अब्दुल अजीज सामी ने, जिसका सम्यन्ध सामा बिन लोई से था और जिसका सिन्ध पर अधिकार हो चुका था, लिखा था कि वह देश का बहुत अच्छा प्रबन्ध कर रहा है। इस पर मुतः फिकल ने उसकी प्रार्थना मान ली; और जब तक मुतवकिल खलीफा रहा, तब तक वह बराबर सिन्ध का शासक बना रहा।"[१]

[१] **उक्त ग्रन्थ; पृ० ४४६ ।**

[२] **उक्त-प्रन्थ और पृष्ठ ।**

[३] **इब्न खल्दून, दूसरा खंड; पृ० ३२७ ।**

याकूबी ने उमर बिन अब्दुल अजीज को सामा चिन लोई के वंश का बतलाया है। पर उसका यह कहना ठीक नहीं है। उमर बिन अब्दुल अजीज वास्तव मे द्वार बिन असवद की सन्तानों में से था, जो काब बिन लोई के वंश में का था (इब्न खल्वून; दूसरा खंड; पृ० ३२७ मित्र)। शायद याकूबी को मुलतान के अमीरों का धोखा हुआ था जो सामा वंश के थे।

उमर बिन अब्दुल अजीज हबारी की अमीरी के बाद भी सिन्ध का अब्बासियो के साथ सम्बन्ध बना रहा। मोतमिद के समय (सन् २५६-२७९ हि०) मे भी बग़दाद के राजकीय प्रबन्धो मे सिन्ध का नाम दिखाई पड़ता है; क्योकि उस समय भी खुरासान के सफ्फारी वंश की स्थापना करनेवाले याकूत्र बिन लैस को सन् २५७ हि० मे तुर्किस्तान, सजिस्तान और किरमान के साथ सिन्ध का प्रान्त भी सौंपा गया था ।[२] और सन् २६१ हि० मे मोतमिद ने अपने साहसी और योग्य भाई मवफफिक को दूसरे सभी पूर्वी देशों के साथ सिन्ध का प्रदेश भी प्रदान किया था। उसी समय उधर फारस की खाड़ी के अरब और इराक़वाले तटों पर करमतियों का विद्रोह होने लगा था; और उधर पश्चिम में इस्माइली फातिमियों का आन्दोलन आरम्भ हुआ था, जो अन्त में बढ़ता बढ़ता मिस्र तक छा गया था ।

[१] **तारीखे याकूबी; दूसरा खड; पृ० ५६६ (लीडन)**

[२] **तारीखे इब्न खल्दून; तीसरा खंड; पृ० ३४३ (मिस्र)**

सम्भवतः यही वह उपयुक्त समय था, जब बग़दाद के साथ का सिन्ध का यह नाममात्र का सम्बन्ध भी टूट गया था। बिलाजुरी, जो २७९ हि० में मरा है, लिखता है- "कन्दा वंश का स्वतन्त्र किया हुआ अबुस् सम्मा नाम का एक दास हिजरी तीसरी शताब्दी के आरम्भ में उमर बिन हफ्स बिन हजारमर्द नाम के एक अब्बासी वाली के साथ सिन्ध गया था। उसीका लड़का सम्मा आजकल सिन्ध में जबरदस्ती स्वतन्त्र बन बैठा है।"[१]

पर जान पड़ता है कि उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ हबारी की सन्तान फिर भी चुपचाप होकर नहीं बैठी थी। स्वयं उमर बिन अब्दुल अजीज हबारी सिन्ध के बनिया या बानिया नाम के नगर में रहता था।[२] पर उसकी सन्तान ने सिन्ध के नीचे के या दक्षिणी प्रान्त पर स्थायी रूप से अधिकार करके मन्सुरा को अपनी राजधानी बना लिया । सन् २७० हि० में उमर बिन अब्दुल अजीज हबारी का लड़का अब्दुल्लाह मन्सूरा का शासक था। उसके समय की एक घटना यह है कि अलरा (सिन्ध का अलोर) के हिन्दू राजा ने उसको लिखा था कि

तुम मेरे पास एक ऐसा मुसलमान विद्वान् भेजो, जो मुझे इस्लाम धर्म की सब बातें बतला सके।[३] जब सन् ३०३ हि० में मसऊदी आया था, तब उसने अब्दुल्लाह के लडके उमर को भन्सूग का शासन करते हुए देखा था; और साथ ही बहुत से अरब सरदार भी उसे वहाँ मिले थे। उसे सैयद और अली के वंश के लोग भी वहाँ दिखाई दिए थे। उसके अनुसार वहाँ के उस समय के बादशाद का नाम उमर बिन अब्दुल्लाह, मन्त्री का नाम रियाह और काजी का नाम आल अभी शवारिब था । मसऊदी ने मूल में जो कुछ लिखा है उसका मतलब यह है[१] -

[१] **बिलाज़री ; पृ० ४४५ ।**

[२] **इब्न हौकल कृत ज़िक्रुस् सिन्ध ।**

[३] **बुज़र्ग बिन शहरयार कृत अजायबुलू हिन्दः पृ० ३. (जीवन)**

"जिस समय में मन्सूरा पहुँचा था, उस समय वहाँ अबुल् मन्जर उमर बिन अब्दुल्लाह बादशाह था। वहीं उसके मन्त्री रियाइ और उसके दोनों बेटों, मुहम्मद और अली को देखा। एक और अरब सरदार को भी देखा, जो वहाँ के बादशाहों में से एक बादशाह था और जिसका नाम हम्जा था ।[२] हजरत अली बिन प्रची तालिबकी के वंश के भी बहुत से लोग वहाँ दिखाई दिए, जो उमर बिन अली और मुहम्मद बिन अली के वंश के थे। मन्सूर के बादशाहों और वहाँ के काजी आल अबी शबारिब में आपसदारी का सम्बन्ध था । मन्सूरा के ये बादशाह हबार बिन असबद की सन्तान हैं, जो बनू उमर अब्दुल अजीज कहलाते हैं।"

[१] **मसऊदी कृत मुख्जुज्जहय; पहला खंड; पृ० ३७७ ।**

[२] **डाक्टर बर्ड ने, जिनका उद्धरण ईलियट (पहला संड, पृ० ४८८) ने दिया है, इस वाक्य का अर्थ बिलकुल गलत समझा है कि "यहाँ हम्ज़ा सैयदुश शोहदा की सन्तान थाकर बसी थी। इसी "हम्ज़ा " शब्द से ही उनको यह सन्देह हुया था। ये हम्ज़ा हज़रत मुहम्मद के चाचा हम्ज़ा नहीं थे, बल्कि यह हम्ज़ा नाम का कोई और ही अरब सरदार था। और**

फिर मसऊदो स्वय हम्ज़ा का ज़िक्र कर रहा है; उसकी सन्तान का ज़िक्र नहीं कर रहा है। हज़रते हम्ज़ा की सन्तान में कोई लडका या पुरुष नहीं था और न उनका वश ही फैला था।

मसऊदी के बाद सन ३६७ हि० में इब्न हौक़ल आया था। उस समय तक भी यही वंश शासन करता था। उस समय यद्यपि अब्बासी खलीफाओं के साथ उनका कोई राजनीतिक सम्बन्ध नहीं रह गया था, पर फिर भी धार्मिक सम्बन्ध बना हुआ था। वे लोग अब्बासी खलीफाओं के ही नाम का खुतबा पढ़ते थे। मूल लेख का आशय इस प्रकार है[१]-

"इस देश का बादशाह एक कुरैशी है, जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वह हबार बिन असवद के वंश का है। उसके बाप दादा इस देश पर शासन करते थे और अब वह शासन करता है। पर खुतबा बग़दाद के खलीफा के ही नाम का पढ़ा जाता है।"

जब सन् ३७५ हि० में मुकद्दसी आया, तब उसने भी इसी वंश को उसी प्रकार शासन करते हुए देखा था। पर इस बीच में दैलमियों के उस शीया वंश का भी बलोचिस्तान के मार्ग से सिन्ध तक प्रभाव पहुँच रहा था, जो फारस पर राज्य कर रहा था। फिर भी बग़दाद के खलीफा का नाम बचा हुआ था। बुशारी कहता है-[२]

"मन्सूरा पर एक सुलतान का राज्य है, जो कुरैश के वंश का है। पर वे लोग अब्बासी खलीफा के ही नाम का खुतबा पढ़ते हैं; और कभी अजदुद्दौला (दैलमी) का खुतबा पढ़ते थे। जिस समय हम शीराज में थे, उस समय यहाँ का एक राजदूत शीराज में अजदुद्दौला के लड़के के पास गया था।"

[१] **इब्न होकल का ज़िक्रुस् सिन्द नाम का यात्रा-विवरण ।**

[२] **बुशारी कृत अहसनुत् तकासीम; पृ० ४८५ ।**

मन्सुरा नगर की बस्ती और विस्तार

इब्न हौक़ल का कहना है कि मन्सूरा एक मील लम्बा और एक मोल चौड़ा था; और चारो ओर नदी से घिरा हुआ था। यहाँ के रहनेवाले मुसलमान थे। बुशारी कहता है- "मन्सूरा सिन्ध का केन्द्र है और देश की राजधानी है। यह दमिश्क की तरह है। मकान लकड़ी और मिट्टी के हैं। जामे मसजिद ईंट और पत्थर की बनी है और बड़ी है और उमान की जामे मसजिद की तरह लकड़ी के खम्भों पर है। वह बाजार के ठीक बीच में है। नगर में चार दरवाजे हैं। उनमे से एक का नाम बाबुल् बहर (नदी की ओर का द्वार), दूसरे का तौरान दरवाजा, तीसरे का सन्दान दरवाजा और चौथ का मुलतान दरवाजा है।"[१]

मन्सूरा राज्य का विस्तार और वैभव

इस अरब राज्य में सिन्ध के बहुत से नगर थे। बुशारी कहता है कि सिन्ध की राजधानी मन्सूरा है और इसमें देबल, अन्द्रीज, कदार, मायल, बतली आदि नगर हैं। इस्तख़री ने इस राज्य के और भी कई नगर गिनाए हैं; जैसे बानिया, सदौसान, अलोर, सोबारा और सैमूर। मसऊदी कहता है- "मन्सूरा के राज्य में जो गाँव और बस्तियाँ हैं, उनकी संख्या तीन लाख है।" इससे अनुमान हो सकता है कि मन्सूरा का राज्य बहुत बड़ा था। फिर मसऊदी कहता है- "सब जगह खेत हैं, वृक्ष हैं और बस्तियाँ मिली हुई हैं।"[२] इससे अनुमान किया जा सकता है कि यह राज्य कितना हरा भरा और बसा हुआ था ।

[१] **उक्त ग्रन्थ; पृ० ४७६ ।**

[२] **मुरुजुज्जहब ; पहला खड, पृ० ३७८ ।**

बादशाह का सैनिक बल

मसऊदी कहता है-

"मन्सूरावालो की मीदियो के साथ, जो सिन्ध की एक जाति है, बराबर लड़ाइयाँ होती रहती है। बादशाह के पास लड़ाई के ८० हाथी हैं; और नियम यह है कि एक जंगी हाथी के साथ पाँच सौ पैदल सिपाही रहते हैं। इनमें से दो हाथी बहुत ही प्रसिद्ध वीर और लड़नेवाले थे। उनमें से एक का नाम मन्सर कलस और दूसरे का हैदरा था और ये सधाए हुए थे।"[१]

इस प्रकार मसऊदी ने हमको मन्सूरा का पूरा पूरा सैनिक बल बतला दिया है। जब एक हाथी के साथ पाँच सौ आदमी रहते थे, तब अस्सी हाथियों के साथ चालिस हजार सेना होगी ।

मन्सूरा की विद्या और धर्म

इस सम्बन्ध में सबसे अच्छा हाल बुशारी ने अपने यात्रा- विवरण में लिखा है। वह कहता है-

"यहाँ के रहनेवाले योग्य और सुशील हैं। उनके यहाँ इस्लाम धर्म बहुत अच्छी दशा में है। यहाँ विद्या भी बहुत है और विद्वान भी बहुत हैं। वे लोग बहुत बुद्धिमान् और योग्य होते हैं और पुण्य तथा दान करते हैं।"[२]

[१] **उक्त ग्रन्थ; खंड और पृष्ठ ।**

[२] **मुरूजुज़्ज़हब; पहला खंड; पृ० ३७६ । अहसनुत् तकासीम; पृ० ४७६ ।**

"यहाँ की प्रजा में से जो लोग मुसलमान नही हैं, वे मूर्ति-पूजा करते हैं। मुसलमानों में वायज (उपदेशक) नही हैं। उनमें से प्रायः लोग हदीस को माननेवाले (बहाबी) हैं। मैने यहाँ काजी अबू मुहम्मद मन्सूरी को देखा, जो दाऊदी थे और अपने धर्म के इमाम थे। वे विद्यार्थियों को पढ़ाते थे। उनकी लिखी हुई पुस्तकें भी हैं, जो बहुत अच्छी हैं। बहुत बड़े बड़े नगरो में हनफी सम्प्रदाय वाले ऐसे लोग भी पाए जाते हैं जो कुरान और हदीस के धार्मिक और सामाजिक सिद्धान्तों की मीमांसा करनेवाले (धम्र्मशास्त्री या फिका के विद्वान्) हैं। पर यहां मालकी ओर हूंबली नहीं हैं और न मोतजिली ही हैं। लोग सीधे और ठीक मार्ग पर हैं। उनमें पुण्य भाव और सश्चरिबता है।"[१]

यह बहुत आश्चर्य की बात है कि उस पुराने समय में भी यहाँ हदीस के ज्ञाता और पंडित लोग हुष्पा करने थे। यहाँ दाऊदी सम्प्रदाय से दाऊदी बोहरे लोगो का अभिप्राय नहीं है, बल्कि इमाम दाऊद जाहिरी के मानने वालो से अभिप्राय है, जो एक प्रकार के वहाबी थे।

भाषा

मसऊदी कहता है- "सिन्ध में वहाँ की अपनी भाषा है, जो भारत की और भाषाओं से अलग है।" मन्सूरा के बन्दरगाह देबल के सम्बन्ध में बुशारी कहता है- "यहाँ सब व्यापारी ही व्यापारी बसते हैं। उनकी भाषा सिन्धी और अरबी है।"[२] इससे यह अनुमान हो सकता है कि यहाँ की भाषा पर अरबी का कितना गहरा प्रभाव पड़ा होगा। इसका एक बड़ा प्रमाण आज भी मिलता है। सिन्धी भाषा मे अरबी भाषा के शब्द उसी प्रकार मिले हुए हैं, जिस प्रकार उर्दू भाषा से मिले हुए हैं। और सबसे बड़ा प्रभाव यह पड़ा है कि सिन्धी की लिपि आज भी ज्यो की त्यो अरबी ही है।

[१] **ग्रहसनुत् तकासीम, पृ० ४८१ ।**

[२] **मुरूजुज्जहब, पहला खड; पृ० २८१ ।**

मन्सूरा का अन्त

इस बात का कोई ठीक ठीक पता नहीं चलता कि मन्सुरा के अरबी शासन का किस प्रकार अन्त हुआ। इसमे सन्देह नहीं कि बुशारी, के समय अर्थात् सन् ३७५ हि० तक वह राज्य अवश्य ही बना हुआ था। इसके पन्द्रह बरस बाद महमूद की चढ़ाइयाँ आरम्भ हो गई थीं। जब सन् ४१६ हि० में सुलतान महमूद ने सोमनाथ पर अपनी प्रसिद्ध चढ़ाई की थी और फिर वहाँ से वह लौटने लगा था, तब वह सिन्ध के रास्ते चला था। वह गुजरात से सिन्ध गया था; वहाँ से सिन्ध नदी के किनारे किनारे सुलतान और फिर वहाँ से राजनी गया था। इतिहास लेखकों ने यह बतलाया है कि वह इस रास्ते में मन्सूरा भी गया था।[१] पर इब्न असीर ने अपनी तारीख कामिल में इसी साल की घटनाओं के साथ साथ एक और महत्व की बात लिखी है, जो इस प्रकार है-[२]

"सुलतान ने मन्सूरा जाने का विचार किया। वहाँ का वाली इस्लाम धर्म से फिर गया था। जब उसने सुलतान के आने की खबर सुनी, तब वह नगर से निकल गया और अपने आदमियों को लेकर झाड़ियों में छिप गया। सुलतान महमूद ने उसका पीछा किया। बहुत से आदमी मारे गए और बहुत से नदी में डूबकर मर गए । कुछ थोड़े से लोग बच गए थे। सुलतान वहाँ से भाटिया होकर ग़ज़नी चला गया।"[३]

[१] जैनुल् अखबार; गुरदेज़ी; पृ० ८७ (बरलिन) ।

[२] कामिल इब्न असीर नवाँ खंड पृ० २४३ (लीडन) ।

[३] ईलियट ने इब्न असीर के आधार पर लिखा है- "सुलतान महमूद ने एक मुसलमान को मन्सूरा का बादशाह बनाया।" (पहला खंड) पर इब्न शसीर में यह वाक्य नहीं है; एल्कि वही वातें हैं, जो मैंने ऊपर दी हैं। सम्भव है कि किसी युरोपियन अनुवाद पर भरोसा करने के कारण उससे यह भूल हुई हो।

अब प्रश्न यह है कि इस्लाम धर्म से फिर जाने और विधर्मी हो जाने का क्या अर्थ है? यदि मन्सूरा के वाली के इस्लाम से फिर जाने की बात केवल इस लिये कही गई हो कि मुसलमान लोग यह समों कि महमूद का उसपर चढ़ाई करना वाजिय था, तब तो बात दूसरी है; और नहीं तो उस समय के मुहावरे का ध्यान रखते हुए इम बात का यही अर्थ होगा कि मुलतान के बादशाह की तरह मन्सूरा का बादशाह भी शायद इस्माईली करमती धर्म में चला गया हो। और नहीं तो इस चढ़ाई से ४१ बरस पहले की बुशारी की इस सम्बन्ध में पूरी पूरी गवाही मिलती है कि मन्सूरावाले केवल सुन्नी ही नहीं थे, बल्कि हदीस को पूरी तरह से माननेवाले और उसीके अनुमार चलने वाले थे। जो हो, इससे यह सिद्ध होता है कि मन्यूरा के इस हयारी शासन का सन् ४१६ हि० में सुलतान महमूद के हाथ से अन्त हुआ था। प्रसिद्ध जाँच करनेवाला इब्न खल्टून एक अवसर पर हबार बिन असवद के वंश का वर्णन करता हुआ लिखता है-

"इन्हीं इबार बिन असवद के वंश में उमर चिन अब्दुल अजीज था, जिसने खलीफा मुतवषिल की हत्या के बाद गड़बड़ी और अन्य- वस्था के आरम्भ में सिन्ध पर अधिकार कर लिया था; और उसकी सन्तान ने एक के बाद एक सिन्ध पर शासन किया। अन्त में राजनी के सुलतान महमूद के हाथो उनका अन्त हुआ। उनकी राजधानी मन्सूरा थी ।"[१]

[१] **तारीख़ इब्न खल्दून; दूसरा खड; पृ० ३२७ (मित्र) ।**

क्या मन्सूरावाले भी क़रमती इस्माइली थे?

जो बुशारी फिका (कुरान और हदीस के धार्मिक सिद्धान्तो) का बहुत बड़ा पंडित और विद्वान् था, उसने सन् ३७५ हि० मे मन्सूरा- वालो के पक्के मुसलमान और सुन्नी होने के सम्बन्ध मे बहुत अच्छी गवाही दी है, जो ऊपर दे दी गई है। उसे ध्यान में रखते हुए सन् ४१६ हि० में उनका क़रमती होना कठिन जान पड़ता है। इब्न खल्दून के वर्णन से सिद्ध है कि महमूद ने हबारी अमीर के हाथ से सिन्ध का राज्य छीन लिया था; और इब्न

असीर के वर्णन से प्रकट होता है कि जिस अमीर के हाथ से महमूद ने राज्य छीना था, उसके बारे में उसे यह पता चला था कि वह शुद्ध इस्लाम धर्म से अलग हो गया था, जिसका अर्थ यह है कि वह करमती इस्माईली हो गया था ।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, यदि मन्सूरावालो का क़रमती इस्माईली हो जाना इस लिये नहीं प्रसिद्ध किया गया था कि सुलतान महमूद ने मन्सूरा के मुसलमान राज्य पर जो चढ़ाई की थी, वह ठीक और उचित समझी जाय, तो इब्न असीर की बातो का यही अर्थ समझा जा सकता है कि सन् ३७५ हि० के बाद क़रमतियों ने हबारी सुन्नी वंश का अन्त कर दिया था। या जब सुलतान का राज्य क़रमतियों के हाथ से निकल गया, तब उन लोगो ने सिन्ध में अपना राज्य बना लिया था; और उसी करमती राज्य का सन् ४१६ हि० में सुलतान महमूद ने अन्त किया था ।

दुरूजी पत्र

ऊपर एक दुरूजी पत्र के कुछ वाक्य दिये जा चुके हैं। इस विषय मे उस पत्र का महत्त्व भी बहुत कुछ है। उस दुरूजी पत्र मे, जो शाम देश के इस्माईली दुरूजियों के धार्मिक इमाम की ओर से भेजा गया था, यह लिखा हुआ था-

"साधारणतः मुलतान और भारत के एक ईश्वर को मानने वालो के नाम और विशेषतः शेख इब्न सोमर राजा बल के नाम ।"

इस पत्र में इब्न सोमर राजा बल को भौतरवा और हौदल हेला का असली उत्तराधिकारी लिखा है। उस पत्र में इस वंश के और बहुत से बढ़े बड़े लोगों के नाम लिखे हैं, जिनमें से कुछ अरबी ओर कुछ भारतीय नाम हैं; और उनमें लला का भाव उत्पन्न करते हुए कहा गया है-

"हे प्रतिष्ठित राजा बल, 'अपने वंश को उठा। एक ईश्वर को मानने वालों को और दाऊद असगर (छोटे दाऊद) को सचे धर्म में फिर से ले आ । मसऊद ने अभी हाल में ही उसे कारागार और दामता से मुक्त किया है; और इसका कारण यह है कि तू अपना वह

कर्त्तव्य पूरा कर सके, जो तुझे उसके भानजे अब्दुल्लाह और मुलतान के सब निवासियो के विरुद्ध पूरा करने के लिये सौंपा गया है, जिसमें तकदीस और तौहीद[१] के माननेवाले मूर्खता, हठ और धर्मद्रोहवाले दल से अलग हो जायें।"[२]

इस पत्र से बहुत ही महत्व के परिणाम निकाले जा सकते हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

(१) जो सोमर लोग सिन्ध के निवासी थे और जिन्होने इसके बाद सोमरी वश चलाया था, वे इस्माईली धर्म के थे ।

(२) इनके नाम हिन्दुओं के ढंग के भी हैं और अरबों के ढंग़ड़ के भी, जिससे यह पता चलता है कि इस वंश में अरववालो और भारतवासियो का मेल था ।

[१] इस्माईलिगों ने बार बार "तौहीद और तकदीस" पर इस लिये ज़ोर दिया है कि वे ईश्वर में गुणों का मानना, जैसा कि साधारण सुन्नी लोग मानते है, अनुचित यौर कुफ समझते थे। वे ईश्वर में गुणों का अभाव मानते थे (उसे निगुण समझते थे), जिसका नाम उनके यहाँ “तौहीद और तकदीस" था। मोतजिला लोगों का भी यही विश्वास था; इसी लिये वे अपने आपको "अहले अदल व तौहीद" (यदल और तौहीदवाला) कहते थे ।

[२] ईलियट; पहला खण्ड; पृ० ४६१ ।

(३) मुलतान के बादशाह अबुल फतह दाऊद आदि और सिन्ध के ये सोमरी लोग एक ही धर्म को माननेवाले थे ।

(४) सोमर सम्भवतः सिन्ध के इस्माईलियो का शेख और इमाम था; क्योकि इस्माईली लोग अपने धार्मिक नेता या सरदार के लिये "शेख" शब्द का विशेष रूप से व्यवहार करते थे।

(५) जान पड़ता है कि अबुलफतह दाऊद के बाद उसका कोई लड़का था, जो छोटे दाऊद के नाम से प्रसिद्ध था। जब उसने इस्माईली धर्म त्याग दिया था, तब सुलतान मसऊद ने उसे क़ैद से छोड़ दिया था ।

(६) अब्दुल्लाह अबुलफतह दाऊद अकबर का नाती और छोटे दाऊद का भाञ्जा था, जिसे सुलतान के लोग अपना अमीर बनाना चाहते थे ।

(७) इस पत्र का अभिप्राय यह है कि इन सोमर अपने कबीले या दल के लोगो को सुलतान मसऊद और अब्दुल्लाह और मुलतान के लोगो के विरुद्ध लड़ने के लिये उभाड़े, और क़रमती इस्माईलियों का जो बल नष्ट हो चुका था, वह फिर से प्राप्त करे। इस लिये मुलतान मे बार बार इस बात का प्रयत्न होता रहा, पर उस प्रयत्न में कभी सफलता नहीं हुई ।

(८) इस पत्र से सबसे अधिक महत्त्व की बात यह मालूम होती है कि सोमर कोई बहुत बलवान् आदमी था। जब सोमर का लड़का सुलतान मसऊद के समय में था, तब यह कहना चाहिए, कि सोमर सुलतान महमूद (मृत्यु सन् ४२१ हि०) के समय मे हुआ था ।

(९) यही वे सोमरी लोग हैं जो इस पत्र की तिथि के बीस बरस बाद सुलतान अब्दुर रशीद बिन महमूद गजनवी (मृत्यु सन् ४४४ हि०) के दुर्बल शासन के समय मे राजनवियां की जगह सिन्ध के मालिक हो गए थे।

हबारी वंश की एक स्थायी स्मृति

हबारी बादशाहों की ऊपरी स्मृति तो सदा के लिये नष्ट हो गई थी, पर उनकी एक अध्यात्मिक स्मृति सदा के लिये बची रह गई ; और वह स्मृति उनका वंश है जो राजनबियों की छाया में यहाँ से मुलतान जाकर बस गया। शेखुल इम्लाम जकरिया मुलतानी सन् ५७८ हि० में पैदा हुए थे ओर फरिश्ता के अनुसार सन् ६६६ हि० में अखबारुल् 'अखयार के अनुसार सन् ६६१ हि० में उनकी मृत्यु हुई थी। दिल्ली के शेख अब्दुल हक ने आपको असदी

लिखा है।[१] और ऊपर बतलाया जा चुका है कि यह असदी हजरत हबार का कबीला था। चीजापुर के शेख ऐनुद्दीन ने उनके वंश का सम्बन्ध इज़्ररत हुवार बिन असवद बिन मुत्तलिय चिन असद् तक पहुंचाया है।[२] पीरजादा मुहम्मद हुसैन साहब ने इब्न बतूता के अपने उर्दू अनुवाद (दूसरा खंड; पृ०८) मे शेख के आजकल के वंश के संग्रह में से खुलासतुल् आरिफीन नाम की एक पुरानी पुस्तक में से अरबी का एक उद्धरण दिया है, जो बुखारा के सैयद जलाल के मलफूजात (पत्रो) में से उद्धत किया गया था। उसमें जो वंश-वृक्ष दिया है, उससे भी यही बात सिद्ध होती है। इस प्रकार शेखुल् इस्लाम के वंश के भारत आने की दो तिथियाँ मिलती हैं। एक तो यह कि वह हिजरी पहली शताब्दी मे अरब विजेताओ के साथ भारत मे आया था, जैसा कि इब्न बतूता मे लिखा है। वह मानो हिजरी पाँचवीं शताब्दी मे अरब से और दूसरी यह कि आया था, ये दोनो तिथियाँ इस प्रकार मिल जाती हैं कि सिन्ध में तो इस वंश का प्रवे पहली तिथि के अनुसार अर्थात् हिजरी दूसरी शताब्दी में हुआ; और मुलतान में मन्सूरा का अन्त हो जाने पर हिजरी पाँचवीं शताब्दी ये लोग ग़ज़नवी राज्य की छाया में आकर बसे । हाँ, तारीख फ़रिश- की यह बात ठीक न होगी कि वे लोग ख्वारिजम या खीवा होकर यक आए थे। लेकिन इससे अधिक महत्व का वर्णन तारीख ताहिरी लेखक का है, जिसने विस्तार के साथ यह बतलाया है कि शेख बहाउद्दी सिन्धी थे और सकोर (वर्त्तमान सक्खर) के परगने के रहनेवाले जिसे मुहम्मद तूर ने बसाया था ।[१]

[१] **अखबारुल् अखयार, पृ० २६ (हाशिमी प्रेस मेरठ का छपा हुआा)**

[२] **फ़रिस्ता ; दूसरा खंड; पृ० ४०४ (नवलकिशोर) ।**

सिन्ध ग़ज़नवियों, गोरियों और दिल्ली के सुलतानों के हाथ में

सिन्ध का सन् ४४४ हि० तक गजनवियों के हाथ में रहना इस बात से सिद्ध होता है कि इस बात का प्रभाण मिलता है कि सुलतान अब्दुर रशीद गजनवी के समय (सन् ४४४ हि०) तक सिन्ध राजकर आता था। इसके बाद ही ग़जनवी राज्य में उलट फेर हो लगा, यद्यपि नाम मात्र के लिये ग़जनवी लोग अन्त (सन् ५७८ हि०- तक पंजाब और सिन्ध के मालिक कहलाते रहे। सन् ५७८ हि० ग़ज्ज्रनवियों की जगह गोरियो का अधिकार होने लग गया; और शहाबुद्दीन के एक सेनापति नासिरुद्दीन कबाचा ने सिन्ध पर और अल्तम्श ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया; और फिर अन्त अल्तम्श ने क़बाचा को हराकर सिन्ध से निकाल दिया। उस समय से नाम मात्र के लिये दिल्ली के साथ उसका सम्बन्ध रहा, पर वास्तव में वह स्वतन्त्र ही रहा। मुहम्मदशाह तुग़लक के समय (सन् ७५२ हि०) में सिन्ध वहीं के एक शासक वंश के हाथ से निकलकर वहीं के दूसरे शासक के हाथ में चला गया। सन ७६२ हि० मे सुलतान फीरोज शाह ने संधि करके उसपर अधिकार कर लिया; और अन्त में उन्हीं स्थानीय शासकों के हाथ में सौप दिया, जिनके हाथ में वह सन् ९२७ हि० तक रहा। उनके हाथ से जीतकर 'अरगून नाम के एक तातारी अमीर ने ले लिया; 'और फिर सन् १००० हि० के अन्त में वह अकबर के अधिकार में आ गया ।

[१] **तारीख़ ताहिरी; इलियट; पृ० २५६ ।**

सोमरी

ऊपर हमने जो पूरा इतिहास दिया है, उससे हमारा विशेष सम्बन्ध नहीं है। हमें तो केवल दो स्वतन्त्र कयीलों के मूल पर विचार करना है, जिनमे से एक सोमरी और दूसरे सम्मा कहलाते हैं। राज- नवियो के दुर्बल हो जाने के समय जिस स्थानीय कबीले ने सिन्ध पर अधिकार कर लिया था, वह सोमरी कहलाता है। फिर मुहम्मद शाह तुग़लक के समय

(सन् ७५२ हि०) में जिस दूसरे कबीले के हाथ में वहाँ का शासन गया और जिसके हाथ में वह सन् ९२७ हि० (१५२१ ई०) तक रहा, वह सम्मा कहलाता है। इन दोनों कबीलो के मूल के विषय मे इतिहास-लेखको मे बहुत मतभेद है; और विशेषतः सोमरी वंश की जातीयता के विषय में बहुत कुछ झगड़ा है; और इसी प्रकार उसके धर्म के सम्बन्ध में भी बहुत सी बातें कही जाती है।

ऊपर जिस दुरूजी पत्र का वर्णन हुआ है उससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि सन् ४२२ हि० (सुलतान मसऊद के समय) मे वहाँ शेख इब्न सोमर राजा बल था; और वह इस्माईली धर्म का था। उसको दुरूजियो के इमाम ने मुलतान और सिन्ध के इस्माईलियों का राज्य फिर से स्थापित करने के लिये बहुत कुछ भड़काया था; और ऐसा न कर सकने के लिये लज्जित किया था। इस लिये आश्चर्य नही कि ग़जनवियों का बल टूटने पर सुलतान अब्दुर रशीद (सन् ४४४ हि०) के समय सोमरियों ने सिन्ध में अपना राज्य जमा लिया हो ।

सोमरियों का यह राज्य सन् ४४४ हि० से सन् ७३४ हि० के कई बरस बाद तक किसी न किसी प्रकार बना रहा। इस सम्बन्ध में इब्न बतूता की साक्षी सबसे अधिक महत्व की है। वह सन् ७३४ हि० में सिन्ध के रास्ते उस समय भारत आया था, जिस समय सोमरी जाति दिल्ली के सुलतानों की अधीनता में शासन करती थी। इब्न बतूता ने उन्हें देखा था। वह लिखता है-

(१) "इसके बाद हम जिनानी' पहुँचे जो सिन्ध नदी के किनारे एक सुन्दर और बड़ा नगर है और जिसमें सुन्दर बाजार हैं। यहाँ के निवासी वे लोग हैं, जिन्हें सामरा कहते हैं। ये लोग और इनफे पुरखे उस समय यहाँ आकर बसे थे, जब हज्जाज के समय में सिन्ध जीता गया था, जैसा कि इतिहास लेखकों ने लिखा है। ये लोग जो सामरा कहलाते हैं, किसी के साथ भोजन नहीं करते और न भोजन करने के समय उन्हे कोई देख सकता है। न तो वे और लोगों के साथ और न और लोग उनके साथ ब्याह शादी करते हैं। इस समय उन लोगों का जो अमीर है, उसका नाम वनार है, जिसका जिक्र हम आगे करेंगे।"

आगे चलकर वह सेविस्तान (सेहवान) का वर्णन करता हुआ कहता है (सेवान अब कराची के जिले में है) -

[१] **इस नगर का कुछ पता नहीं चलता। जान पढता है कि यह नदी में समा गया। अवुलफ़ज़ल ने भी इसका जिक्र नहीं किया है.।**

(२) "इस नगर में सामरी अमीर व नार, जिसका नाम ऊपर आ चुका है, और अमीर कैसर रूमी रहते हैं और ये दोनों सुलतान (दिल्ली) के अधीनता में हैं। इन दोनों के साथ अठारह सौ सवार थे। यहाँ एक हिन्दू रहता था, जिसका नाम रतन (या रत्न) था और जो हिसाब किताब बहुत अच्छा जानता था। वह कुछ अमीरो के साथ सुलतान के दरबार में गया। सुलतान ने उसको पसन्द किया और उसको सिन्ध के राजा की उपाधि दी; और राजा के योग्य माही मरातिब देकर उसे सेविस्तान भेजा और वह स्थान उसको जागीर में दे दिया। जब वह वहाँ पहुँचा, तब वनार और कैसर को यह देखकर बहुत ही बुरा लगा कि एक काफ़िर का इमसे बढ़कर आदर हो रहा है उन दोनों ने आपस में सलाह करके उसे मार डाला। ... और खजाना लूट लिया । फिर सबने मिलकर ओनार को मलिक फ़ीरोज की उपाधि देकर अपना बादशाह चना लिया। फिर वनार यह समझ कर डरा कि मैं इस समय अपने कबीले से दूर हैं; इस लिये वह अपने कबीले में चला गया। अमीर बना लिया। लश्करवालों ने कैसरी को जब मुलतान के नायव के पास यह खबर पहुँची, तब उसने उसे दण्ड देने के लिये सेना भेजी और उसे कड़ा दण्ड दिया।[१] (यह वर्णन कुछ संक्षिप्त करके लिया गया है।)

इब्न बतूता उसी समय पहुँचा था। वह एक मदरसे में ठहा था। लाशों की बदबू से उसे नीद नहीं आती थी। इन दोनो उद्धरणो से कई बातें प्रमाणित होती हैं, जो इस प्रकार हैं-

(१) सामरी लोग कहते थे कि हमारे पुरखा हज्जाज बिन यूसुफ सकफी के साथ आकर यहाँ बसे थे ।

[१] **इब्न बतूता का यात्रा विवरण; दूसरा खंड; पृ० ४ और ६, (मिस्त्र) ।**

(२) धर्म के विचार से वे हिन्दू नहीं थे और हिन्दुओं के अधीन रहना पसन्द नहीं करते थे। साथ ही उनमें कुछ बातें ऐसी भी पाई जाती थीं, जो उन्हें साधारण मुसलमानों से अलग करती थीं ।

(३) उस समय सिन्ध पर दिल्ली के सुलतान का इस प्रकारका अधिकार था कि सुलतान की ओर से वहाँ एक अमीर (या रेजिडेंट) सोमरियों के साथ रहता था ।

(४) राजकीय शासन और व्यवस्था में सिन्ध मुलतान के अधीन होकर दिल्ली के अधीन था ।

सोमरा का धर्म

ऊपर के दुरूजवाले पत्र से सोमरा का इस्माईली होना तो सिद्ध ही हो चुका है, पर इसके सिवा इब्न बतूता से कुछ और बातों का भी पता चलता है। इब्न बतूता के इस वर्णन से प्रकट होता है कि सोमरी लोग अरब विजेताओं के साथ भारत में आकर बसे थे। स्पष्ट है कि ये लोग राजपूत नहीं हो सकते; पर इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि खाने पीने और ब्याह शादी के सम्बन्ध में इन लोगों में कुछ ऐसी रस्में भी थीं जो मुसलमानों में नहीं होतीं। लेकिन इतना होने पर भी वे लोग अपने आपको हिन्दू या क़ाफिर नहीं समझते थे, बल्कि मुवहहिद (एक ईश्वर को माननेवाले) और मुसलमान ही समझते थे और मुसलमानी उपाधि मलिक फीरोज ग्रहण करते थे । वे क़ाफिर के अधीन रहने में अपनी अप्रतिष्ठा समझते थे; इस लिये वे कभी हिन्दू नहीं थे । ऐसा संकर धर्म क़रमतियों और इस्माईलियों का ही था जो इस्लाम के साथ हर जगह कुछ स्थानीय रीतियाँ और विश्वास आदि मिला लेते थे। उन्होंने भारत में हजरत अली को बिष्णु का अवतार बनाया था । इसी प्रकार की और बातें भी वे अपने धर्म में मिला लेते थे । इससे उन्हें हर देश में अपने धर्म का प्रचार

करने में सुभीता होता था। इतिहासों में इस बात का प्रमाण मिलता है कि पुराने समय में इस्माईलियों के किले अल् मूत से उनके धर्म का प्रचार करनेवाले लोग सिन्ध में आए थे।[१] अपने धार्मिक विश्वासों को छिपाने की प्रथा भी उन्हीं लोगों में थी। वे अपने नाम भी हिन्दुओं के ढंग के रख लेते थे। आज कल भी बम्वई की खोजा जाति में इन बातों के उदाहरण मिल सकते हैं।

मुलतान के शेखुल् इस्लाम जकरिया के शिष्य के शिष्य मस्त्रदूम जहानियाँ सैयद जलालुद्दीन बुखारी (मन् ७०७-८०० हि०) के वर्णनो में इस सम्बन्ध में एक विलक्षण घटना मिलती है। उनका यह जिक्र आगे किसी अवसर पर आवेगा। ये सिन्ध के ऊच नगर में रहते थे और वहाँ सर्वप्रिय और सर्वमान्य थे। बार ऊच का वाली सोमरा इनकी सेवा में आया। लिखा है कि एक दरवेशों या फकीरों की भीड़ लगी हुई थी। सोमरा ने उनमें से किसी एक को बिना हजरत की आज्ञा के मसजिद से बाहर निकाल दिया। उस समय मखदूम की जवान से निकला - "सोमरा मगर दीवाना शुदई।" अर्थात् सोमरा शायद तू पागल हो गया। उसी समय सोमरा पागल हो गया। नगर में इस बात की धूम मच गई। अन्त में उसकी माँ ने आकर बहुत प्रार्थना की; तब जाकर उसका अपराध क्षमा हुआ और वह होश में आया। मसजिद में आकर उसने मखदूम के पाँव चूमे, उनका शिष्य हुआ और वह ईश्वर के दरवार मे मान्य हुआ ।[२] क्या इस घटना से यह समझा जाय कि वह इस्माईली धर्म का त्याग करके सुन्नी हो गया ?

[१] **डाक्टर आर्नल्ड कृत प्रीचिंग आफ़ इस्लाम (Preaching of Islam) पृ० २६३ ।**

[२] **फ़रिश्ता ; दूसरा खंड १० ४१६ (नवलकिशोर) ।**

इस्माईली धर्म के मिस्रवाले फातिमी राज्य का अन्त सन् ५६७ हि० में सुलतान सलाहुद्दीन के हाथों से हो गया। इसके बाद हसन बिन सब्बाइ वाला इस्माईली नजारी राज्य, जो किला अल् मूत में था, बना रहा। सन् ४८३ हि० (१०९१ ई०) में उसका आरम्भ

हुआ था और सन् ६५४ हि० (१२५६ ई०) में वह हलाकू की तलवार से नष्ट हुआ। अब पाठक समझ सकते हैं कि सिन्ध के इस्माईली दल पर उसके मूल केन्द्र के नाश का क्या प्रभाव पड़ा होगा। इस लिये बहुत सम्भव है कि ये सोमरी लोग या उनमें से कुछ लोग सैयद जलाल बुस्तारी के हाथ से सुन्नी हो गए हों।

सोमरा की जातीयता

सोमरा लोगों की जातीयता के प्रश्न का निपटारा करने के लिये हमें सबसे पहले पुराने इतिहास-लेखकों के वर्णन देखने चाहिएँ । इब्न बतूता का सबसे पहला वर्णन आप सुन ही चुके हैं कि ये लोग कहते थे कि हमारे पूर्वज उस समय सिन्ध में आकर बसे थे, जिस समय हज्जाज बिन यूसुफ ने सिन्ध जीता था। इसके बाद तारीख मासूमी के लेखक मीर मुहम्मद मासूम का वर्णन है। वह अपने इतिहास के दूसरे प्रकरण में लिखता है-

"सुलतान महमूद ने मुलतान और सिन्ध जीत लिया। सुलतान महमूद के लड़के अब्दुर रशीद के समय (सन् ४४१-४४ हि०) में जब उसके परम सुख और विलासपूर्वक रहने के कारण उसका राज्य दुर्बल हो गया, तब उन लोगों ने अपने कन्धे पर से ग़जनवियों का जूआ उतार दिया और सोमरा के कबीले ने थरी नाम के स्थान पर इकट्ठे होकर सोमरा नाम के एक आदमी को सिंहासन पर बैठाया। वहीं आस पास में सैयद नाम का एक बड़ा और मजबूत जमींदार था। सोमरा ने उसके साथ सम्बन्ध करके उसकी लड़की के साथ अपना व्याह कर लिया। उससे एक लड़का हुआ, जिसका नाम भौगर रखा । पिता के मरने के बाद वही बादशाह हु'प्रा ।"[१]

इससे आगे मीर मासूम ने उसके लड़कों पोतों आदि के वर्णन दिए हैं, जिनमें से कुछ के नाम अरबी हैं; जैसे खकीफ और उमर आदि; और कुछ के नाम भारती हैं, जैसे दूदा ।

तारीख ताहिरी के लेखक ने अधिकतर कहानियाँ आदि लिखी है जिसका आरम्भ उसने उमर सोमरा और एक हिन्दू महिला के प्रेम से किया है। इसी प्रकरण में वह कहता

है- "यह कबीला हिन्दू था और हिन्दू धर्म को मानता था। इसने सन् ७०० हि० से सन् ८४३ हि० तक राज्य किया। अलोर के पास उनका स्थान था; और उनकी राजधानी का नाम मुहम्मद तूर था।"[२]

बेगलार नामा में केवल इतना लिखा है कि जब सिन्ध को मुसलमानों ने जीत लिया, तब अरब के तमीम नाम के कबीले ने वहाँ राज्य किया। थोड़े दिनों बाद सोमरा लोगों ने उसपर अधिकार कर लिया। पाँच सौ बरस तक उनका अधिकार बना रहा। उनकी राजधानी का नाम महातम तूर था ।

यह एक बहुत ही विलक्षण बात है कि जिस प्रकार इनके राजाओ के नाम अरबी और भारतीय दोनो मिले हुए हैं, उसी प्रकार इनकी राजधानी का नाम भी कभी मुहम्मद तूर और कभी महातम तूर है। कहा जाता है कि इसमे जो महातम (महात्मा) शब्द है, वह मुहम्मद का ही पाठान्तर है। सम्भव है कि ऐसा ही हो। यह स्थान देरग के परगने मे, जो आजकल के चाचगम और बादबन परगने की जगह पर था, जौ-परकर और दंगा बाज़ार के बीच मे है। तोहफ़तुल् किराम के लेखक ने मुन्तखबुत्तवारीख (बदायूनी की नहीं) से, जो मुहम्मद यूसुफ की लिखी हुई है, यह उद्धरण दिया है-

[१] **तारीख मासूमी, ईलियट; पहला खंड, पृ० २१५ ।**

[२] **तारीख़ ताहिरी; इलियट पहला खंड; पृ० २६० और १८४ ।**

"जब सुलतान महमूद के लड़के सुलतान अब्दुर रशीद का राज्य हुआ, तब सिन्ध के लागों ने देखा कि वह दुर्बल है। सन् ४४५ हि० (१०५३ ई०) में सोमरा नामक कबीले के लोगो ने थरी मे इकट्ठ होकर सोमरा नाम के एक आदमी को बादशाह बनाया। उसे साद नाम के एक जमींदार की लड़की के गर्भ से भंगर नाम का एक लड़का हुआ। पाँच बरस राज्य करने के बाद सन् ४६१ हि० में उस भंगर की मृत्यु हुई।"" (संक्षिप्त) ।[१]

स्वयं तोहफतुल् किराए का लेखक लिखता है-

"सोमरा जाति सामरा के अरबों से निकली है, जो सिन्ध में हिजरी दूसरी शताब्दी में तमीम नाम के कबीले के साथ आई थी। तमीम लोग अब्बासी के समय से सिन्ध के शासक या गवर्नर नियत हुए थे।"

आगे चलकर वह कहता है-

"सिन्ध में दल्लूराय राजा था। उसने अपने भाई पर, जिसका नाम छोटा इमरान था, अत्याचार किया। वह बगदाद के खलीफा के पास गया। खलीफा ने सामरा के सौ अरब और सैयद उसके साथ कर दिए। सैयद आकर सिन्ध मे रहने लग गया और दल्लूराय ने अपनी लड़की उससे ब्याह दी।"[२]

[१] **तोहफतुल किराम ; ईलियट; पहला खंड; पृ० ३४४ ।**

[२] **उक्त ग्रन्थ और खंड; ८० ३४३ ।**

तारीख ताहिरी के लेखक ने दल्लूराय और छोटा इमरानी दोनों भाइयों के बीच में विरोध होने का एक कारण यह लिखा है कि छोटे भाई का बचपन से ही इस्लाम की ओर अनुराग था। उसने कुरान पढ़ा था और वह हृदय से मुसलमान हो गया था। वह छिपकर हज करने के लिये चला। रास्ते में उसने एक विलक्षण रीति से फातिमा नाम की एक लड़की से ब्याह किया। जब वह हज से लौटकर सिन्ध के सेविस्तान नामक स्थान में पहुंचा, तब वह मर गया। वह बही गाड़ा गया। उसकी क़बर पर अब भी बहुत से लोग इकट्ठे होते हैं।[१]

ये लोग अरबी और भारतीय मिले हुए थे

तात्पर्य यह कि इन सभी उद्धरणों से यही पता चलता है कि यह कबीला संकर था और इसमें अरबी और भारतीय टोनो जातियाँ मिली हुई थीं। जिन लोगों ने इसे अरब बतलाया है, वे इसके एक अंग का उल्लेख करते हैं; और जो इसे हिन्दू बतलाते हैं, वे इसके दूसरे अंग का उल्लेख करते हैं। जैसा कि दुरूज के पत्र से पता चलता है, सोमर नाम का

फारसी के इतिहासो मे उल्लेख है। सोमर ने ही इस राज्य की स्थापना की थी; इस लिये इन लोगो को सोमरी और सामरा आदि कहने लगे। इराक के सामरा नगर से इनका कोई सम्बन्ध नही है। सामरी नगर का असली नाम सुर्र-मन-रआ था, जिसे अधिक व्यवहार के कारण साधारण लोग सामरा कहने लगे। यह नगर नलीफ़ा मोतसिम बिल्लाह अब्बासी (सन् २२७ हि०) ने बसाया था।

[१] **तारीखे ताहिरी; इलियट पहला खंड; पृ० २५८ ।**

शुद्ध राजपूत नहीं थे

युरोपियन इतिहास-लेखको ने लिखा है कि यह कबीला पहले राजपूत था और फिर मुसलमान हो गया था। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में "सिन्ध" पर जो लेख है, उसके लेखक ने भी यही लिखा है।[१] इलियट साहब भी यही बात सिद्ध करना चाहते हैं। पर इनमें से कोई महाशय किसी प्रकार का तर्क या प्रमाण नहीं देते । फ़ारसी इतिहास-लेखकों के मिले जुले वर्णनों से तो यही जान पड़ता है कि वे शुद्ध भारतीय भी नहीं थे। फिर भला वे शुद्ध राजपूत कैसे रहे होंगे ।

[१] **ग्यारहवाँ संस्करण ; २५ वाँ खंड पृ० १४३ ।**

यहूदी भी नहीं थे

स्वर्गीय मौलवी अब्दुर रहीम साहब शरर ने एक विलक्षण बात यह लिखी है कि ये लोग यहूदी थे और मुसलमान हो गए थे। मौलवी साहब को शायद इस लिये यह सन्देह हुआ कि यहूदियों की एक जाति का नाम सामरी था, जिसका यह नाम शमरून पर्वत के नाम पर पड़ा था। इस सन्देह का दूसरा कारण बुशारी मुकद्दसी का एक लेख है, जिसे स्वर्गीय मौलवी साहब ने एक विलक्षण ढंग से अपने विचार के अनुसार बना लिया है। बात

यह है कि बुशारी ने अपने मुकद्दमा या भूमिका में जिन जातियों आदि का उल्लेख किया है, उनमें चार की संख्या की विशेषता रखी है; और कहा है- "अहले जिम्मा (मुसल- मानों से भिन्न या गैरमुस्लिम लोग, जिनसे जजिया लिया जा सकता है) चार हैं-यहूद, नसारा (ईसाई) मजूस (अग्निपूजक) और साबी।" फिर आपत्ति की है कि- "सामरा भी तो अहले जिम्मा हैं, जिनसे जजिया लिया जा सकता है। इस प्रकार चार की जगह पाँच जातियाँ हो जाती हैं।" इसका उत्तर यह दिया है- “सामरा असल में यहूद का ही एक भेद है। वे भी हजरत मूसा को ही पैगम्बर मानते हैं।" यह तो मूल प्रति में लिखा हुआ है। इस पर सम्पादक ने पाद-टिप्पणी में एक और प्रति का भी लेख दे दिया है, जिसमें आपत्ति का उत्तर इस प्रकार है- "सिन्ध के मूर्तिपूजक भी तो इस्लामी देश में रहते हैं। फिर अहले जिम्मा चार से अधिक हो जाते हैं।" इसके उत्तर में बुशारी कहता है- "सिन्ध के मूतिपूजक अहले जिम्मा नहीं हैं, क्योकि वे जजिया नहीं देते।[१] इस लिये अन्त में अहले जिम्मा वही चार रह गए ।"

स्वर्गीय मौलवी साहब ने सामरा और सिन्ध को ऊपर नीचे देखकर दोनों को एक में मिला दिया है; और एक नया सिद्धान्त बना लिया है, जिसकी कोई जड़ नहीं है। बुशारी की अहसनुत्तकासीम नामक पुस्तक मिलती है, जिसे देखकर सब लोग जान सकते हैं कि असल मे बात क्या है।

सोमरी बादशाह

तोहफतुल् किराम में सोमरा के नीचे लिखे बादशाहों के नाम और उनके शासन के वर्ष लिखे हैं-

१ सोमरा	बहुत दिनो तक ।
२ भौगर, पहले सोमरा का लड़का	१५ बरस; सन् ४६१ हि० में मरा ।
३ दूदा, प्रथम भौगर का लड़का	२४ बरस; सन् ४८५ हि० में मरा ।
४ संघर	१५ बरस ।
५ हफीफ या खफीफ	३३ बरस ।
६ उमर [२]	४० बरस ।
७ दूदा दूसरा	१४ बरस
८ पाथू	३३ बरस ।
९ गन्हरा पहला	१६ बरस ।
१० मुहम्मद तूर	१५ बरस ।
११ गन्हरा दूसरा	कुछ थोड़े बरस ।
१२ दूदा तीसरा	१४ बरस
१३ ताई	१५ बरस ।
१४ चैंसर या चैन्सर	१८ बरस ।
१५ भौंगर दूसरा	१५ बरस ।
१६ हफीफ या खफीफ दूसरा	१८ बरस ।
१७ दूदा चौथा	२५ बरस ।
१८ उमर सोमरा	३५ बरस ।
१९ भौगर तीसरा	१० बरस ।
२० हमीर अमीर	अन्तिम बादशाह ।

[१] **अहसनुत्तकासीम, बुशारी, पृ० ४२ (लीडन) ।**

[२] **शीया इस्माईलियों मे यह उमर नाम विलक्षण जान पडता है। सम्भव है कि असल मे यह नाम उनर हो, जैसा कि सिराज थफीफ में लिखा है और जिसके दूसरे उच्चारण शोनार या दिनार या उनार है, जैसा कि इब्न बतूता और सिन्ध के कुछ फारसी इतिहासों में है।**

ग्यारहवें बादशाह के सम्बन्ध में यह निश्चय नहीं है कि उसने कितने बरसों तक राज्य किया; और अन्तिम बादशाह का भी समय नहीं दिया है; इस लिये ऊपर सबके राज्य करने के बरसों का जो समय दिया गया है, उसमे इन दोनों के बरस नहीं जोड़े गये हैं। अगर उनके लिये भी कुछ बरस बढ़ा लिए जायँ, तो इन सब का शासन काल ३७५ बरस के लगभग होता है। अब यदि यह माना जाय कि उनका आरम्भ सुलतान अब्दुर रशीद के वाद सन् ४४४ हि० से हुआ तो उनका अन्त सन् ८१९ हि० में होता है। पर ऊपर कहा जा चुका है कि इनका अन्त मुहम्मद शाह तुग़लक के समय (सन् ७५२ हि०) में हुआ। इस हिसाब से ऊपर सब बादशाहो के राज्य करने का जो समय बतलाया गया है, उसमे ६७ बरस अधिक जान पड़ते हैं।

सोमरियों का अन्त

मुहम्मद शाइ तुगलक के समय में दिल्ली के सुलतान और सोमरियों में आपस में कुछ खींचा तानी और लड़ाई होने लगी थी। मुहम्मद शाह तुगलक के अन्तिम समय में गुजरात में तग़ी नाम का एक मुगल विद्रोही हो गया था। जब बादशाह गुजरात पहुंचा, तब वह मुग़ल भागकर ठट्ठा (सिन्ध) चला गया; और वहाँ उसने सोमरियों के यहाँ शरण ली। बादशाह उसका पीछा करता हुआ ठट्टे तक गया । वहाँ मुग़लों और सोमरियो ने मिलकर बादशाह का सामना किया। वहीं अचानक बादशाह की तबीयत कुछ खराब हो गई और वह मर गया। बिना बादशाह के सेना को मुग़लो और सामरियों के हाथ से बहुत कष्ट उठाना

पड़ा। अन्त में उसने फीरोज शाह तुगलक को अपना बादशाह बना कर इस दोहरी कठिनाई से छुटकारा पाया; और वह सेना दिल्ली लौट आई। यह बात सन् ७५२ हि० की है।[१]

पर इसके कुछ हो बरसों बाद जब फीरोज शाइ सन् ७६२ हि० में यहाँ आया तत्र उसने देखा कि यहाँ जामों का राज्य है। जाम उनर और उसका भतीजा और भान्जा शासक हुआ। यह जाम उपाधि सम्मा के बादशाह की थी। इससे जान पड़ता है कि उसी समय सोमरा लोगो का अन्त और सम्मा लोगो का आरम्भ हुआ। तोहफतुल् किराम मे सन् ७५२ हि० मे सम्मा लोगों का आरम्भ लिखा है, जिससे जान पड़ता है कि इसी मुहम्मद शाह तुग़लक की चढ़ाई के बाद ही यह क्रान्ति हुई थी; और फरिश्ता के कथन के अनुसार इस क्रान्ति के लिये मुसलमानो ने सब से अधिक प्रयत्न किया था। जान पड़ता है कि इस्माईली या हिन्दू से जान पड़ने वाले सोमरियों के विद्रोह के बाद साधारण मुसलमानों ने यही उचित समझा कि सोमरियों को यहीं की एक नई मुसलमान बनी हुई देशी जाति के द्वारा मिटा दिया जाय। इस लिये सम्मा जाति के ओनर नाम के एक सरदार ने सोमरियों के अन्तिम बादशाह हमीर (अमीर) को, जिसका दूसरा नाम अरमाईल भी मिलता है, मारकर अपना राज्य स्थापित कर लिया ।

[१] **फ़ीरोज़शाही; जियाए बरनी; पृ० ५२३-२५ (कलकत्ता) ।**

नई जांच की आवश्यकता

इस बात की बहुत आवश्यकता है कि सोमर बादशाहों की इस सूची और उनके शासन काल की फिर से अच्छी तरह जाँच की जाय। इस पर हमारे भारतीय इतिहास लेखकों को कुछ परिश्रम करना चाहिये। कहते हैं कि सन् ६२० हि० से एक दो बरस पहले जब सुलतान जलालुद्दीन ख्वारिज्म शाह तातारियों से भागकर सिन्ध में आया और ठट्ठा पहुँचा, तब जलसी नाम के सोमरी बाद- शाह ने भागकर और नावों पर अपना सब सामान लादकर किसो टापू में जाकर शरण ली ।[१] यह जलसी नाम इस सूची में नहीं है। नवलकिशोर प्रेस

की छपी हुई प्रति पर विश्वास नहीं किया जा सकता । सम्भव है कि यह जलसी नाम चैन्सर शब्द की खराबी हो, जो हमारी सूची का चौदहवाँ बादशाह है। इसी प्रकार सन् ७३४ हि० में जब इब्न बतूता सिन्ध में आया था, उस समय वहाँ का बादशाह ओनार था। यह नाम भी इस सूची में नहीं है। पर सम्भव है कि यह वही बादशाह हो, जिसका नाम उमर के रूप में अठारहवें नम्बर पर मिलता है ।

[१] **फरिश्ता ; दूसरा खण्ड पृ० ३१६ (नवलकिशोर) ।**

सम्मा

सामरियों के बाद सम्मा कबीले के जिन लोगों ने सिन्ध पर अधिकार किया था, उनकी राजधानी ठट्ठा थी, जिसे अरब लोग देबल कहते हैं।

सम्मा को फारसी इतिहास-लेखक बहुवचन में सम्मागान लिखते हैं, जिस प्रकार अँगरेजी लेखक "एस" (-) लगाकर बहुवचन बनाते और "सम्मास" (Sammas) लिखते हैं। इसीसे धोखा खाकर कुछ लोगों ने इन्हें "सम्मास" भी लिख दिया है। ये इस्लाम धर्म को माननेवाले थे। हाँ इस बात में मतभेद है कि ये लोग पहले से ही मुसलमान थे या पीछे से मुसलमान हो गए। इनका मुख्य स्थान ठट्ठा था। सरकारी उपाधि जाम थी और नाम भारतीय तथा अरबी मिला हुआ होता था । उदाहरण के लिये प्रसिद्ध सम्मा बादशाह का नाम जामनन्दा निजामुद्दीन था। ये लोग इतने बलवान थे कि बहुत दिनों तक यही लोग दिल्ली के बादशाहो का जारों से सामना करते रहे। ये लोग सन् ७५२ हि० (१३५१ ई०) से सन् ९२७ हि० तक अथात् १७५ बरस तक सिन्ध पर राज्य करते रहे ।

इस कबीले के मूल के सम्बन्ध मे भी इतिहास-लेखको मे बहुत मतभेद है। सिन्ध के कुछ इतिहास-लेखको ने यह माना है कि ये लोग अरब जाति के थे। उन्होने इन्हे अबूजहल की सन्तान कहा है। बाद के फारसी इतिहास-लेखको, जैसे फरिश्ता और अबुल फजल आईन अकबरी) ने, इनकी "जाम" उपाधि के कारण इन्हे ईरानी बादशाह जमशेद की

सन्तान कहा है। इसका आधार केवल यह है कि जम और जाम शब्द दोनो एक से ही है। पर यह बिलकुल गलत है। युरोप के इतिहास लेखक जैसे ईलियट[१] और इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका[१] एन्साइक्लोपीडिया आफ इस्लाम[२] के निबन्ध-लेखक कहते हैं कि ये लोग राजपूत थे, जो पीछे से मुसलमान हो गए थे। पर अन्तिम लेखक के सिवा और किसी ने कोई तर्क या प्रमाण देने का कष्ट नहीं उठाया है। अन्तिम लेखक के तर्क का सार यही है कि कच्छ और नवा नगर के राजपूत राजाओं की उपाधि जाम कि है। सच बात यह है कुछ पुराने इतिहास-लेखक भी इस विचार का समर्थन करते हैं। तारीख मासूमी में लिखा है कि सम्मा लोग कच्छ से सिन्ध आए थे।[३] चचनामा के वर्णन से पता चलता है कि सम्मा कबीले के लोग मुहम्मद क़ासिम के समय (सन् ९६ हि०) से भी पहले सिन्ध में बसे हुए थे। जब मुहम्मद क़ासिम उनकी बस्ती में पहुँचा, तब उन लोगो ने गीतों और बाजों से उसका स्वागत किया और वे बहुत प्रसन्न हुए। मुहम्मद कासिम ने एक अरब सरदार को, जिसका नाम खरीम और जिसके बाप का नाम उमर बतलाया गया है, उनका प्रधान बना दिया।[४] तारीख ताहिरी में लिखा है- "इस प्रकार वह देश जो समुद्र के किनारे है, सम्मा जाति के अधीन हो गया, जहाँ उसके वंश के लोग अब तक बसे हुए हैं। राय भारा और जाम सहता और कच्छ के छोटे राजा इसी जाति के हैं।"[५]

[१] **ईलियट कृत भारत का इतिहास; पहला खण्ड, पृ० ४६७ ।**

पर तारीख बिलाज़ुरी में, जो सन् २९७ हि० में लिखी गई थी, मुझे एक वाक्य मिला है, जिसका अर्थ इस प्रकार है-

[१] **"सिन्ध" नाम का लेख २५ वाँ खंड, पृ० १४३ (स्यारहवाँ संस्करण) ।**

[२] **साम्मा (Samma) नाम का लेख अँगरेजी संस्करण ।**

[३] **मासूमी; इलियट; पृ० २२३ ।**

[४] **चचनामा ईलियट १६१ ।**

[१] ताहिरी; इलियट; पृ० २६८ ।

"फिर सिन्ध का वाली दाऊद बनाया गया जो यजीद का लड़का और हातिम का पोता था । उसी के साथ सम्मा का बाप गया था, जिसका आजकल सिन्ध पर अधिकार है। वह कन्दा कबीले का स्वतन्त्र किया हुआ दाम है।"[१]

अब इससे क्या यह समझा जाय कि जो लोग बाद में सन्मा कबीले के नाम से प्रसिद्ध हुए थे, वे इसो सम्मा की सन्तान थे? सम्भव है कि वहीं लोग कच्छ में जा रहे हों और फिर वहाँ से सन् ७५२ हि० मे आकर उन्हों ने सोमरा लोगो से सिन्ध छीन लिया हो ।

सम्मह या सम्मा बादशाह

सम्मा लोगों का समय बहुत पीछे का है। अर्थान् वह समय है, जब दिल्ली के मुसलमानो का दृढ राज्य स्थापित हो चुका था। इस लिये सम्मा बादशाहो के नाम, उपाधि और शासन काल अधिक अच्छी तरह से रचित हैं। फरिश्ता के अनुसार इन बादशाहो का विवरण इस प्रकार है-

"शाह मुहम्मद तुग़लक के समय में मुसलमानो के प्रयन से सिन्ध का राज्य सामरियो के हाथो से निकल कर सम्मा लोगो के हाथ मे आ गया। इस कबीले के प्रायः सरदार इस्लाम ग्रहण कर चुके थे और प्रायः ये लोग दिल्ली के बादशाह के आज्ञाकारी और करद रहे । हाँ कभी कभी वे लोग विद्रोह भी कर बैठते थे। इस्लाम के समय मे जो सबसे पहला आदमी इनका बादशाह बना, वह जाम अफजा (अनार या वनार) [२] था। वह बहुत बुद्धिमान् था । उसने साढ़े तीन बरस तक राज्य किया। उसके बाद उसका भाई जाम जूना बादशाह हुआ, जो बहुत न्यायी था। उसके बाद उसका लड़का जाम मानी हुआ, जिसने दिल्ली के सुलतान का विरोध और सामना किया इससे सन् ७६२ हि० में सुलतान फीरोज

शाह ने उसपर चढ़ाई की। पहले वह सफल नहीं हुआ। फिर गुजरात से लौटकर सुलतान ने उसका सामना किया। अन्त में जाम मानी ने सन्धि कर ली ।"[१]

[१] **बिलाज़ुरी; पृ० ४४५ (लीडन) ।**

[२] **नवलकिशोर प्रेस की छपी हुई फरिश्ता की प्रति से इसका नाम जाम अफ्ज़ा लिखा है; पर यह लिखनेवाले की भूल है या मूल प्रति की भूल है।**

इस युद्ध और सन्धि का पूरा और आँखों देखा हाल फीरोज शाह के समय के इतिहास लेखक सिराज अफीफ ने लिखा है। पर उस समय के जाम का नाम उसने ओनर लिखा है और उसके साथ उसके भतीजे को भीर खा है, जिसका नाम बाँहबना बतलाया है। सम्मा लोगों के बलका अनुमान इस बात से हो सकता है कि जाम ने चालीस हजार पैदल और बीस हजार सवारों को साथ लेकर दिल्ली के सुलतान फीरोज शाह का सामना किया था। रसद और घास की कमी के कारण सुलतान को सफलता नहीं हुई और वह सिन्ध छोड़कर गुजरात चला गया। दूसरे ही बरस उसने वहाँ से लौटकर फिर चढ़ाई की। लाचार होकर जाम सन्धि के लिये तैयार हो गया। यह सन् ७६२ हि० (१३६१ ई०) की घटना है।

असल शब्द उनार या वनार या ओनर है, जैसा कि इब्न बतूता और सिराज़ अफीफ में है।

[१] **तारीख़ फ़रिश्ता ; दूसरा खंड; पृ० ३१७ (नवलकिशोर) ।**

यह सन्धि किस प्रकार हुई?

सैयद जलालुद्दीन हुसैन बुखारी, जो उस समय के प्रसिद्ध महात्मा थे और जिनका नाम सोमरा के धर्म के प्रकरण मे आ चुका है, ऊच में ठहरे हुए थे। जाम ने सलाह करके उनकी सेवा में अपने दूत भेजे और कहलाया कि आप यहाँ पधार कर मुलनान से मेरा अपराध क्षमा करा दें। मैयद जलालुद्दीन बुगारी आए और बादशाह ने पूरी श्रद्धा के साथ उनका स्वागत किया। सैयद साहय ने दोनों पक्षो को दिलासा दिया। जाम और उसके साथ मिलकर शासन करनेवाले बॉहबना को आप अपने साथ ले जाकर फ्रीगेज शाह से मिलाया और सन्धि की शर्तें तै हो गई ।[१]

सम्मा बादशाहों के नाम

मीर मासूम और 'फरिश्ता ने सम्मा बादशाहों के नाम और उनके राज्य करने के बरस लिखे हैं। आरम्भ के कुछ नामों के सम्बन्ध में इन दोनों में कुछ मनभेद है। जैसे सैरुहीन का नाम फरिश्ता में नहीं है और उसकी जगह जाम मानी लिखा है। सम्भव है कि मानी और खरुद्दीन दोनों एक ही आदमी हो। अन्त के नामो में कुछ मतभेद है। वे नाम इस प्रकार हैं-

१ जाम ओनार या वनार या 'ओनर	३ बरस ६ महीने ।
२ जाम जूना जो जाम ओनार का भाई और बाँहबना का लड़का था	१४ बरस यह अला-उद्दीन खिलजी के समय मे हुआ था।
३ जाम तमाजी	१५ बरस अलाउद्दीन का समकालीन।
४ जाम खैरउद्दीन	१६ बरस अलाउद्दीन का समकालीन ।
५ जाम बाँहबना	...

६ जाम तमाजी	...
७ जाम सलाहुद्दीन	११ बरस
८ जाम निजामुद्दीन, जो सलाहुद्दीन का लड़का था	२ बरस कुछ महीने
९ जाम अलीशेर, निजामुद्दीन का लड़का	६ बरस कुछ महीने
१० जाम करनजान, तमाजी का लड़का	डेढ़ दिन

[१] **अधिक बातें जानने के लिये देखो फ़ीरोज़शाही; शम्स सिराज अफ़ीफ़ ; पृ० २४०-४१ (कलकत्ता) ।**

जाम ओनार के वंश का अन्त हो जाने पर सम्मा कबीले का एक और वंश सिंहासन पर बैठा था। उसके पहले बादशाह का नाम फतह खाँ था । उसका वंश इस प्रकार था-

११ फ़तह खॉ, सिकन्दर का लड़का	१५ बरस
१२ जाम तुग़लक, सिकन्दर का लड़का और फतह खॉ का भाई	२८ बरस
१३ जाम मुबारक, जाम तुगलक का एक पास का सम्बन्धी	३ दिन
१४ जाम सिकन्दर, फतह खाँ का लड़का और सिकन्दर का पोता	१ बरस ६ महीने।
१५ जाम रायवरन (मुसलमान था)	सन् ८५८ हि० में कच्छ से आया था
१६ जाम सजंर, सम्मा का एक सरदार	८ बरस ६ महीने
१७ जाम नन्दा निजामुद्दीन	६२ बरस ।
१८ जाम फीरोज, जाम नन्दा का लड़का	अन्तिम बादशाह ।

जाम नन्दा के समय में सन् ८९० हि० में शाहबेरा अरगून ने कन्धार से आकर सिन्ध पर चढ़ाई की, पर उसे सफलता न हुई । जाम नन्दा के बाद उसके लड़के जाम फीरोज और उसके एक विरोधी सम्बन्धी सलाहुद्दीन में सिंहासन के लिये आपस में लड़ाई हुई। जाम सलाहुद्दीन गुजरात के सुलतान मुज़फ्फर की बेग़म का चचेरा भाई था । इस लिये जाम सलाहुद्दीन की सहायता करने के विचार से गुजरात का सुल्तान मुजफ्फर उठा। यह देखकर जाम फीरोज ने कन्धारवाने शाहवेग परगन में सहायता मांगी। शाहबेग अरगून ने देखा कि यह बहुत अच्छा अवसर है। उस लिये उमने सन् ९२७ हि० में सिन्ध पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार सम्मा जाति के राज्य का 'अन्त हो गया।[१]

ऊपर बादशाहो के राज्य करने के जो बरस लिखे गए हैं, उन सबका जाड १९२ होता है; पर सन् ७२२ हिं० से ९२७ हि० तक कुल १७५ ही बरस होते हैं। सम्भवतः नाम नन्दा का समय बहुत बढ़ाकर बतलाया गया है। नामो के बढ़ने का एक कारण यह भी जान पड़ता है कि वंश के दो दो आदमी एक साथ मिलकर राज्य करते थे; जैसा कि सिराज अफीफ से पता चलता है।[२]

सम्मा जाति का धर्म

सम्मा जाति मुसलमान तो थी ही, पर वह कब मुसलमान हुई और मुसलमानो के किस फिरके या दल के साथ उसका सम्बन्ध था, यह अभी तक इतिहास का एक रहस्य ही बना हुआ है, जिसके आगे से अन्धकार का परदा उठाने का अब तक कोई प्रयत्न नहीं किया गया है। इतिहास-लेखकों ने इनके भारतीय और अरबी नामो की सहायता से इनके धर्म-परिवर्त्तन का समय नियत किया है। उदाहरणार्थ फरिश्ता ने इन्ही नामो से अनुमान करके पहले के चार बादशाहो को जिनके नाम क्रम से जाम ओनर, जाम जूना, जाम मानी और जाम तमाजी लिखे हैं, हिन्दू समझा है; और पॉचवें बादशाह जाम सलाहुद्दीन से मुसलमान बादशाहो का क्रम आरम्भ किया है। उसने लिखा है -

[१] **फरिश्ता ; दूसरा खंड; पृ० ३२० (नवलकिशोर)**

[२] **फीरोज़शाही; पृ० १६६ और २४७ (कलकत्ता)।**

"इन लोगों के नामों से और विशेषतः तमाजी नाम से यह प्रकट होता है कि ये लोग जनेऊ पहननेवाले (हिन्दू) थे।" (दूसरा खंड; पृ० ३१८ नवलकिशोर)

पर वास्तव में इस जाति के नामों के रंग ढंग से धोखा नहीं खाना चाहिए। इनमें से सबसे पहला ही नाम जाम ओनर है। इब्न बतूता के वर्णन से पता लग चुका है कि उसके समय मे जिस सामरी का नाम ओनार (ओनर) था, वह हिन्दू नहीं था, बल्कि अपने आपको मुसलमान समझता था; और एक हिन्दू के अधीन होने से उसे इतना अधिक दुःख हुआ था कि उसने दिल्ली के सुलतान के विरुद्ध विद्रोह किया था और मलिक फीरोज़ की बादशाही उपाधि धारण की थी। तारीख ताहिरी में जिस जाम के समय की इस्लाम का प्रचार करने के लिये विशेष रूप से प्रशशा की गई है, वह जाम नन्दा है; और उसके बाप का नाम बाँहबना बतलाया गया है।[१] जाम रायवरन बिलकुल हिन्दू नाम है। पर जब उसने कच्छ से आकर ठट्ठा पर अधिकार किया, तच उसने यह घोषणा की थी कि मै केबल मुसलमानो के देश की रक्षा करने के लिये यहां आया हूँ।[२]

[१] **तारीख ताहिरी; इलियट : पृ० २७**

[२] **तारीख मासूमी: ईलियट ५० २३६**

ऐसा जान पड़ता है कि वे लोग पहले अपना असली जातीय नाम रखते थे; और बाढ़ को दिल्ली के सुलताना के ढंग पर सलाहुद्दीन आदि उपाधियाँ धारण करने लगे थे। जिस जाम ने खैरुद्दीन की उपाधि धारण की थी, वह बचपन में बहुत दिनों तक अपने पिता के साथ दिल्ली के दरबार मे रहा था।[१] अन्तिम बादशाह नन्दा के भारतीय और अरबी दोनों नाम हैं। नन्दा जातीय नाम जान पड़ता है, और निजामुद्दीन अरबी राजकीय उपाधि। इसी प्रकार जिस जाम के साथ सुलतान फीरोज शाह की लड़ाई हुई थी, उसका नाम शम्स

सिराज ने गय ओनर लिखा है, [२] जो हिन्दू नाम है। पर रंग ढंग से पता चलता है कि वह हिन्दू नहीं बल्कि मुसलमान था। और यह बात स्पष्ट ही है कि अगर वे लोग अरब थे, तो वे आरम्भ से ही मुसलमान होगे। और अगर हिन्दू थे, तो मेरा अनुमान है कि वे लोग राज्य पाने के बाद मुसलमान नहीं हुए थे, बल्कि आरम्भ से ही अर्थात् राज्य पाने से पहले से ही मुसलमान थे, बल्कि सुन्नी थे। अपने विचार उपस्थित करने से पहले हम उन महात्मा और उनकी परम्परा का कुछ हाल बतला देना चाहते हैं, जिनके उन्यांग से मेरी समझ में यह जाति मुसलमान हुई होगी। आर्नल्ड साहब ने केवल अनुमान से यह लिख दिया है कि यह जाति अरब व्यापारियो के द्वारा मुसलमान हुई थी।[३] पर मेरी समझ में इसका द्वार व्यापार नहीं था, बल्कि सूफियो का धर्म्म तसव्बुफ़ था ।

[१] उक्त ग्रन्थ, पृ० २२५

[२] तारीख फीरोज़शाही; शम्स सिराज़ थफीफ पृ० १६६ (कलकत्ता)

[३] Preaching of Islam का दावते इस्लाम नामक उर्दू अनुवाद पृ० २६२ (सन् १६०७ ई०) ।

शे.खुल् इस्लाम बहाउद्दीन ज़करिया और सैयद जलालुद्दीन बुख़ारी

ऊपर कहा जा चुका है कि सिन्ध पर जो हबारी वंश शासन करता था, उसके राज्य का अन्त होने के बाद उस वंश के कुछ लोग मुलतान चले गए। उन्हीं में वे अमर महात्मा भी थे जो शेखुल इस्लाम बहाउद्दीन जकरिया मुलतानी के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका समय सन् ५७८ हि० से लेकर सन् ६६६ हि० तक है। उन्होने सभी बड़े बड़े इस्लामी देशों में यात्रा की थी और उन्हीं के कारण मुलतान विद्या और तसव्वुफ का केन्द्र बन गया था। सैयद जलालुद्दीन बुखारी जो तसव्वुफ और सयादत सैयद-पन के लिये बहुत अधिक प्रसिद्ध हैं, बुखारा से मुलतान आकर इन्ही शेन बहाउद्दीन के शिष्य हुए थे। उन सैयद जलाल

बुखारी के पोते मखदूम जहानियों सैयद जलालुद्दीन हुसैन बुखारी थे, जिनका नाम इससे पहले दो बार ऊपर आ चुका है। (जन्म सन् ७०७ हि० ; मृत्यु सन् ८०० हि०) उस समय बड़े बड़े सूफियो और महात्माओ का यह दस्तूर था कि वे अपने योग्य शिष्यों का अच्छी तरह शिक्षा देकर दूर दूर के देशो में लोगो को सत्य का मार्ग दिखलाने और उनकी सेवाएँ करने के लिये भेजा करते थे । शेखुल् इस्लाम जकरिया मुलतानी ने इसी प्रकार सैयद जलाल बुखारी प्रथम को सिन्ध के ऊच नगर में लोगो को उपदेश देने के लिये भेजा। उन दिनों सिन्ध मे सोमरा जाति के शासन का अन्तिम समय था। और यह हम पहले ही बतला चुके हैं कि सोमरा जाति का वाली किस प्रकार इन सैयद साहब का शिष्य बना था ।

तारीख़ ताहिरी से प्रकट होता है कि शेखुल् इस्लाम जकरिया मुलतानी का केवल सिन्ध से ही नहीं बल्कि सम्मा जाति (ताहिरी ने सम्मा की जगह सोमरा लिखा है; पर उसने जो समय बतलाया है, उसे देखते हुए सोमरा की जगह सम्मा होना चाहिए।) से अनेक प्रकार का सम्बन्ध था; और उन्होने जो इस प्रान्त में अपने एक सबसे बड़े शिष्य को नियत किया था, वह भी शायद इसी कारण था। तारीख ताहिरी में जो कुछ लिखा हुआ है, उसका सारांश इस प्रकार है-

"सन् ७०० हि० (१३०० ई०) से सन् ८४३ हि० (१४४३ ई०) तक १४३ बरस सोमरा (सम्मा) नाम के एक हिन्दू कचीले का सिन्ध पर राज्य था। उसकी राजधानी मुहम्मद तूर में थी। उसके खँडहर केवल मैंने ही नहीं, बल्कि बहुत ने लोगो ने वेरक के परगने में देखे हैं। उसके उजड़ जाने के बाद वहाँ के बहुत से निवासी सकोरा (सक्खर) के परगने में आकर बस गए थे, जो सम्मा के जाम के समय में बसा था। यहीं उन्होंने एक गाँव बसाया था और उसका नाम मुहम्मद तूर रख्वा था। शेखुशशयूख (शेखों के शेख या प्रधान) मखदूम बहाउद्दीन जकरिया मुल्ला खलीफा सिन्धी, जो भारत में बहुत प्रसिद्ध हैं, और दूसरे बड़े बड़े लोग और जमीदार, जो उनके शिष्य थे, यहीं रहते थे।[१]

दूसरी घटना ऊपर बतलाई ही जा चुकी है कि शेख बहाउद्दीन ने अपने जिन शिष्य सैयद जलाल बुखारी को सिन्ध का प्रान्त प्रदान किया था, उनके पोते सैयद जलालुद्दीन

हुसेन बुखारी, जिनका समय सन् ७०७ हि० से सन् ८०० हि० तक है, मिन्ध के ऊच नामक स्थान मे रहते थे और वहाँ का सोमरा जाति का वाली उन्हीं का शिष्य हुआ था। इस सम्बन्ध से फरिश्ता ने लिखा है

उसने मसजिद मे जाकर सैयद के पाँव चूमे, सब फकीरो से क्षमा माँगी, उनका शिष्य हो गया और वह ईश्वर के दरबार स्वीकृत हो गया ।"[२]

सैयद बुखारी ऊच मे सदा धार्मिक उपदेश और व्याख्यान आदि दिया करते थे, जिन्हे सुनकर बड़े बड़े लोगो पर बहुत प्रभाव पड़ता था[३] ।

[१] **तारीख ताहिरी, ईलियट; पृ० २५७ ।**

[२] **फरिश्ता; दूसरा खंड, पृ० ४१६ । (नवलकिशोर)**

[३] **उक्त ग्रन्थ और खड, पृ० ४१६।**

सैयद साहब के जीवन की घटनाओं से जान पड़ता है कि सोमरा जाति का वाली सन् ७५० हि० के लगभग उनका शिष्य हुआ था, जिसके कुछ ही बरसों के बाद सोमरा की जगह सम्मा जाति का राज्य आरम्भ हुआ था। इस लिये यह भी अनुमान किया जा सकता है कि बाद की शासक जाति सम्मा भी सैयद साहब पर बहुत कुछ अद्धा और भक्ति रखती होगी ।

सम्मा जाति की राजधानी ठट्ठा नगर पर जब सन् ७५२ हि० में मुहम्मद शाह तुग़लक ने चढ़ाई की थी, तब वहीं वह अचानक मर गया था। फिर जब सन् ७६२ हि० में फीरोजशाह तुग़लक ने पहली बार चढ़ाई की, तब उसे सफलता नहीं हुई और वह वहाँ से गुजरात चला गया। इस घटना को वे लोग शेख की ही कृपा और करामात समझते थे, और इस लिये उन्होंने अपनी सिन्धी भाषा में एक वाक्य बनाया था

"बरकत शेख थिया । एक मुआ एक थमा ।"[१] (१)

अर्थात् - "यह शेख की कृपा या बरकत ही थी कि एक तो मर गया और दूसरा विफल मनोरथ होकर भाग गया ।" इस वाक्य में शेख शब्द से या तो शेख बहाउद्दीन जकरिया मुलतानी का अभिप्राय है और या सैयद जलाल बुखारी का ।

[१] **फ़ीरोज़शाही; शम्स सिराज अफीफ़ पृ० २३ । (कलकत्ता)**

जब दूसरे बरस फीरोज शाह ने गुजरात से लौटकर उनपर फिर चढ़ाई की, तब जाम ओनर और बाँहबना ने और कोई दूसरा उपाय न देखकर अपना एक दूत सैयद जलालुद्दीन हुसैन बुखारी की सेवा में ऊच भेजा और उनसे निवेदन किया कि आप आकर सुलतान के साथ हमारा मेल करा दें। इसपर सैयद साहब आए और उन्होंने दोनों पक्षों मे उचित्त शर्तो पर सन्धि करा दी; और सुलतान से कहा कि सम्मा लोगों की राजधानी ठट्टा में एक महात्मा और ईश्वर तक पहुँची हुई स्त्री थी। उसीकी प्रार्थना के कारण यह नगर नहीं जीता जाता था। परसो उसका देहान्त हो गया।[१]

इन घटनाओं से यह बात अच्छी तरह प्रकट होती है कि सम्मा के जामों का शेख बहाउद्दीन जकरिया और सैयद जलालुद्दीन हुसैन बुखारी में कितना अधिक विश्वास और श्रद्धा थी। इन घटनाओ से इन नामो का केवल मुसलमान होना ही नहीं सिद्ध होता बल्कि सुन्नी होना भी प्रकट होता है; और यह पता चलता है कि मुलतान के इसी सुहरबर्दी वश ने इन्हें सत्य का मार्ग दिखलाया था।

ये सब घटनाएँ सम्मा जाति के अन्तिम समय की नहीं हैं, बल्कि आरम्भ के समय की हैं, मैं पहले कह चुका हूँ कि सम्मा लोग पीछे से मुसलमान नहीं हुए थे, बल्कि पहले से ही मुसलमान थे; और इन बातो से मेरे इस कथन का समर्थन होता है। विशेषतः जब उस समय की अवस्था को इस घटना के साथ मिला कर देखा जाय कि सम्मा जाति को शासक बनाने मे सबसे अधिक काम मुसलमानों ने ही किया था, तब हमारी बात और भी पक्की ठहरती है। फरिश्ता ने कहा है-

"मुहम्मद शाह तुगलक़ के शासन के अन्तिम समय में मुसलमानो के ही प्रयत्न और सहायता से शासन का अधिकार सोमरी लोगो के हाथ से निकल कर सम्मा लोगो के हाथ में गया था; और इनके बहुत से अधिकारी मुसलमान हो गए थे।"[२]

यह स्पष्ट ही है कि यदि ये सम्मा लोग पहले से ही मुसलमान न होते, तो मुसलमानों की इनके साथ कैसे सहानुभूति हो सकती थी ।

[१] **उक्त ग्रन्थ; पृ० २४१ ।**

[२] **फरिश्ता; दूसरा खंड, पृ० ३१७ (नवलकिशोर)**

सिन्ध और उसके आस पास के दूसरे नगर

मुलतान और मन्सूरा के सिवा सिन्ध में और उसके आस पास अरबों के और भी कई छोटे छोटे राज्य और उपनिवेश थे, जिनका पता हिजरी चौथी शताब्दी के अन्त में महमूद गजनवी के पहले तक मिलता है, जिनमैं कुछ को सुलतान के पिता सुबक्तगीन ने और बहुतों को स्वयं सुलतान ने जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था। उन नगरों में से नीचे लिखे नगरों के नाम विशेष रूप से हिजरी चौथी शताब्दी के अरब यात्रियों के वर्णनों में मिलते हैं।

देबल या ठट्ठा

यह एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था; और जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं अरब लोग इसे देबल कहते थे और फ़ारसी इतिहास- लेखकों ने इसको ठट्ठा कहा है।[१] इसी नगर में सम्मा लोगों की राजधानी थी और इसी पर दिल्ली के सुलतान फीरोज शाह ने चढ़ाई की थी; पर उसे सफलता नहीं हुई थी। अन्त में हजरत शेखुल् इस्लाम जकरिया के शिष्य के उत्तराधिकारी हजरत शेख जलालुद्दीन के बीच में पड़ने पर दोनों पक्षों ने मेल कर लिया।[२] देबल में बड़े बड़े विद्वान् और हदीस के ज्ञाता हो गए हैं, जिनका वर्णन अल्लामा समआनी

(मृत्यु सन् ५६२ हि०) ने किताबुल् अन्साब में किया है।[३] बन्दरगाह होने के कारण यह अरब व्यापारियों का केन्द्र था। इसकी आबादी का अनुमान इसीसे कर लेना चाहिये कि सन् २८० हि० में खलीफा मोतमिद अब्बासी के समय में यहाँ एक भूकम्प आया था, जिसमे बहुत से मकान गिर गए थे। इस दुर्घटना मे जो आदमी मकानों के नीचे दबकर मर गए थे, उनकी संख्या डेढ़ लाख थी।[१] बुशारी (सन् ३७५ हि०) ने लिखा है- "इसके आस पास एक सौ गाँव हैं। अधिक संख्या हिन्दुओं की है। सब लोग व्यापारी और सौदागर हैं। उनकी भाषा सिन्धी और अरबी है। यहाँ की आम- दनी बहुत है ।

[१] **आईन अकबरी; "सिन्ध" ।**

[२] **तारीख़ फ़ीरोज़शाही; शम्स सिराज यफ़ीफ़; २४१ (कलकत्ता)**

[३] **किताबुल् अन्साब (फ़ोटो लेकर छापी हुई) में "देबली" शब्द ।**

असीफ़ान

बिलाजुरी ने इसका स्थान सुलतान, काश्मीर और काबुल के बीच में बतलाया है, जो शायद बहुत ठीक न हो। पर सिन्ध में इससे मिलते जुलते हुए नाम देखने में आते हैं।

डाक्टर आर्नल्ड को भी अपनी पुस्तक Preaching of Islam (दावते इस्लाम) लिखते समय इसका पता न चल सका।[२] उन्होने स्वर्गीय मौलाना शिबली के द्वारा इसकी जाँच भी कराई।[३] पर मेरा अनुमान है कि इसका असली नाम असीवान है, जिसको सीवान भी कह सकते हैं। इस नाम के कई नगर दिल्ली और सिन्ध के बीच मे है। फारसी इतिहासो मे भी यह नाम आया है।[४] इब्न बतूता ने भी सीवाना का जिक्र किया है और अब यह कराची के जिले मे है। कुछ लोगो ने सेविस्तान और सीवान को एक ही माना है। जो हो; हिजरी तीसरी शताब्दी के आरम्भ में मोतसिम के समय में, जिसकी मृत्यु सन् २२७ हि० में हुई थी, यहाँ मुसलमान व्यापारियों की बस्ती थी ।[१]

[१] तारीखुल् खुलता ; सुयूती; पृ० ३८० । (कलकत्ता)

[२] दावते इस्लाम ; पृ० २६१ ।

[३] मकातीब शिबली; दूसरा खंड; पृ० १७ ।

[४] ख़जायनुल् फ़ुतूह; अमीर खुसरो ।

तुम्बली

सिन्ध में तुम्बली नाम का भी एक स्थान था। सन् ३७५ हि० में यहाँ भी कुछ मुसलमान बसे हुए थे । [२]

बूकान

बिलाजुरी ने सिन्ध के बूकान (या बोकन) नाम के एक स्थान का भी जिक्र किया है और लिखा है- "हमारे समय में यहाँ के सब निवासी मुसलमान हैं।"[३] इसका समय हिजरी तीसरी शताब्दी का अन्त है ।

कसदार

कुछ लोगों ने इसका नाम कजदार भी लिखा है। सुबक्तगीन ग़ज़नवी की विजयों में इसका नाम मुलतान है।[४] यह भारत की अफ़ग़ानी सीमा के पास था। यहाँ खारिजी मुसलमानों की बस्ती थी और उन्हींका राज्य भी था। शायद हिजरी चौथी शताब्दी के मध्य में एक मोतजिली तार्किक और शास्त्रार्थ करनेवाले अबुल्हसन अली बिन लतीफ जब यहाँ पहुँचे, तब उन्हे सुन्नियों की बस्ती और रियासत मिली। वे कहते है कि यहाँ इतनी शान्ति और व्यवस्था है कि चोरी का कहीं नाम भी नहीं है। लोग घरों में ताला भी नहीं लगाते । यदि मसजिद में कोई यात्री योंही अपना सामान छोड़ दे, तो उसे कोई छूने वाला भी नहीं है। यहाँ एक मुसलमान दरजी से उनकी भेंट हुई थी। नगर में मसजिद भी थी।[१] बुशारी ने इसका स्थान यह बतनाया है कि यह बलोचिस्तान के तेज नामक बन्दरगाह से समुद्र के

किनारे मकरान की लम्बाई मे १२ पडाव पर है।[२] एक और अरब भूगोल-लेखक कहता है- "यह मुलतान से प्रायः बीस पडाव पर है।"[३]

[१] **बिलाज़ुरी ; पृ० ४४६ ।**

[२] **बुशारी ; पृ० ४८० ।**

[३] **बिलाज़ुरी ; पृ० ३४५ ।**

[४] **तबकाते नासिरी; पृ० ७। (कलकत्ता)**

इब्न होऊल (सन् ३६७ हि०) कहना है- "कजदार एक नगर है जिसके साथ कुछ कस्बे और देहात हैं, और यहाँ के हाकिम का नाम मुईन बिन अहमद है। पर खुतबा खलीफा (चगदाद) के नाम का पढ़ा जाता है। हाकिम का महल बाकजनान में था।" बुशारी मुकद्दसी जो सन् ३७५ हि० में इधर आया था, कहता है- "कजदार तौरान की राजधानी है। यह एक जंगल मे है। इसके दो भाग हैं। दोनों के बीच में एक तराई है, जिसमें पुल नहीं है। एक भाग मे सुलतान का महल है और उसी में किला भी है। दूसरे भाग का नाम बोदीन है। उसमे व्यापारियो के मकान हैं। यह भाग बहुत ही साफ सुथरा है। नगर छोटा है, पर यहाँ अच्छा लाभ दोता है। खुरासान, फ़ारस, किरमान और इधर से भारत के नगरो के लोग यहाँ आया करते हैं। पर यहाँ का पानी अच्छा नहीं है। पानी नहर से लेकर पीया जाता है।"[४]

[१] **मुअजमुल् बुल्दान; याकूत; सातवाँ खंद; पृ० ७८ (मित्र)**

[२] **ग्रहसनुत्तकासीम; पृ० ३८५ ।**

[३] **तकवीमुल् बुल्दान, अब्बुलफिदा; पृ० ३४६ ।**

[४] **बुशारी कृत अहसनुत्तकासीम; पृ० ४७८ (लीडन)**

तात्पर्य यह कि यहं मुसलमानो की एक छोटी सी रियासत थी । सुलतान महमूद के बाप अमीर सुबक्तगीन ने पहले भारत की सीमा पर की रियासतों को मिटाना आवश्यक समझा। इस लिये सन् ३७५ हि० और ३८६ हि० (जो सुबक्तगीन के मरने का सन् है) के बीच किसी सन् में उसने इस नगर पर अधिकार किया और यहाँ के मुसलमान हाकिम को अपना करद बनाया ।[१]

तौरान

इब्न हौक़ल के समय में सन् ४६३ हि० में यह एक स्थायी रियासत थी। वह कहता है कि पश्चिमी सिन्ध में तोरान है, जिसपर बसरे का रहनेवाला अबुल कासिम शासन करता है। वह आप ही हाकिम, काजी और सेनापति सब कुछ है; यद्यपि वह यह नहीं जानता कि तीन और दस में क्या फर्क है।

वैहिन्द

यह भारत का प्रसिद्ध पुराना नगर है। राजनवी के जीते हुए स्थानों में इसका भी नाम आता है। सन् ३९३ हि० में महमूद ने पेशावर के बाद इसपर अधिकार किया था।[२] इस नगर में भी महमूद के आने से पहले ही मुसलमानों की बस्ती थी। बैरूनी ने क़ानून मसऊदी में इसके विषय में लिखा है- "यह गन्धार की राजधानी है और सिन्ध की तराई में है।"[३] स्व० वी० ए० स्मिथ साहब ने अपनी "अरली हिस्ट्री आफ इंडिया" में ओहिन्द नाम की राजधानी को सिन्ध नदी के किनारे बतलाया है। वे लिखते हैं कि जब सन् २५६ हि० मे मुसलमानो ने काबुल जीत लिया, तब वहाँ की राजधानी हटकर ओहिन्द में आ गई, जो सिन्ध नदी के किनारे था और हिन्दू शाही वंश की राजधानी था ।[१]

[१] **तारीख़ फ़रिश्ता; पहला खंड; पृ० १६ (नवल किशोर)**

[२] **जैनुल् अख़बार ; गरदेज़ी; पृ० ६६ (बरलिन)।**

[3] **तकवीमुल् बुल्दान; अबुलुफ़िदा; पृ० ३५७ (पेरिस; सन् १८४० ई०) ।**

हिजरी चौथी शताब्दी के अन्त में (सन् ३७५ हि० में अर्थात् महमूद की चढ़ाई से १५-१६ बरस पहले) बुशारी मुकद्दसी लिखता है- "मैंने अबुल हेशम नेशापुरी के शिष्यों में से एक शिष्य से और शीराज के एक विद्वान से, जो इस देश में अच्छी तरह सैर कर चुके थे, पूछा तो पता चला कि वेहिन्द राजधानी का नाम है और उसके अधीन वधान (या विधान), बेतर, नौज, लवार और समान कोज आदि नगर हैं।"[2]

वैहिन्द के इलाके में भी मुसलमानों की अच्छी आबादी थी; यहाँ तक कि उनका राज्य ही था। हिन्दुओं का राजा अलग था और मुसलमानों का अमीर अलग था। निवासियो मे अधिकतर हिन्दू ही थे।[3]

[1] **The Early History of India पहला खंड पृ० ३४५ ।**

[2] **अहसनुत्तकासीम; पृ० ४७७ ।**

[3] **उक्त उन्थ; पृ० ४८५ और पाद-टिप्पणी ।**

कन्नौज

भारत के प्रसिद्ध नगर कन्नौज के सिवा सिन्ध और पंजाब की सीमा के पास भी इस नाम का एक इलाका बसा हुआ था, जिसका अरब यात्रियो ने बहुत अधिक उल्लेख किया है। यहाँ भी मुसलमान बसे हुए थे । सन् ३०० हि० के बाद यह नगर मुसलमानों के अधिकार में आ गया था। जब मसऊदी ने (सन् ३०३ हि० मे) इसको देखा था, तब मुलतान के साथ इसका सम्बन्ध था; और यह इस्लामी शासन या राज्य में था।[1] बुशारी इसके ७०-७५ बरस बाद यहाँ आया था । उस समय यह एक स्वतन्त्र राज्य हो गया था। वह कहता है- "यह बड़ा नगर है। इसके चारों ओर परकोटा है। यहाँ मांस बहुत अधिक बिकता है। बाग़ बहुत हैं। पानी अच्छा है। व्यापार बहुत है। लोग सुन्दर हैं। परकोटे के अन्दर जामे मस्जिद

है। मुसलमान गेहूँ खाते हैं। यहाँ बड़े बड़े प्रतिष्ठित और विद्वान् लोग रहते हैं।"[२] आगे चलकर कहता है- "यहाँ के अधिकतर निवासी यद्यपि हिन्दू हैं, पर फिर भी मुसलमानों का सुलतान अलग है।"[३]

अवध के कन्नौज को भी अरब के यात्री और भूगोल-लेखक जानते थे। मिस्र का प्रधान मन्त्री महलबी (सन् ३८६ हि० के लग- भग) अपनी भूगोलवाली किताब अजीजी में लिखता है- "कन्नौज भारत के बहुत दूर के नगरों में हैं। मुलतान के पूरब है। सुलतान और कन्नौज के बीच में दो सौ बयासी फरसंग की दूरी है। वह भारत की राजधानी है और सबसे बड़ा नगर है। लोगो ने उसका वर्णन करते समय सब बातें बढ़ाकर कहो हैं। कहते हैं कि इसमें खाली जौहरियों के तीन सौ बाजार हैं; और इसके राजा के पास ढाई हजार हाथी हैं। इसमे सोने की खानें भी हैं।"

[१] **मसऊदी ; पहला खंड; पृ० ३७२ (पेरिस) ।**

[२] **अहसनुत्तकासीम; पृ० ४८० ।**

[३] **उक्त ग्रन्थ; पृ० ४८५ ।**

इदरीसी, जिसने सिसली (इटली) में बैठकर सन् ५४८ हि० में अपना भूगोल लिखा था, कहता है - "यह बहुत सुन्दर नगर है। व्यापार की मंडी है। इसी नगर के नाम से यहाँ के राजाओं को भी कन्नौज कहते हैं।" इदरीसी ने कन्नौज का विस्तार पंजाब बल्कि काश्मीर तक बतलाया है। मराको का भूगोल-लेखक इब्न सईद मगरिबी (सन् ५८५ हि०) लिखता है- "यह नगर गगा के दोनो किनारो पर बसा है।"[१]

नेरून

सिन्ध के समुद्र किनारे के नगरों में नैरून नाम का भी एक नगर था। कुछ लोगो ने भूल से इसे बैरून पडा है और अबू रैहान बैरूनी को यहीं का रहनेवाला बतलाया है।[२] यह

देबल और मन्सूरा के बीच में था और मन्सूरा से १५ फरर्मग दूर था। मिन्त्र का मन्त्री महलबी हिजरी चौथी शताब्दी मे अपने भूगोल में लिखता है- "यहाँ के रहनेवाले मुसलमान हैं।"[३] एलफिन्सटन साहब ने अपने भारत के इतिहास में बतलाया है कि आजकल के हैदराबाद (सिन्ध) का ही पुराना नाम बैरून है।[४]

मकरान

यह सिन्ध की सीमा पर है। इब्न हौकल के समय में यहाँ का अरब हाकिम मादान का लड़का ईसा था। उसकी राजधानी का नाम कनेर था, जिसका विस्तार मुलतान के विस्तार से आधा था।

[१] **तकवीमुल् बुल्दान; अनुल्फिटा; ५० ३६० । (पेरिस)।**

[२] **उक्त ग्रन्थ; पृ० ३४६ । इब्न सई मगरिबी के आधार पर । तारीख़ुल् अतिब्बा, इब्न अबी उसैबा; दूसरा खण्ड पृ० २० (मिरा) ।**

[३] **तकवीमुल् बुल्दान, अबुल्फिदा; पृ० ३४६ ।**

[४] **एलफिन्सटन कृत भारत के इतिहास का उर्दू अनुवाद "तारीख हिन्द" दूसरा खण्ड; पृ० ४६३ । (अलीगढ़, सन् १८६७ ई०)।**

मश्क़ी

इसीके पास एक और अरब रियासत थी, जिसका नाम मश्की (या मुश्की) था। इब्न हौक़ल के समय में यहाँ के अरब हाकिम का नाम मजाहिर था, जो रजाद का लड़का था, यह रियासत इतनी बड़ी थी कि इसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने में तीन दिन लगते थे । यहाँ खुतबा भी बगदाद के खलीफा के ही नाम का पढ़ा जाता था ।

सिन्ध के रेगिस्तानों मे चलते चलते हम और आप दोनो घबरा गए। अब आइए, थोड़ी देर स्वर्ग-तुल्य देश की सैर करें जिसमें चित्त प्रसन्न हो जाय ।

काश्मीर

यह वह देश है जिसके सम्बन्ध में यह कहना उचित है कि इसको मुसलमान बादशाहों की तलवारों और उपायों ने नहीं जीता, बल्कि मुसलमान विद्वानों और फ़कीरो के प्रभाव ने जीता था। अरब भूगोल-लेखक और यात्री इसके पास तक आए, पर इसके अन्दर नहीं गए। उन्होने इसके रास्ते की कठिनाइयो का जिक्र किया है। वे लोग समुद्र से लेकर काश्मीर की पर्वत-माला तक के सब प्रदेशो को सिन्ध ही कहते थे। अरबों के बाद सुलतान महमूद ने भी इसकी चट्टानों से सिर टकराया, पर उसे सफलता नहीं हुई। लेकिन उसी समय में हम यहाँ मुसलमान व्यापारियो को आते जाते हुए देखते हैं। सुलतान महमूद की मृत्यु के तीन बरस बाद सन् ४२४ हि० में सुलतान मसऊद गजनवी ने इसपर चढ़ाई की और नगर निवासी किले में बन्द हो गए। उस समय वहाँ जो मुसलमान व्यापारी थे वे भी किले में बन्द थे।[१]

[१] **फरिश्ता; पहला खंड; पृ० ४१ (नवलकिशोर)**

भारत के इतिहास की इस संक्षिप्त मानसिक सैर के बाद हम उपस्थित सज्जनों से विदा होते हैं।

समाप्ति

इन पृष्टों में हमने इस बात का प्रयत्न किया है कि हम अपने साथियों को अरब और भारत के आपस के सम्बन्धों के वे दृश्य दिखलाव जो खैबर से आनेवाले मुसलमान विजेताओं से पहले यहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे। इनसे आप लोग अनुमान कर सकेंगे कि इन विजयों से पहले भी इस देश में कहाँ कहाँ मुसलमान लोग बसे हुए थे और हिन्दुओं के साथ उनके सम्बन्ध कितने प्रकार के और कितने गहरे थे और भारत के साथ इस्लाम का सम्यन्ध कितना अधिक पुराना है।

"मा फिस्सए सिकन्दर व दारा न ख्वाँदा एम ।

अज मा बजुत हिक़ायते मेहरो वफा मपुर्स ॥"

अर्थात् मैंने सिकन्दर और दारा की कहानियाँ (लडाई झगड़े की बातें) नहीं पढ़ी हैं। मुझसे दया और निष्ठा की कहानी के सिवा और कुछ मत पूछो ।

परिशिष्ट

पुस्तक के समाप्त हो जाने पर कुछ और काम की बातें मिली हैं जिन्हें यहाँ पर देना उचित जान पड़ता है।

१. सोपारा

गुजरात के एक प्रसिद्ध पुराने नगर का नाम अरबवालों ने 'सोबारा' लिखा है। इस्तखरी (सन् ३४० हि०) ने भारत के प्रसिद्ध नगरों में इसका नाम भी गिनाया है। इसके बाद जेरूसलम के यात्री बुशारी (सन् ३७० हि०) ने हिजरी चौथी शताब्दी के अन्त (ईस्वी दसवीं शताब्दी के अन्त) में इसका नाम लिया है और इसका स्थान खम्भायत के पास बतलाया है; और दोनों में चार पड़ावों का अन्तर बतलाया है। वह कहता है कि सोपारा समुद्र से एक फरसंग (आठ मील) की दूरी पर है। (बुशारी कृत अहसनुतकासीम पृ० ४७७ और ४८६ लीडन।)

पिछले वर्षों में गुजरात के जिन पुराने स्थानों और स्मृतिचिहनों की जाँच हुई है, उसमें सोबारा या सोपारा नाम के एक नगर का भी पता चलता है। इस जाँच से विदित होता है कि यह वही नगर है जिसका पुराने अरब यात्रियों ने अपने समय में वर्णन किया है।

२ फ़रवरी १९३० ई० के "बाम्बे क्रानिकल" के रविवार वाले अंक (पृ० ३१ और ३२) में इस जाँच के सम्बन्ध में एक लेख निकला है, जिसका सारांश इस प्रकार है-

"पुरातत्त्व सम्बन्धी जाँच से इस बात का पता चलता है कि इस नगर का वर्णन मगध देश (बिहार) के प्रसिद्ध राजा अशोक के समय से मिलता है। यहाँ महाराज अशोक का एक स्तम्भ सन् १८८१ ई० मे हमारे पुरातत्त्व सम्बन्धी जाँच करनेवालों को मिला था । सोपारा अब भी बी० बी० एंड सी आई रेल्वे के एक ऐसे स्टेशन का नाम है जो बहुत प्रसिद्ध नहीं है और अपने पास के इसी नाम के एक गाँव के कारण रखा गया है। स्व० पंडित

भगवानलाल इन्द्र जी ने यहाँ अशोक के एक शिलालेख का पता लगाया था । अब यह स्थान बम्बई के इलाके में बसीन से, जो समुद्र के ही किनारे है, तीन चार मील उत्तर की ओर और खास बम्बई नगर से तीस मील की दूरी पर है।

ई० पू० सन् २५० मे यह भारत के प्रसिद्ध और अच्छे बसे हुए नगरों में से एक था। इसी कारण यह उन थोड़े से भाग्यवान नगरो में चुना गया था जिनमें महाराज अशोक ने अपने लेख से युक्त स्तम्भ लगाए थे। सोपारावाला पत्थर यहाँ से उठाकर प्रिन्स आफ वेल्स म्यूजियम (पश्चिमी भारत) में रखा गया है। उस पत्थर मे दस पक्तियां हैं जिनमें से पहली चार पक्तियां मिट गई हैं। इसकी लिपि वही है जो देवनागरी तथा दूसरी भारतीय लिपियो की जननी या मूल है और जिसके सम्बन्ध मे पुरातत्त्व के युरोपीय ज्ञाता बुहलर का मत है कि यह व्यापार के पदार्थ आने जाने के मार्ग से ईसा से सात आठ सौ बरस पहले इराक से भारत मे आई थी। इसकी विशेष बातें इस पुस्तक मे बतलाई जा चुकी हैं।

डा० भंडारकर कहते हैं कि बम्बई प्रान्त के थाना जिले में सोपारा एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था जिसका नाम महाभारत मे शूरपापका है। बतलीमूस ने अपने भूगोल मे इसका नाम सोपारा लिखा है। यह एक प्रसिद्ध पवित्र स्थान और अपरान्त का राजनगर था ।

आजकल सोपारा नाम का जो गाँव है, वह इसी पुराने प्रसिद्ध नगर के स्थान पर बसा हुआ है। यह एक खाड़ी के बाएँ किनारे पर स्थित है जो बसीन की खाड़ी के रेल्वेवाले पुल और वतरना नदी के बीच में घूमती हुई दिखाई पड़ती है। पुराने सोपारा में अब भी पुराने मकानों और बड़े बड़े भवनों के चिहन बचे हुए हैं। यहां एक रामकुंड भी है जिससे यह सिद्ध होता है कि यह किसी समय तीर्थ था ।

जब सन् १८८१ ई० में सोपारा के अशोकवाले शिलालेख का पता चला था उस समय उस गाँव में कठिनता से छः सौ घर थे जिनमें लगभग दो हजार आदमी रहते थे। वहाँ के निवासी ब्राहमण, 'हिन्दुस्तानी' इसाई और मुसलमान हैं। मुसलमानो मे अरब और ईरानी हैं जो सात सौ वर्ष पहले व्यापारिक सम्बन्ध के कारण यहाँ आकर बस गए थे।

ऊपर दिए हुए इस सारांश से यह पता चलता है कि गुजरात के समुद्रतट पर बसे हुए दूसरे व्यापारिक नगरों की भाँति यहाँ भी मुसलमान बसे हुए थे। और यदि महाराज अशोक के शिलालेख और बतलीमूस के भूगोल से इस बस्ती का ईसा से ढाई सौ बरस पहले होने का प्रमाण मिलता है, तो मुसलमान अरब यात्रियों के वर्णन से इसका ईसा के एक हजार बरस बाद होने का भी पता चलता है।

२. अरब में एक जाट चिकित्सक

इस पुस्तक के आरम्भ (पृ० १०) में यह बतलाया जा चुका है कि मुहम्मद साहब के समकालीन लोगों के समय अर्थात् हिजरी पहली शताब्दी या ईस्वी सातवीं शताब्दी में जाट लोग इराक और अरब में बसे हुए थे। परन्तु उस स्थान पर उनके सैनिक गुणों का ही वर्णन किया गया है। परन्तु एक बहुत ही प्रामाणिक साधन से उनके विद्या सम्बन्धी कार्यों का भी पता चलता है। इमाम बुखारी (मृत्यु सन् २५६ हि०) ने अपनी किताबुल् अदबुल बुल् मुफरद नामक पुस्तक में मुहम्मद साहब के समकालीन लोगों के समय की एक घटना लिखी है, जिसमें यह बतलाया है कि एक बार श्रीमती आयशा (मुहम्मद साहब की दूसरी पत्नी) जब बीमार हुई थी, तब उनके भतीजो ने एक जाट चिकित्सक को उनकी चिकित्सा करने के लिये बुलाया था।[१]

३. सिन्ध के राजसी जूते

इस पुस्तक के पृ० ६५ में खम्भायत के जूतों का वर्णन आया है, जो मन्सूरा (सिन्ध) से इराक की अध्यासी राजधानी बगदाद में जाते थे। अभी हाल में इमाम अहमद बिन हम्बल (मृत्यु सन् २४१ हि०) की किताबुल वरा नाम की एक छोटी सी पुस्तक की सात सौ बरस पहले की लिखी हुई एक प्रति अलजीरिया में मिली है जो सन् १३४० हि० में मिस्र में छपी है। उस पुस्तक से यह प्रमाणित होता है कि सिन्ध के जूते इतने सुन्दर और

भड़कदार होते थे कि सम्भ्रान्त और गम्भीर लोग उनको पहनना पसन्द नहीं करते थे और वे केवल राजकुमारों के पहनने के योग्य समझे जाते थे ।[२]

[१] इमाम बुखारी कुत अल् यदवुल् मुफरद; बैउल्वादिमवाला प्रकरण, पृ० ३५ (मित)।
[२] इब्न हम्बल कृत किताबुल् वरा, लबसुन नथाल असिसिन्दियावाला प्रकरण, पृ० ११०, (मिस्र)।

अनुक्रमणिका